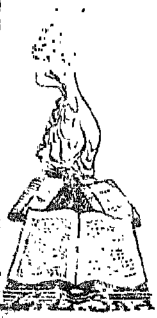


संक्रान्ति

(एक मौलिक उपन्यास)

लेखक—

श्री 'भिक्खु'

संक्रान्ति
सम्वत् २००८

प्रकाशकः—
राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर,
लोहामंडी, आगरा

प्रथम संस्करण
११००
मूल्य ५)
जुलाई, १९५१

मुद्रक,
कृपाशङ्कर शर्मा,
निराला प्रेस,
आगरा।

समर्पित

माँ,

यह तो तेरी ही पूजा है,

अंगीकार कर।

'भिक्खु'

संक्रान्ति

सम्वत् २००८

प्रकाशक की ओर से—

प्रस्तुत पुस्तक 'संक्रान्ति' हिन्दी के सुपरिचित लेखक श्रीयुत कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' की हिन्दी-साहित्य को एक अनमोल देन है विद्वान् लेखक ने 'संक्रान्ति' में एक ऐसे व्यक्ति के जीवन को चित्रित करने का प्रयत्न किया है, जो मार्ग की कठिनाइयों के साथ जूझता हुआ विकास के मार्ग पर निरन्तर आगे—और आगे ही बढ़ता चला गया है। वह क्रमशः परिवार, जाति, समाज और राष्ट्र के धरातल पर आगे बढ़ा है—और अन्त में मनुष्यता के मन्दिर में पहुँच कर विश्राम लेता है।

हमें विश्वास है, जीवन में संघर्ष और विकास की महत्ता में विश्वास रखने वाले कर्मयोगी वीरों को 'संक्रान्ति' अपनी ओर हठात् आकर्षित कर लेगी।

अन्त में, ऐसी सुन्दर रचना के लिये लेखक को धन्यवाद देना हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

विनीत
शान्तिस्वरूप गौड़
व्यवस्थापक
राजेन्द्र प्रकाशन मन्दिर,
लोहामंडी, आगरा

एक

नर्मदा एक मूर्ख किन्तु धनिक ब्राह्मण का लड़का था। उसके तथा उस जैसे सैकड़ों हज़ारों या इससे भी अधिक विप्र-कुलोद्भवों में जो ब्राह्मणत्व शेष रह गया था, वह था केवल दान लेना। किन्तु कभी जिस विद्या, तप, त्याग के बल पर उनके पूर्वजों ने व्यक्तिगत जीवन के तुच्छ साधनों से ऊपर उठ कर विश्वजीवन के विराट साधनों की सिद्धि के लिए परमार्थ के निमित्त ही एक प्रकार के विप्रवाद को सर्वपूजित होने की क्षमता दी थी वही आज परम्परा और पूर्वजों के नाम पर निकृष्ट दानवाद के रूप में परभृतों में संभव सभी प्रकार के दोषों का आगार बना हुआ भी ब्राह्मणत्व की उद्घोषणा करने से बाज न आ रहा था। वैसे ही ब्रह्मविदों के एक उज्ज्वल उदाहरण थे—नर्मदा के पिता जो अपने पूर्वजों की कीर्तिगाथा में भूले-भूले ही मूर्ख रह गए थे। और देखा जाए तो गुणों की प्रगति की उपेक्षा करके भी तुच्छदानपर अहंता पूर्वक जीवन-निर्वाह की क्षमता विद्या-विहीन ब्राह्मणों में ही पाई-जा सकती है। इसी जातीय क्षमता को जीवित और प्रबद्ध रखने के लिए नर्मदा के पिता

अपने पिता के सत्प्रयत्नों से मूर्ख ही रखे गए थे। नर्मदा के उन बुद्धिमान पितामह ने अपने दान-पुष्ट जीवन में ऐसे अनेक दृष्टांत देख लिए थे जिससे उनका साहस होता ही न था कि अपने कुल-दीपक की अक्षर से भेंट ही जो होने दें। जिन-जिन विप्र परिवारों ने अपनी सन्तति के पठन-पाठन पर जोर दिया और सरस्वती की उपासना को ही अपना कर्तव्य समझा उन सबसे लक्ष्मी का शनैः शनैः ऐसा द्वेष बढ़ता गया कि शीघ्र ही उनकी परान्नपुष्ट देह विद्या-विकृष्ट होकर रह गई और उन कुलों के वे विद्या-वाहन तथा विद्या सागर, विद्या-प्रकाश जीवन और विद्या का संबन्ध बनाए रखने के लिए या तो नौकरी करते-करते असमय में ही मर गए अथवा पूर्व अर्जित सम्पदा को छोटे-मोटे व्यवसाय में लगा कर दिवालिए हो गए। नर्मदा के पितामह नर्मदा और उसकी भी संतति की ऋद्धि-चिन्ता करते हुए अपने पुत्र को अपने और अपने पिता और पितामह के समान ही विद्या-विहीन रखने पर विवश हुए जिससे वह भी मूर्खता के महत् मर्म को सोचता हुआ अपनी भी सन्तति को उसी प्रकार मूर्ख रख कर लक्ष्मी को अपदस्थ कर डालने वाली सम्पत्ति-नाशिनी विद्या को अपने कुल में प्रवेश ही न करने दे।

पर आदमी जितना अधिक अपने पूर्वजों और उनके मृत-इतिहास से सीखता है उससे भी कहीं अधिक अपने चारों ओर की दुनिया, उसके जीवित-कर्मों से। नर्मदा के पिता भी इसके अपवाद न रहे। फलतः जब उन्हें अपनी गोपनीय से गोपनीय चिट्ठी को पढ़वाने या लिखवाने के लिए पड़ोसी के चार कक्षा तक पढ़े लड़के पर ही निर्भर करना पड़ता तो उनके मन में भी

अपने नर्मदा को कम से कम उतना पढ़ाने के लिए विचार जोर पकड़ने लगते। इसी से उन्होंने अपने पिता और पितामहों की सी दूरदर्शिता का परिचय न देते हुए चिरंजीव नर्मदेश्वर प्रसाद शर्मा को उसके नर्मदा के स्थान पर इस पूर्ण विस्तृत किन्तु क्लेश-उच्चरित नाम को व्यापक करते हुए पाठशाला भेजकर लक्ष्मी विद्वेषिनी विद्या का अपने दानोपजीवी कुल में प्रवेश करा ही दिया। तब नर्मदा के स्वर्गस्थ पितामह ने जाने किस नारकीय वेदना का अनुभव किया होगा।

किन्तु पितरों की यह नरक-यातना एक दिन की तो न थी। जब नर्मदा के पिता ने अपने चिरंजीव को पड़ोसी के लड़के के बराबर पढ़ाकर भी पढ़ाई से हटाने का नाम तक न लिया तो जाने सगे-सम्बन्धियों तक को कितने अपशकुनों का भान हुआ था। स्वयं नर्मदा अपने विद्यावियोगी पिता के अपने निमित्त इस विद्यानुराग को देखकर त्रस्त था। जिस समय वह मरे मन से बस्ती के बाहर बने मिडिल स्कूल में पढ़ने जाता तो उसी स्कूल के पास बहते रजवाहे (छोटी नहर) में अपने सजातीय समवयस्कों को ऊधम मचाते हुए तैरते देख कर अपने पितरों से ऐसी याचना करने लगता, जिससे वे या तो उसके पिता को भी अन्य पिताओं की भाँति सुबुद्धि प्रदान कर दें अथवा शीघ्र अपने निकट ही बुलवा लें। बेचारे नर्मदा की यह प्रार्थना पितरों तक पहुँची भी या नहीं कोई नहीं जानता।

पर धीरे-धीरे यह नौबत अवश्य आई कि उसकी पढ़ाई उसके विप्रता-अभिमानी समवयस्कों को बुरी तरह खलने लगी। उसके चारों ओर का वातावरण उसके प्रति निर्मम होकर कठोर

व्यंगों से भर उठा। पर एक दिन जब उसके किसी साथी ने सदय होकर आत्मीयता के अधिकार के साथ उसकी पढ़ाई-लिखाई की भर्त्सना की थी तो उसे किसी सच्चे हितैषी से सदुपदेश पाने का-सा सुख हुआ था।

नर्मदा के कानों में आत्मीयता—व्यंजक ध्वनि पड़ी 'पढ़ने जा रहे हो नर्मदा।'

वह उत्तर में मात्र चुप रह गया था। पर उसका हितू मित्र इतने-भरसे उदासीन कैसे हो जाता। उसने पुनः पूरे बल से कहा—'मूर्ख हो। अरे हिन्दी में चिट्ठी तो लिख लेते हो; अब क्या संस्कृत पढ़ोगे या अंग्रेजी पढ़ कर बाबू बनोगे।'

नर्मदा ने किसी तरह जवाब देने या सफाई पेश करने के लिए जबान खोली—'भाई पिताजी···'

"सो हमारे भी हैं। सभी के होते हैं। मैं तुमसा पढ़क्कड़ होता तो शास्त्री बन जाता। पर ब्राह्मण को पढ़ने की जरूरत नहीं। जो जन्म से ब्राह्मण हैं उनके संस्कार सहज समृद्ध होते हैं।"

'क्या कहूँ भाई बात तो तुम्हारी ही सही है। फिर मेरा जी भी पढ़ने में नहीं लगता। पर···'

"पर-वर कुछ नहीं जनाब! जी लगे भी कैसे! यही तो खेलने-खाने के दिन और इन्हें ही खो दिया इस तरह किताबों में। अरे हमारे साथ रहो तो यह पीला पड़ता हुआ चेहरा दमकने लगेगा।"

तब नर्मदा उस अहेतु की मित्र की बातों से इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि उसने अपने से भी कमजोर, पीले रंग

और बुझती आँखों वाले लड़के के मुँह पर कोई ऐसी अजीब और आकर्षक चमक देखी थी, जिसके मोह में उसने अपनी किताबों को गंगा में फेंक देने का निश्चय कर ही लिया।

फिर जल्दी ही एक दिन उस बस्ती के सभी लोग जान गए कि पण्डित नर्मदेश्वर प्रसाद शर्मा ने बिना विद्या-विशारद हुए ही किताबों को जल-समाधि दे दी। अब उसके इर्द-गिर्द और ही नए-नए सवाल और समाधान गूँजने लगे।

एक कहता : अरे नर्मदा अब और पढ़ेगा नहीं।

उत्तर मिलता : तो क्या हुआ! जितना पढ़ लिया वही बहुत है। इतना तो उसका बाप और उसके बाप का बाप भी पढ़ा नहीं और फिर भी वे संकल्प छुड़वा लेते थे।

बात और बढ़ती : नर्मदा भांग पीता है। सुलफे के दम लगाता है। जुआ भी खेलता है।

"तो क्या हुआ। यह तो जवानों की दुनिया है। दिल वालों का अमल है।"

"नर्मदा शराब भी पीता है। गाना भी सुनने जाता है।"

"उसके पास पैसा है। पैसे पर झूमती जवान जिन्दगी है। शौक और चाह उसे न होगी तो किसे? और इसके अलावा पैसे की सार्थकता ही क्या?"

और इस तरह नर्मदा फिर से अपने पुराने समाज में जा मिला। उसके पिता जिनकी कल्पना इतनी मर चुकी थी कि दूसरों के बेटों की पढ़ाई-लिखाई या उन्नति देखकर ही अपने कुलतारन की उन्नति का स्वप्न देखा करते थे जब कभी भी किशोर नर्मदा की शिक्षा-दीक्षा के प्रति सजग हुए अपनी पत्नी

के विरोध के कारण कुछ न कर सके। जब उन्होंने नर्मदा के आवारापन को रोकने के लिये उसके फिर से मदरसे जाने पर जोर दिया तभी पत्नी के मूढ़ मातृत्व ने उग्र विरोध करते हुए कहा—

"तुम हर समय बच्चे के पीछे पड़े रहते हो। समझ में नहीं आता कि क्यों? औरों के बेटे तो अपना नाम तक नहीं लिख पाते। यह तो उनकी उम्र में चिट्ठी तक लिखने लगा। पर अब बहुत हुआ। मेरा लाल इन किताबों के फेर में सूख कर आधा रह गया।"

हमारे ही देश की जागरूक नारियाँ एक ओर प्रगतिशील समय को भी गति देती हुई विश्व भर की नारियों के लिए उदाहरण प्रस्तुत कर रही थीं जबकि नर्मदा की माता जैसी स्त्रियाँ जिनकी अनन्त संख्या घटते-घटते भी आज बहुत है विज्ञान के युग में अविद्या का इतिहास लिपि-बद्ध कर रही थी। इसी तरह समय बेतरतीब और असंतुलित-सा कहीं बढ़ रहा था और कहीं पिछड़।

विचारपूर्वक देखा जाये तो समय अपने आप में न बढ़ता है, न पिछड़ता है। यह भी दुनियाँ भर के बढ़ते-पिछड़ते रहने वाले या वैसा भ्रम उपस्थित करने वाले पदार्थों की तरह जड़ है। वस्तुतः कहीं प्रगति होती है तो मनुष्य में, उसके विचारों में, उसके विचार-आचार के प्रकारों में। पर हमें जितनी सरलता से चाँद-सूरज के उगने-छिपने, दिन-रात के आने-जाने का भान होता रहता है उतनी सरलता से इस विचारात्मक क्रान्ति का नहीं। अतएव प्रायः व्यक्ति इस क्रांति और परिवर्त्तन के साक्षी

जाड़ा, उसी तरह समय की अप्रतिहित गति में नर्मदा की मा जैसी माताएँ स्थिरता बनकर समाई हुई थीं।

नर्मदा का ब्याह हो गया। अब इस ब्याह के बाद हमसे उसका अधूरा नाम न लिया जाएगा। नर्मदा नर्मदेश्वर हो गया। पर वह नर्मदेश्वर होने से ही नर्मदा के संस्कार एक दम कैसे भूल जाता। और उसी तरह ब्याह भर हो जाने से दस बरस की लड़की कैसे श्रीमती नर्मदेश्वर की गुरु गंभीरता से भर जाती।

नर्मदेश्वर ने ब्याह के बाद एक बड़ी ही बेढंगी-सी बेशऊर-सी लड़की को अपनी पत्नी के रूप में देखा। उसे बड़ा अजीब-सा लगा। कपड़े तक पहनने का सलीका नहीं। फिर भी उसने पूछा—तेरा नाम ?

लड़की जो ब्याह होने भर से पत्नी न होगई थी, फलतः पति की मर्यादा भी न जान सकी थी, आँखें फाड़-फाड़ कर उस उद्दण्ड से लड़के की ओर देखने लगी। कोई बात नहीं, कुछ नहीं। आँखों में सिर्फ थोड़ा-सा क्रोध, कुछ तिरस्कार और कुछ खीज।

नर्मदेश्वर ने उसकी फैली हुई आँखों को देखा और फिर चिढ़ के साथ चिल्ला उठा—जङ्गली कहीं की !

लड़की, जिसका क्रोध अब पहले की अपेक्षा कुछ अधिक साकार हो उठा था रुद्ध आश्चर्य में कह उठी—एँ !

नर्मदेश्वर ने पहले से भी अधिक चीखकर कहा—बेवकूफ।

इन प्रेम संभाषणों के साथ उस दम्पतिकी विवाह के पश्चात् की प्रथम भेंट पूरी हुई। पति वन्य-जन्तु-सा चिल्लाता हुआ भाग गया, पत्नी मूर्त विडम्बना-सी विजड़ित रह गई। और इसी

दिन, इसी क्षण, इसी देश में, इसी जाति या समाज के कोई पूर्ण वयस्क सुशिक्षित दम्पति अपनी सुहाग रात की सुहावनी बातों में विश्व की राजनैतिक गतिविधि की चर्चा करते हुए भी बड़े ही कलात्मक ढङ्ग से बुद्धि और विचार के सहारे एक दूसरे के हृदयों में बैठते हुये अपना प्रेम दे-देकर दूसरे का प्रेम बटोर रहे होंगे !

❀ ❀ ❀

नर्मदेश्वर की दस वर्षीया धर्मपत्नी का नाम शारदा था। धर्म को ही कुछ ऐसे अप्राकृतिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जिनके बल पर उसके नाम पर किया गया अपराध भी अपराध नहीं होता। धर्म के इन्हीं विशेषाधिकारों में से एक यह भी था जो बालिका शारदा किसी भी प्रकार की यौवन-सुलभ अनुभूति के पूर्व ही पत्नी हो गई, धर्म के नाम पर ऐसी पत्नी हो गई, जिसे नर-प्रयत्न, ऋषिवचन और देवआशीः की साक्षी में जननी तक बनने की धर्माज्ञा प्राप्त हो गई। कहीं हमारे विवाह भी केवल धार्मिक न होते हुए कुछ प्राकृतिक भी होते तो ऐसा अधार्मिक प्रयत्न देखने में न आता।

उसी शारदा ने इस धार्मिक विवाह के अनन्तर अनुभव किया कि मानो गहरे नीले आसमान में मुक्त होकर उड़ती हुई चिड़िया के पङ्ख बांध दिए गए। अनन्त आकाश अब भी उसे मुक्त-क्रीड़ा का आमन्त्रण दे रहा है। हवा अठखेलियाँ करती है। चाँद-सूरज की किरणों से उसे असीम मोह है। पर जिस धर्म की निमूल डाल पर वह बैठी हुई है, उसे छोड़ नहीं सकती। बहेलिये का हाथ बढ़ता गया, पर वह उड़ न सकी। जिस उम्र

की लड़कियाँ खेल-खेल में हँसने और रोने से अधिक कुछ नहीं जानतीं उसी उम्र में वह लज्जा और शील के कसे दामन में सिकुड़ी जा रही थी। बेवकूफ बच्ची को दुनिया पत्नी के रूप में देखने लगी और उससे उस तरह की सभी बनावटों की आशा करने लगी।

धर्म, रूढ़ि और समाज ने एक साथ आक्रमण किया। पराया धन पराये को ही सौंप दिया गया। फलतः जिस शारदा ने ख़ुद गुड़ियों का ब्याह रचाया था, आज वही वेदी के चारों ओर घुमा कर गुड़ियों की तरह ब्याह दी गई। जिन सहज भावों का उदय शनैः शनैः और अवस्थाक्रम से होता है उन्हें धर्म ने जादू के जोर से ठीक अवस्था से पूर्व ही क्षण-भर में पैदा कर दिया। पर जब ये धर्मबद्ध पति-पत्नी पहली बार एक दूसरे से मिले तो लगा बेवक़ूफ लड़का किसी बेवक़ूफ लड़की से लड़ रहा है।

शारदा पिता के घर से पति के घर में आकर 'बहू' तो हो गई पर इतने से ही उसके लड़कपन ने उसका साथ नहीं छोड़ दिया। सुबह थी, आठ बज रहे थे और इस पर भी वह अपने जन्म के घर की तरह सोई पड़ी थी, सास को उसका यह ढङ्ग बड़ा अजीब-सा लगा। उसने उसे जगाने के लिये झिंझोड़ कर उठाते हुए पुकारा—'बहू'!

बहू शारदा अभी तक भूल ही नहीं सकी थी कि बिटिया शारदा को उसकी मां किस प्यार से पुकार कर, थपथपा कर या सहला कर उठाया करती थी। और जब उसी बिटिया के कानों में 'बहू' शब्द पड़ा तो उसे कुछ अजीब ही नहीं बुरा भी लगा।

मा ने उसे हमेशा 'सरो' या 'बिटिया' कहा। बाबूजी को तो 'रानी' से अधिक कुछ भाता ही न था। सरो, बिटिया या रानी अपने मा-बाप के इस तरह पुकारने पर नाच-सी उठती है। पर यह 'बहू' शब्द तो निराली तुक थी। एक ही क्षण में उसे विवश अनुभव हुआ, जैसे बचपन भाग रहा हो, आजादी छिन रही हो। दस वर्ष की बालिका और बहू-बन्दिनी नारी का इससे अधिक भव्य रूप और हो ही क्या सकता है।

इस तरह जब बहू बनकर भी बचपन की आदतें न छूटीं तो फटकारें पड़ने लगीं। सास गरजती हुई कहती—इसी तरह रानियों की तरह पलंगों पर पड़े रहना था तो बाप के घरसे नौकर क्यों न लेती आई।

शारदा सुनती और नित ही ऐसी बातें सुनती। इन्हें सुन-सुन कर ही वह बहू और बेटी के फर्क को समझने लगती। एक दिन जब उसने इस फर्क को अच्छी तरह समझ लिया तो उसका लड़कपन खेलते-खेलते ही मर गया। अब जब सुबह चार का गजर बजता, सारी दुनिया सोई रहती, तो उसे अपनी ही जैसी अनेक बहुओं के साथ जाग जाना पड़ता। घर भर का काम पड़ा है। और फिर काम समेटते-समेटते ही दिन बीत जाता, रात बढ़ आती। 'बहू' जिसे अब काम से कुछ-कुछ फ़ुरसत मिलती घड़ियाल के घण्टे गिनती। टन''टन''इसी तरह एक, दो''''''बारह। घड़ियाल बजाता है, बहू गिनती है बारह। थकी-मांदी दुनिया या तो नींद की सेज पर बेहोश हो गई या प्रेम की वार्ताओं में मग्न। पर जिसके लिए न नींद थी, न प्रेम! जाने वे कितने भाग्यवान् थे जिनके कि घरों में उसकी वय के बच्चे सपनों के सुनहरे संसार में खोए थे।

बालिका बहू बनने की शिक्षा पाती रही। बचपन की उम्र में खेलते-खेलते ही भूख लग आती है, पर बहू को घर के जीम लेने की प्रतीक्षा करनी ही होगी। अनुशासन मर्यादा का एक स्वरूप है। अनुशासित दासता की एक रूप-रेखा है। बहू वही रेखा है। भूखी, प्यासी और ऊपर से व्यंग। रोना चाहती है, पर किसके मनाने के लिए रोए। वह आज बेटी नहीं, बहू है। बेटी के मनकी पूरी नहीं होती तो वह मचल उठती है। घर भर उसे मनाता है। उसके आँसू मोतियों से भी अनमोल हैं। पर बहू, उसकी आँखों के पानी की कोई कद्र नहीं। चाहे रोते-रोते सागर ही क्यों न भर उठें, पर उससे उसके रोने का कारण पूछने वाला कोई नहीं। मा मुँह का ग्रास छोड़ बेटी का मान रखने दौड़ती है, सास बहू को थाली पर से उठा काम करने भेजती है। बहू-बेटी एक ही तराजू के दो पलड़े हैं, पर बहूकी ओर पासंग नहीं।

नर्मदा, जिससे इस अवस्था में पति के कर्तव्य-पालन की आशा की भी नहीं जा सकती थी, एक घड़ी के लिए भी कभी किसी बात के लिए उत्तरदायी न समझा गया। वह अपने ऐबों के साथ-साथ ऐबों की दुनिया में भागा फिरता और इसे भी समझा जाता बहू का ही दोष। इसी दोष के लिए फिर से बहू शारदा पर सास की फटकारें पड़ीं। फिर उन्होंने समझाया। स्त्री ने स्त्री की स्थिति का स्पष्टीकरण किया—देखो बहू, इस तरह बेवकूफ बने रहने से काम न चलेगा। नर्मदा पुरुष है। उसके लिए एक नहीं सैकड़ों औरतें हैं। पर तुझे उस एक ही की अपने लिए परवाह करनी होगी।

शारदा ने सीता-सावित्री की परम्परा में उत्पन्न होकर भी इतना ही समझा था कि नर-पशु की प्रीति के लिये स्त्री को चारा बनकर ही जीना या मरना होगा। नारी के अधिकारों का समर्थन करने वाला देश का विधान बनकर भी जाने कितने युगों में नारी को इन पतित संस्कारों से मुक्त कर सकेगा! इसी तरह शारदा जीती रही।

धीरे-धीरे एक-एक करके पूरे छः बरस बीत गए। नर्मदेश्वर भरी जवानी में बह रहा था। पर बढ़ती उम्र के साथ जो अनुभव हुए, जो समझ जागी, उसने उसे अंधी जवानी में भी बूझ की आँखें दे दीं। इन्हीं बूझ की आँखों से उसने अपने घर से एक ही मास में दो-दो रथियों को निकलते देखा और फिर श्मशान में जाकर जलती चिताएँ भी। माता-पिता दोनों जाते रहे। आदमी की हस्ती मिट गई। रह गया नाम, पर उसकी तो कोई मूर्ति ही नहीं होती। इस तरह नाम की मूर्ति को जिसे हस्ती कहते है, मिटते देखकर नर्मदेश्वर रो पड़ा था। उसने जीवन में पहली बार मोह का अनुभव किया और उसके महत्व को जाना भी। इसी मोह ने उसके जीवन की दिशा बदल दी। श्मशान से जब वह दुबारा घर लौटा तो गृहपति बन चुका था।

उस दिन गृहपति नर्मदेश्वर को घरनी शारदा के एक साधारण से उत्तर पर जाने कितना आश्चर्य हुआ था। काम में फँसे रहने से भोजन के समय न पहुँच सकने के कारण कितनी ही देरी से भोजन करते हुए उसने पूछा—'तुम तो भोजन कर चुकी हो न!'

शारदा ने सरलता से उत्तर दिया—आप के बिना भोजन किये भला मैं कैसे खा लेती।

इस एक उत्तर से नर्मदेश्वर की दुनियाँ ही बदल गई।

'एक नहीं', दो नहीं, पूरे छः वर्ष बीत गये। यह मेरी इसी तरह राह देखती रही। पर मैंने एक दिन भी इसकी सुध न ली। जुआ, शराब और गाना इन्हीं में खोया रहा। पर इधर प्रतीक्षा, विश्वास और श्रद्धा ज्यों की त्यों बनी रही।' नर्मदेश्वर सोच-सोच कर परेशान था।

और उसी रात को उसने उसे अपने पैर दाबने से मना कर दिया था। उसका पुरुष केवल पुरुष न रहकर अधिक काल तक मूर्छित-विवेक न रह सका। उसकी आँखें अब तेजी से बदलती हुई दुनिया की ओर जा लगी थीं। उस दुनिया ने उसे खुद को बदलने की उत्तेजना दी, फलतः उसने पैर समेटते हुए कहा—ना, ना, अब यह अन्याय नहीं सहने का शारदा। अब तुम्हें मैं अपने पैर तक छूने न दूंगा।

शारदा ने जवाब दिया—'पुरुष को नारी के न्याय-अन्याय का विचार करने का कोई अधिकार नहीं।

नर्मदेश्वर ने और भी अधिक आश्चर्य के साथ उसके अभियोग शून्य फिर भी अभियोगयुक्त छोटे से उत्तर या समाधान को सुना। उसकी समझ में आया ही नहीं कि घर की दीवालों में बन्द स्त्री तक ये विचार कैसे पहुँचे। वह देखता ही रह गया शारदा के संस्कार-देह को अनजाने में ही युग-प्रवाह में बहते हुए।

शारदा का पैर दबाना बन्द न हुआ था। नर्मदेश्वर ने फिर से कहा—'तुम थक गई होगी शारदा!'

शारदा का उत्तर था—'स्त्री कब थकती है कोई पुरुष नहीं जानता।'

नर्मदेश्वर सचमुच ही नहीं जान पाया था। वह चुप हो गया। फिर भी उसने सोचा कि शायद पिछले छः वर्ष ही उसकी जिन्दगी की थकान के दिन थे। स्त्री जब थकती है, कि हारती है, तो उपेक्षा में ही। 'पर कौन सी स्त्री? आज की या मृत युगों की?' शारदा के सुन्दर और प्रसन्न मुख को देख कर नर्मदेश्वर कुछ न जान पाया।

फिर नर्मदेश्वर के मन में आया कि आज इस श्रद्धामयी के सामने अपने जीवन की भूलों का परिचय दे दूँ। पर शारदा ऐसी थी कि अवसर पाकर भी जानना न चाहती थी। नर्मदेश्वर सोचता कि क्या स्त्री गूँगी भी होती है। इसी से उसने ख़ुद ही कहा—छः बरस, बड़ी से बड़ी भूल के लिए भी यह बहुत लम्बा समय होता है शारदा! इस बीच में मैंने तुम्हें सच ही घोर कष्ट पहुँचाया।

पर शारदा के दो शब्दों के उत्तर ने वार्तारम्भ के इस प्रवाह को अथाह सागर बन कर सोख लिया। उसने धीरे से कह दिया—'नहीं तो!'

❀ ❀ ❀

दिन सुख से बीतते रहे। पर लगता था, शारदा का सुख आज भी भीत है। वह मन ही मन घुटती-सी रहती। उसके विचार उसी से द्रोह करते। वह न तो उनका समाधान कर

पाती और न प्रकट करने के लिए शब्द ही खोज पाती। फिर भी वह सोचती कि क्या उसका वैसा ही बना रहना ठीक है? उस जैसी प्रत्येक स्त्री का वैसा ही बना रहना ठीक है? उसके अप्रबुद्ध संस्कार कहते कि 'तुझे ऐसा विचार करने का अधिकार ही नहीं।' पर जीवन की विडम्बनाएँ आग्रह करतीं 'जरूर है।' और वह दुनिया की गति को न जानती हुई इसी तरह इन विरोधों से जूझती रही।

फिर एक दिन बीमार भी पड़ गई। इस बीमारी ने एक और निशान छोड़ दिया!

शुरू में तो मामूली-सा बुखार आया। फिर ताप बढ़ता गया। एक दिन डाक्टर ने आकर अच्छी तरह देख कर कह भी दिया—Small-pox, serious. (चेचक! खतरा है।)

नर्मदेश्वर यह सुनकर सहम-सा गया। डाक्टर के जाते ही उसने शारदा के जलते हुए माथे पर अपना काँपता हुआ हाथ रख दिया। वह अभिभूत होकर उसे देख रहा था और शारदा उसे और भी सुन्दर जान पड़ रही थी। जैसे उसकी आँखों ने एक नया स्वप्न सँजोया हो। 'मद भरी आँखें। रस भरे अधर। राग भरे कपोल। विह्वलता भरी देह।' पर छूने में कितनी ज्वाला। यह ज्वाला उसी को जलाने लगी जिसके दाह में वह शारदा के जीवन से अधिक उसके रूप की रक्षा के लिये आतुर हो उठा। शीतला उसके सौंदर्य सागर को बड़वानल बनकर जलाया चाहती थी। रूप के आसमान में कड़कती हुई बिजली, रूप पर ही टूटा चाहती थी।

आँख खुलते ही मीठे सपने टूट जाते हैं या खो जाते हैं।

मधुर राग कंठ से निकलते ही शून्य में गूँज बन कर लय हो जाता है। दिमाग में कुछ कड़ियाँ, थोड़े से बोल रह जाते हैं। जैसे ख़ुशबू उड़ गई हो और फूल की मुरझाई पंखुड़ियाँ भर बच गई हों। इसी तरह एक दिन शारदा की रूप-माधुरी जाती रही। लावण्य नष्ट हो गया। रूप और प्यार की लाश के पास बैठा-बैठा नर्मदेश्वर सिर धुनता रहा। कांति की छाया मिट चुकी थी। कल्पना की रूप-विहँगिनी जाने किस लोक को उड़ गई थी। मानसी हंसी मानस में ही जा डूबी थी।

इसके बाद नर्मदेश्वर से क्षण-भर के लिए भी वहाँ न रुका गया। एक बारगी ही वह छवि की छार को आँखों से निकाल फेंकना चाहता था। पर रूप से चमत्कृत आँखों को अंधकार बढ़ता हुआ ही जान पड़ता था। उस बढ़ते हुये मोहान्धकार में तबीयत घबड़ाने लगी। उसी घबड़ाहट में वह नौकरानी का नाम लेकर पुकार उठा—केला!

केला ने तत्काल आकर पूछा—जी पंडित जी!

क्या कहे? उसने कह दिया—नहीं कुछ नहीं?

केला लौट चली।

नर्मदेश्वर ने पुनः आज्ञात्मक ढंग से पूछा—कहाँ चली?

'आप ही तो······'

'ठीक है। देखो, बहूजी होश में आकर मुझे पूछें तो कह देना डाक्टर के पास गया हूँ।'

'अच्छी बात है।'

केला फिर चलने को उद्यत हुई। नर्मदेश्वर ने उसे पुनः

संकेत से रोक कर कहा—हां, देखो अच्छी तरह ध्यान रखना। मुझे जब भी पूछें तभी वैसा कह देना!

कला ने साश्चर्य दोहराया—जब भी?

"कह तो दिया कि जब भी·····?। जाओ, सिर मत खाओ।"

परेशान-सी कला चली गई। नर्मदेश्वर बाहर बैठक में आकर बैठ गया। आज वह शारदा की मृत्यु ही मना रहा था। चेचक के भद्दे गहरे निशानों से भरे शारदा के चेहरे की कल्पना भी उसके लिये असह्य थी।

डूबते सूरज के साथ-साथ अँधेरा बढ़ता जारहा था। साँझ की थकान भरी उदासी निशागमन का संदेश दे रही थी। नर्मदेश्वर अपनी बैठक में बिना उजाला किये ही बैठा रहा। आज उसका वह बहुत बड़ा मकान जैसे उसे काटने को दौड़ता था। और अँधेरे में ही बैठकर वह एक-बारगी उस सबको भूल बना डालना चाहता था। कितनी प्रसन्नता होती उसे यदि एक बारगी ही उसका, उसके मकान का और उसकी शारदा का अन्त हो जाता। अथवा उसकी अपनी यह जिन्दगी एक लम्बी गहरी काली रात की तरह पूरी हो जाती, जिसमें न चाँद सितारों की रोशनी होती और न सपनों की माया। सिर्फ एक गहरी बेहोशी होती जो किसी उल्लू के बोलने पर भी न टूटती। पर तभी कला आई और बैठक में रोशनी कर गई। नर्मदेश्वर उसे इसके लिए मना करना चाहकर भी मना न कर सका।

थोड़ी ही देर में कला फिर आई और आकर उसने कहा—बहूजी आपको बुलाती हैं।

"कह नहीं दिया कि डाक्टर के पास गया हूँ।"

"पर आप तो यहीं थे।"

नर्मदेश्वर ने चीख कर कहा—'चुप रहो! बेवकूफ हो।'

केला सहमी-सहमी खड़ी रही।

नर्मदेश्वर ने फिर से चिल्लाकर कहा—'अभी तक तू यहीं खड़ी है!'

उसने किसी तरह साहस बटोर कर पूछा—'तो बहूजी से क्या कह दूँ।'

"कह दो कि मेरी भी तबियत ठीक नहीं।"

केला चली गई और उसके जाते ही नर्मदेश्वर की बेचैनी भी बढ़ चली। पर उससे अधिक देर तक उस बैठक में बैठा न जा सका। धीरे से वह भी उठा और भारी पैरों से शारदा के पास जा-पहुँचा। धीरे-धीरे शारदा के चेहरे पर चेचक के दाने उभड़ चले थे। पलकें तक सूजी जान पड़ती थीं और उसी हालत में वह आँखें बन्द किये पड़ी थी। पास ही उसके केला थी।

केला ने नर्मदेश्वर को देखा और 'बहूजी, पण्डित जी' कहकर वहाँ से हट गई।

शारदा ने आँखें उघाड़ीं और फिर धीरे से पलकें डाल लीं फिर उसी तरह धीमे से बोली—'केला कहती थी कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं।'

"कुछ नहीं, जरा मन यों ही घबड़ाने लगा था।"

"तो तुम जरा देर के लिये बाहर गंगा-किनारे ही घूम आते।"

नर्मदेश्वर ने इसका कुछ जवाब न दिया। पूछा—'तुमने मुझे बुलाया था न?'

"बुलाया तो था। कुछ कहना भी चाहती थी। पर अब सोचती हूँ कि······"

नर्मदेश्वर ने कुछ स्निग्ध स्वर में कहा—'यह क्या, मुझसे कुछ कहने में भी सोचना?'

"हाँ ठीक है। यह वक्त सोचने का नहीं।" कहकर उसने फिर से आँखें उघाड़ीं और एकटक नर्मदेश्वर की ओर देखते हुए कहा—"मैं अभी मरना नहीं चाहती। तुम्हारे बच्चे के लिए मरना नहीं चाहती। उसे बचाना चाहो तो मुझे भी बचालो।"

क्षण भर के लिए जैसे नर्मदेश्वर के बोल ही चुक गये फिर उसने किसी तरह साहस बटोर कर लड़खड़ाती जबान में कह ही तो दिया—'नहीं सारो मैं तुम्हें मरने न दूँगा।'

शारदा इस शब्द 'सारो' से ही निहाल हो गई। उसने फिर से आँखें बन्द कर लीं और कहा—'अच्छा, अब आप बाहर खुली हवा में जाइये। यहाँ घुटे कमरे में रहना आपके लिए ठीक नहीं। हाँ कला को मेरे पास भेजते जाइयेगा!'

नर्मदेश्वर कुछ देर रुक कर चला गया।

इसके बाद के दो रोज चेचक के जोर के थे सारे शरीर में दाने फूल आए थे यहाँ तक कि पलकें भी उससे बाकी न थीं। फिर धीरे-धीरे ये दाने सूखे और सूख कर गिर भी गए। सारे जिस्म में दानों के छोड़े दाग भर रह गये। फिर एक दिन शारदा नहा-धोकर चंगी-सी हो गई।

नर्मदेश्वर ने नहा-धो लेने के बाद जब उसे देखा तो उसकी हिम्मत न होती थी कि बराबर उसके चेहरे की ओर देखता रह सके। चुप रह कर वह अपनी इस कमजोरी को जाहिर होने का मौका न देना चाहता था। इसी से उसने जमीन की ओर देखते हुए कहा—'तुम्हारा शरीर पहले से आधा भी नहीं रहा शारदा।'

शारदा ने कहा—'कहाँ, आप तो यों ही भ्रम पैदा कर रहे हैं। शरीर तो वैसा ही है। हाँ कुछ सूरत जरूर बिगड़ गई है।'

यहाँ आकर चर्चा हठात् रुक गई। शारदा के रूप की चर्चा नर्मदेश्वर के लिये असह्य थी। वह ऐसा ही कुछ बहाना करके बाहर चला आया।

इसके बाद फिर नर्मदेश्वर अधिकतर बाहर ही रहने लगा। कई-कई दिन और कई-कई रातें घर के बाहर ही बीत जातीं। शारदा से कोई शिकायत तक नहीं आती। बल्कि जब कभी उसे घर से बाहर गये या रहे दो-एक रोज हो जाते तो शारदा आप ही आकर कहती—'आप इस तरह घर में उदास ही पड़े रहते हैं। जरा बाहर भी घूम-फिर आया करें तो कैसा ?'

यह सुन नर्मदेश्वर को लगता कि उसकी कमजोरी शारदा पर प्रगट हो चुकी है और तब वह उसके प्रति कुछ अधिक अकरुण ही हो उठता है। पर एक दिन जब शारदा ने ख़ुद ही उससे घर रहने का अनुरोध किया तो उसे बड़ा ही ताज्जुब हुआ। शारदा ने कहा था—'देखिए आज आप कहीं बाहर न जाइयेगा। मुझे अकेली नहीं छोड़ना है।'

नर्मदेश्वर ने उदासीनतापूर्वक कहा—'अच्छी बात है न जाऊँगा। पर बात भी क्या है।'

"ओ ! आप भी कैसे हैं। कुछ नहीं समझते। क्या सभी पुरुष इतने समझदार होते हैं।"

कहते-कहते शारदा लजा गई थी। नर्मदेश्वर भी कुछ समझा। उसका हृदय किसी मनोहर आशा से चंचल हो उठा। उसी चंचल प्रसन्नता में वह .खुद जाकर पड़ोस से किसी वृद्धा को बुला भी लाया।

फिर उसी दिन प्रसव हुआ। शारदा ने एक सुन्दर सुकुमार बच्ची को जन्म दिया। दाई ने परिहास के स्वर में पण्डितजी को बधाई दी। नर्मदेश्वर ने डूबते मन से सुना, दाई कह रही थी—बड़े भाग पण्डितजी लक्ष्मी घर आई है।

पर इस लक्ष्मी से नर्मदेश्वर को कुछ ऐसी चिढ़ हुई कि वह हफ्तों उसका मुंह तक देखने से खुद को बचाता रहा। पर एक दिन शारदा ने जबरदस्ती ही उसे उसकी गोद में डाल दिया तो जाने क्षण भर में ही नर्मदेश्वर कैसे अनुत्तरदायी पति से उत्तरदायी पिता के से मोह से भर गया। उसने बड़े ही प्यार से बच्ची को पुचकारा और प्यार किया। फिर जब शारदा ने उसे बच्चों की अनभ्यस्त बातों से सुकुमार बच्ची को लेने के लिए हाथ बढ़ाए तो नर्मदेश्वर ने बलपूर्वक अपनी बच्ची को छाती से लगा कर कहा 'वाह अभी तो मैंने ढंग से अपनी बच्ची का मुंह तक नहीं देखा !'

यह सुन कर शारदा जाने किस अनंत प्रसन्नता में खो गई। उसे आज ही अपने जीवन की सार्थकता जान पड़ी। नर्मदेश्वर ने फिर से कहा—'तो बताओ न क्या रखें अपनी चिड़िया का नाम ?'

शारदा ने जवाब दिया—'नामकरण तो हो चुका !'

'नहीं, उस नामकरण को मैं नहीं मानता। तुम पंडितों के निकाले नाम के बारे में कहती हो शायद। पर मेरी समझ में तो बच्चे का असली नाम मा बाप ही रख सकते हैं। बताऊँ, क्या नाम होना चाहिए मेरी बिटिया का।'

'तो अब रहने दीजिए मैं अपनी बच्ची का नाम खुद ही रख चुकी हूँ।'

'वाह यह भी खूब। मेरी बात तक न पूछी। अच्छा बताओ तो, क्या नाम पसन्द आया तुम्हें।'

'पसन्द क्या, अब तो वह नाम इसका हो ही गया ! मैंने नीरजा नाम रखा है अपनी बेटी का। जानते हो नीरजा ही क्यों ? यह मेरी आखों के पानी से जनमी है। मेरे सुख-दुःख के आंसुओं की माला है।'

इस व्याख्या से नर्मदेश्वर को कुछ चोट ही पहुंची। पर इसी से नीरजा नाम उसे अप्रिय न हो सका वह धीरे-धीरे बच्ची के समान ही बढ़ रही थी और साथ ही साथ नर्मदेश्वर की आसक्ति भी घर के प्रति नई हो उठी थी। शारदा यह देख देख कर निहाल हो जाती।

पर इस तरह निहाल होकर भी जाने वह क्यों स्वस्थ न रह सकी। नीरजा अभी घुटरुन चलना तक सीख न पाई थी कि शारदा फिर से बीमार पड़ी और बीमार भी ऐसी कि वह घुलती गई पर बीमारी का कोई आदि अन्त न पता चला। नर्मदेश्वर ने इस बार उसकी परिचर्या में दिन रात एक कर दिए, पर कोई सफल होता न दीख पड़ा। यह सब देख देख

कर नर्मदेश्वर को लगता कि वह खुद ही जीवित रहने की इच्छा नहीं रखती। एक दिन उसने दुखित होकर पूछा—'तो तुम खुद ही नहीं बचना चाहती शारदा !'

शारदा पति की सच्ची आतुरता देख कर उस कष्ट में भी मुसकुरा दी। पर नर्मदेश्वर पर तो जैसे बज्रपात ही हुआ उसने फिर आग्रह पूर्वक कहा—'तो तुम्हें अपनी बच्ची का भी मोह नहीं। इसने तो कोई अपराध नहीं किया, फिर इस गरीब को क्यों यह दण्ड देती हो।'

शारदा ने उसी प्रकार मुसकुराते हुए कहा—'तो क्या आप समझते हैं कि मैं आप को भी दण्ड दे रही हूँ। आपने भी कोई अपराध किया है ! आप भूलते हैं। मैंने माता पिता से जैसी शिक्षा पाई है और जिस वातावरण में पली हूँ उसमें पति पत्नी के समक्ष कभी दण्ड भागी नहीं होता। आप व्यर्थ ही दुश्चिन्ता करते हैं।'

फिर जल्दी ही शारदा के जीवन की काल-रात्रि भी आई। केला नीरजा को सम्हाल रही थी और नर्मदेश्वर शारदा की परिचर्या में व्यस्त। उस व्यस्तता में उसे न भूख थी न प्यास। वह शारदा और अपने आप में डूबा हुआ यहाँ तक न जान सका कि उस रात को चाँद भी चमका कि नहीं; तारे जगमगाये या नहीं, धन्धधन्धी दुनिया ने आराम किया कि नहीं।

इसी बीच में शारदा के जीवन की इति का क्षण भी आ पहुँचा। उसने संकेत से नर्मदेश्वर को अपने मुँह के निकट कान ले आने को कहा। नर्मदेश्वर ने भर्रायी आवाज में कहा—'कुछ कहोगी सारो !'

शारदा ने फिर संकेत से हाँ कर दी। नर्मदेश्वर एकदम उसके ऊपर झुक आया। इस तरह झुकते हुए आज उसने फिर शारदा के प्रति वैसे ही प्रबल मोह और आकर्षण का अनुभव किया जैसा कि कभी रूपसी शारदा के उद्वेलित यौवन में किया होगा।

शारदा ने उसकी भरी आंखों को देखा और फिर अनायास बाहर निकल आए आंसुओं को क्षीण मुस्कान के साथ अपने दुर्बल कर से किसी तरह पोंछते हुए कहा—'आज अपने अंतिम समय में एक बात कहूँगी। तुम सुनोगे तो जरूर ही!'

इतना कहकर वह क्षण भर के लिए रुकी और फिर विलीन होती मुस्कान के साथ धीमी पर गम्भीर आवाज में कहा—'मैं मर रही हूँ, पर यह न जान सकी कि मेरा इस तरह मर जाना क्या ठीक होगा। अधिक तो मैं कुछ नहीं समझती। न किताबें पढ़ीं और न कभी घर के बाहर की दुनिया देखी। फिर भी मैंने अपनी छोटी-सी दुनिया में बहुत कुछ देखा है। इस दुनिया में मैं कभी बेटी थी, फिर किसी की बहू या पत्नी हुई। पत्नी होकर जैसे मैंने बहुत कुछ हार दिया। मेरे खून में ही कुछ ऐसा था कि मैं चाह कर भी अपनी हार को पलट न सकती थी। मेरी दृष्टि स्त्री की, विशेषतः पत्नी की उसी दुनिया तक जाती थी जिसकी कि अन्तिम सीमा अनुदार पतियों की कृपण इच्छाएँ हैं। इस तरह मैंने दुनिया भर की अपनी जैसी स्त्रियों और पत्नियों के भाग्य की एक ही लिपि देखी। मुझे इस कुटिल लिपि में कोई परम सचाई न जान पड़ी, फिर भी इसी सचाई के लिए मेरे और मेरे जैसे अनेक जीवनों की कुर्बानी हुई। मुझे

यह संस्कारों की विवशता और समाज की विषमता का ही पाप लगता है। पर चाहती हूँ कि इस पाप का अभिशाप केवल स्त्रियों पर ही न पड़े। स्त्रियाँ इसके प्रतीकार के लिए क्या करें यह भी नहीं कह सकती। पर चाहती हूँ कि कुछ ऐसा अवश्य करें जो कि सही हो। फिर चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो। इसी अधूरी चाह के साथ मैं अपनी नीरजा को तुम्हें सौंपे जा रही हूँ। विश्वास है कि उसके हित में वही करोगे जो कि नारी मात्र के लिए न्याय होगा।'

दो

शारदा को मरे काफी दिन हो गए। वह और उसकी विडम्बना कहानी-भर बन कर रह गई। पर नर्मदेश्वर के लिए यह ऐसी कहानी न थी जो अनायास ही भुलाई जा सकती। शारदा की मृत्यु ने उसके जीवन के विस्तार को छीन लिया था। किन्तु बाहर की दुनिया से सिमट कर जब वह एक बारगी अपने ऋषि और पंडित पूर्वजों के समान पुस्तकों के अध्ययन और मनन में डूब गया तो उसकी आँखों के आगे सचमुच की दुनियाँ से भी कहीं विस्तृत एक विचार का लोक प्रकट हो गया जिसका कि कहीं क्षितिज ही नहीं था। नर्मदेश्वर को आश्चर्य होता कि आज तक वह कैसे इस विराट से वंचित होकर संकीर्ण दुनिया की बुराइयों का शिकार होता गया। इसी प्रकार विचार करते और अध्ययन बढ़ाते-बढ़ाते नर्मदेश्वर ने यह भी जान लिया कि व्यक्ति के विचारों के विकास और इस दुनिया की प्रगति को बहुत अधिक काल तक असंबद्ध समझने का भ्रम नहीं बनाए रखा जा सकता। जब कभी विचारों का विकास न होकर ह्रास होने लगता है तभी यह समुद्र

की मेखला में समाई हिमालय और ध्रुवों की धरती आसमान की नीली चादर के नीचे अपने आप में बड़ी ही संकीर्ण जान पड़ने लगती है। फिर नर्मदेश्वर ने अपने चारों ओर की उस दुनिया को भी देखा जिसका कोई एक हिस्सा जब कि जीवन की दौड़ में अग्रगामी था तभी दूसरा हिस्सा अपने प्रतिगामी प्रयत्नों के द्वारा उसकी गति का अवरोध कर डालना चाहता था। इसी तरह विकास और ह्रास की इन दोनों शक्तियों में संघर्ष हो रहा था, जिनमें ख़ुद नर्मदेश्वर और नर्मदेश्वर की जानी-पहचानी दुनिया तक बँटी हुई थी। स्वयँ कब एक ही व्यक्ति अग्रगामी होता दीख पड़ता है और कब वही प्रतिगामी, नर्मदेश्वर के लिए टाल देने योग्य बात न रह गई थी।

नर्मदेश्वर के अध्ययन और विचार विकास के साथ-साथ नीरजा भी बढ़ रही थी। कैला एक अच्छी मा की तरह उस बच्ची को प्यार और चाव के साथ पाल रही थी। नर्मदेश्वर ख़ुद नित ही घंटों अपनी बच्ची के प्यार-दुलार में बिता डालता। पुस्तकों से थका दिमाग बच्ची के पास आकर फिर हरा हो जाता और इस प्रकार नर्मदेश्वर फिर से नई स्फूर्ति प्राप्त कर अध्ययन में जुट जाता।

प्रत्यक्षतः तो नर्मदेश्वर अपने ही जीवन की नई दिशा में प्रवृत्त था किन्तु उसके विचारों की क्रांति का जितना सम्बन्ध अपने जीवन से था। उससे कहीं अधिक अपने आगे आने वाली पीढ़ी से जो कि उसी जैसे वातावरण में पल-पनप कर संस्कारों से बाध्य होकर युग की प्रतिगामी शक्तियों का पलड़ा भारी करती। उस आने वाली पीढ़ी की जिस इकाई पर उसका

विशेष आग्रह था, वह थी नीरजा। शारदा जो कि जीवन के विकास मन्त्र को समझ कर भी कर्तृत्व के अभाव में जीवन से पलायन कर गई थी नर्मदेश्वर के दिमाग में एक ऐसी अशांति भर गई थी जिससे वह निरन्तर नीरजा में विचार-विकास के साथ-साथ कर्तृत्व क्षमता भरने के लिए परेशान रहता था। बच्ची नीरजा अभी तक किसी भी विशेष प्रभाव से मुक्त थी। अतएव नर्मदेश्वर ने सोचा कि इससे पूर्व कि उसका सुकुमार मस्तिष्क अपने चारों ओर के प्रभावों को अधिक गहराई से ले सके वह उसके वातावरण को ही बदल डालना चाहता था। फलतः सबसे पहले उसने उस वृत्ति की इति की जिससे शनैः शनैः उसे ख़ुद ग्लानि हो चली थी। यजमानों की वंशावलियों से भरी जिन बहियों के द्वारा उसके पितृजनों ने धन कमाया और विद्या गँवाई थी उन सबको एक ही दिन एक साथ बाँध-कर कनखल तीर्थ के अतल पुण्य-सलिल में प्रवाहित कर दिया था। सजातियों को उसके इस कृत्य पर इतना अधिक आश्चर्य हुआ था कि कुछ ने तो उसे पागल ही मान लिया। पर अब नर्मदेश्वर मिथ्या-प्रवादों के भय से सही रास्तों को छोड़ देने वालों में से न रहा था। बहियों के इस महादान के बाद उसे अपूर्व प्रसन्नता हुई जिसके मीठे नशे में उसने अपनी बच्ची का मुँह चूम-चूम कर ही अपने आपको थका डाला। इसके बाद नीरजा को केला को सौंप वह अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में आया और कुछ देर तक चुपचाप स्थिर भाव से बैठकर एकाग्र होने के बाद अपनी डायरी में कुछ लिखना प्रारम्भ कर दिया।

शारदा की मृत्यु के कुछ दिन बाद से ही नर्मदेश्वर ने इस

डायरी को लिखना प्रारंभ किया था। यह डायरी ऐसी न थी कि जिसमें अनिवार्यतः प्रतिदिन कुछ न कुछ लिखा ही जाता हो। इसका सम्बन्ध रोज आने जाने वाले दिनों से न होकर नर्मदेश्वर के अपने उन विचारों से था जो उसके जीवन के विकास में सीढ़ियों की तरह आ रहे थे। उस दिन के उसके नोट का उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा। उसने लिखा था।

'जीवन का एक निश्चित उद्गम तो माना जा सकता है किन्तु उसके विकास के प्रवाह को नदी की तरह कूलों में रख कर नहीं समझा जा सकता। फिर जिस तरह इस विकास का आदि तो होता है किन्तु इति नहीं उसी तरह प्रवाहमान जीवन का भी कोई अंत नहीं। क्षुद्र जीवनों को नित मरते मिटते और मृत्यु सागर में विलीन होते देख कर हम मान लेते हैं कि अवश्य ही जीवन का उद्गम कभी भी सूख सकता है और इसका प्रवाह किसी सागर की लहर मात्र बन कर अस्तित्व हीन हो सकता है। पर वस्तुतः ऐसा नहीं। विराट जीवन क्षुद्र जीवनों की प्रतिक्षण होती रहने वाली असंख्य मृत्युओं के द्वारा भी ह्रास नहीं पाता। विराट जीवन की वास्तविक सत्ता व्यक्ति में नहीं युग के विचारों में होती है और इसकी महत्ता के लिए ये विचार भी नष्ट नहीं किए जाते बल्कि विकसित होते हैं।

'हमारे जीवन के इन विचारों का जब कभी विकास रुकता सा जान पड़ता है तभी जीवन की विशालता संकीर्ण और अमरता की सनातनता संदिग्ध होने लगती है। हमने अपने पूर्व अर्जित विचारों को ही विकास की अथ इति-मान कर अपने विराट और अमर जीवन को संदिग्ध कर डाला था। पुनः जगत

के विराट जीवन के शृंगार के लिए हमें अपने विचारों को दरिद्रता से बचाना होगा। बीता हुआ कल केवल हमारा इतिहास बने, भविष्य नहीं। भविष्य के सुन्दर निर्माण के लिए तो कल से निकल कर फिर कल ही में डूब जाने वाले आज का परिष्कार करना होगा।

'किसी युग में हमारे अपने देश में विचारशील वर्ग की आवश्यकता थी। उस वर्ग का अभ्युदय ब्राह्मण समाज के रूप में हुआ। पर आज इस वर्ग और समाज से भी आगे बढ़कर विचारशील राष्ट्र और विचार-प्राण विश्व की आवश्यकता है। हिंसा सीमित स्वार्थ और रक्षा प्रतिरक्षा के आधार पर विश्व को ब्राह्मण क्षत्रिय या बुद्धि शस्त्र जैसी इकाइयों में बांटना नहीं। पर आज तो जरूरत है कि प्रत्येक व्यक्ति विचार बल द्वारा ब्रह्म-क्षत्रिय बने, समृद्धि और सेवा के द्वारा वैश्य शूद्र हो। व्यक्ति का एकांगी विकास न कर सर्वांगीण करना होगा।

'अतएव ऐसे युग में उन पुरानी व्यवस्थाओं की आवश्यकता भी नहीं रह जाती जो कि व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में घातक ही नहीं, बल्कि निकम्मों के लिए प्रोत्साहन भी हैं। जाति के नाम पर होने वाले आत्मघाती संकीर्ण प्रयत्नों को जाति से मिटा कर ही मिटाया जा सकता है। इस बड़े कार्य को करने के लिए आने वाली पीढ़ियों को ताजी और खुली हवा में सांस लेकर जीने की जरूरत होगी। अपनी बच्ची नीरजा को मैं उसी स्वास्थ्यप्रद ताजी हवा में पालना चाहता हूँ। सृष्टि-विकास के मूल में ही कोई सत्संकल्प हो तो वही मेरी रक्षा करे।'

इसी तरह जीवन की नींव विचारों पर डालते डालते शारदा को मरे पूरे दो बरस हो गए। नीरजा दो बरस से भी कई मास ऊपर की हो चुकी थी। पर जीवन केवल विचारों पर ही तो नहीं टिकता। इसके लिए कुछ कर्म की भी आवश्यकता होती है। कहने को तो उठना-बैठना, सोना-जागना, इधर उधर आना जाना सभी कर्म हैं, और नर्मदेश्वर ने दान-संचित धन को ही बैठे खाते न रहने के लिए पुस्तकों की एक अच्छी सी दुकान खोल कर जीविका का साधन भी कर लिया था। पर जीवन के कर्मों की परिणति जीविका या जी लेने में ही नहीं, बल्कि समय समय पर अवस्थाप्रभाव में उमड़ आने वाली सहज इच्छाओं का कर्मान्वित करने में भी है। नर्मदेश्वर जो इस समय देखने में तीस या पैंतीस बरस का लगता था वस्तुतः उसकी तेईस चौबीस से अधिक उम्र न थी। अपनी चढ़ती जवानी में वह जरूर तृप्ति की खोज में मारा मारा फिरा, मगर तृप्त न हो सका। फिर एक ऐसा अवसर आया जब कि उसने अपनी परिणीता को पहचाना पर उसके जिस रूप को वह पहचानने में लगा था एक दिन बिगड़ ही जो गया! उसका तृप्ति-सुख फिर नष्ट हो गया। और इससे पूर्व कि वह अपनी पत्नी के सच्चे रूप को पहचान कर तदनुसार करता उस क्रिया का आधार ही जाता रहा। नर्मदेश्वर की अतृप्ति ने फिर करवट ली!

इस बार नर्मदेश्वर पढ़ने-लिखने में डूब गया। इसी तरह डूबे डूबे जब उसने एक बार फिर सिर उठाकर देखा तो केला नौकरानी को एक नये रूप में पाया।

जाड़ों के दिन थे। नर्मदेश्वर दुकान बन्द कर दोपहर का भोजन करने आया था। कोई एक बज रहा होगा केला आँगन में खुली धूप में बैठकर गरम जल से बच्ची को नहला रही थी। नर्मदेश्वर के आने का उसे पता ही न चला और नर्मदेश्वर के मन में भी जानें क्या आया कि चुपचाप पास जाकर खड़े खड़े केला को लोभ की आंखों से देखते रहे। केला सवर्ण हिन्दुओं के लिए किसी छोटी जाति की कोई अट्ठारह बरस की युवती थी। रंग साँवला था फिर भी स्वस्थ और सुगठित देह के कारण आकर्षक लगती थी। उसकी छोटी छोटी आंखें इतनी उज्ज्वल थी कि उन्हें देखने में आनन्द ही आता था। बच्ची को नहलाने में उसके वस्त्र कुछ अस्त-व्यस्त हो रहे थे जिनमें वह और भी सुन्दर जान पड़ती थी। बच्ची को नहला चुकने पर बदन पोंछते पोंछते अचानक जो दृष्टि नर्मदेश्वर पर पड़ी तो वह अपने शिथिल वस्त्रों के सम्हालने में इतनी व्यस्त हो गई कि नर्मदेश्वर को क्षण भर के लिए वहाँ से हट जाना ही पड़ा। इसी बीच में केला बच्ची को बदन पोंछ कर तौलिए में लपेट कर नर्मदेश्वर के पास ले आई और गोद में सम्हलवाती हुई बोली—लीजिए, अब तो आप आ ही गए, दो मिनट के लिए इसे सम्भाल लें, तब तक मैं इसके पहरने के लिए धुले हुए कपड़े लेती आऊँ।

नर्मदेश्वर ने बच्ची को गोद में लेते हुए कहा—पर केला, आज तू मुझे देख कर इस तरह घबड़ा क्यों गई थी। केला ने चुप रह कर सिर्फ आँखें झुकालीं।

नर्मदेश्वर ने फिर कहा—मैं तो समझता हूँ कि नीरजा बड़ी होकर कभी यह महसूस भी न करेगी कि उसके कोई मा न थी।

केला और लज्जित हो उठी। नर्मदेश्वर ने पूछा—केला, तुम्हारी जाति में तो पुनर्विवाह हो जाता है। फिर तुमने विधवा बने रहना ही क्यों ठीक समझा।

केला नर्मदेश्वर को कुछ इतनी तेजी से खींच रही थी कि उसे अपने प्रश्नों की सीमाओं का ध्यान तक न रहा। पर इस बार केला न सहमी न सकुची बल्कि बड़ी ही दृढ़ता से उत्तर दिया—पण्डितजी किसी खास जाति वाले का दिल खास तरह का तो बना नहीं होता। पुनर्विवाह होने को तो बड़ी जातों में भी हो जाते हैं। मेरी समझ में तो यही नहीं आता कि अब मैं कैसे किसी दूसरे की हो सकती हूँ। आप ही बताएँ, क्या आप नीरजा के लिए दूसरी माँ लाना पसन्द करेंगे।

नर्मदेश्वर आकाश में उड़ता उड़ता जैसे फिर से धरती पर आ गया। उसे कुछ अपने ऊपर ही सन्देह होने लगा और उस क्षण वह बहुत सोचकर भी निश्चय न कर पाया कि क्या जीवन को मर्यादा या सीमा देनी ही होगी ? क्या अनन्त जीवनों के विराट जीवन का सत्य असंख्य इकाइयों के परिबद्ध जीवन में ही है ?

वह दिन तो बीत गया, पर उसकी छाप न मिटी। केला तो अपनी वही जिन्दगी बिताती गई, पर नर्मदेश्वर को घुन लग गया। केला का केवल एक ही रूप था और वह था विचार शून्य किन्तु आस्थापन्न। नर्मदेश्वर के अनेक रूप थे या कि नर्मदेश्वर विचारों के प्रवाह के समान रूपों का एक अजस्र प्रवाह था जो उसके विचारों के प्रवाह में ही डूबता तिरता रहता था। फिर भी केला से उसने एक स्थिर सत्य सीखा था

जिसे उसने उसी दिन अपनी डायरी में उतार भी लिया था। वह इस प्रकार था—

'व्यक्ति कुछ ऐसा नहीं है कि उसे विशेष परिस्थितियों के कारण ही कुछ विशेष मान लिया जाए। परिस्थियों के उस पर प्रभाव अवश्य पड़ते हैं, पर परिस्थितियाँ उसका सच्चा रूप नहीं होतीं। विधवा केला की सामाजिक परिस्थिति ऐसी है कि वह निरन्तर विवाह करती रह सकती है। पर जो उसकी जाति का रूप है वही उसका तो नहीं। इसी से वह सवर्ण हिन्दू विधवा के समान विधवा बनी रहना पसन्द करती है जब कि अनेक सवर्ण हिन्दू विधवाएँ भी अपनी जातिगत परिस्थितियों के कारण ही वैधव्य को चिरायु नहीं कर डालतीं। इससे यही पता चला कि व्यक्ति एक ऐसा पदार्थ है जिसे कि कुछ भी रूप दिया जा सकता है, फिर भी हर साँचा उसे अपने रूप में नहीं ढाल सकता! तब इन जबरदस्ती खड़ी की गई रूप विषमताओं के लिए उत्तरदायी कौन?'

तीन

नर्मदेश्वर के जीवन से लगता था कि वह नीरजा के विकास के लिये ही अपनी पुरानी जिन्दगी को नई भूमिका दे रहा है। प्रायः कोई भी व्यक्ति या उसका व्यक्तित्व देखने में जितना पूर्व पर से विच्छिन्न जान पड़ता है उतना वह वस्तुतः नहीं होता। विचार करने पर पता चलता है कि एक व्यक्तित्व अनेकों व्यक्तित्वों के प्रभावों का समुच्चय होता है। जब व्यक्ति के मन में कोई संघर्ष उठता है तो प्रायः ये विविध व्यक्तित्व ही अन्तर्हित रह कर विरोध-ग्रस्त हो उठते हैं। नर्मदेश्वर इधर जिस रूप में भी विकसित हो रहा था उससे पृथक् उसका एक अंतरंग पक्ष था संस्कार पुरुष जो किन्हीं अंशों में धर्म-भीरु भी था किन्हीं अंशों में समाज बद्ध भी। फलतः नर्मदेश्वर के विकास-शील व्यक्तित्व का पग-पग पर यह संस्कार-पुरुष विरोध करता था। पर उसने अभी कुछ वर्ष पूर्व ही देखा था कि किस प्रकार शारदा का विकास-प्राण व्यक्तित्व संस्कारों के आग्रह पर बलि हो गया था। इन संस्कारों को जड़ से उखाड़ फेंकने की क्षमता तो नर्मदेश्वर में भी न थी, फिर भी उनसे

लड़ने की शक्ति वह नीरजा का मुँह निहार-निहार कर पाता गया। इसी तरह नीरजा पाँच वर्ष की हो गई। मतलब कि लगभग तीन बरस और गुजर गए पर इन तीन बरसों ने ही जैसे नर्मदेश्वर को तीस साल बूढ़ा कर दिया था। केला आज भी उसी तरह नीरजा की माँ बनी थी। इन कुछ बरसों में उनकी देह का मनोहारी विकास हुआ था। कदाचित् नर्मदेश्वर अपने संस्कार पुरुष को ललकार कर केला से शादी करने में सामर्थ्य-पूर्वक सफल होता और केला भी अपने जीवन को किसी अप्राप्य आदर्श से न बाँध लेती तो निश्चय ही नर्मदेश्वर को बुढ़ापा असमय में ही न घेर लेता। पर वह स्वयँ जो कुछ न पा सका उसे अपनी बच्ची के लिये अवश्य ही सुलभ बना डालना चाहता था।

इसी उपक्रम में एक दिन नर्मदेश्वर ने स्वयं ही नीरजा की पढ़ाई का श्री गणेश भी कर दिया। उस दिन उसने पहले तो गरीब छात्रों को नीरजा के हाथों से पुस्तकों की भेंट दिलवाई और बहुत से उसी की उम्र के छोटे-छोटे बच्चों को कपड़े, खिलौने और मिठाइयाँ। इसके बाद अक्षराराधन प्रारम्भ हुआ। नीरजा जो आज अपने नये-नये कपड़ों में बहुत अधिक मगन थी, यह सब जान ही न पाई थी कि पिताजी ने इस तरह उससे बहुत-सी किताबें, कपड़े, खिलौने और मिठाइयाँ क्यों बटवाईं। कारण न जानते हुए भी उसे यह सब-कुछ अच्छा लगा था, इससे वह और भी अधिक प्रसन्न थी। उसी प्रसन्नता में उसने कहा भी—पिताजी मैं रोज इसी तरह चीजें बाँटूँगी। आप मुझे लाकर दिया करेंगे न।

नर्मदेश्वर ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—जरूर मेरी रानी बेटी, जब तुझे इस तरह देते रहने में ही आनन्द आया करेगा, तब मुझे भी ख़ुशी होगी। पर आज पहले तुम पढ़ो। बचपन में ही जब बहुत कुछ पढ़ जाओगी तो बड़ी होकर बहुत-सी भूलें करने से बच सकोगी। अच्छा तो बेटी अपनी मां को तो प्रणाम करो।

नीरजा जो पिता की पहली बात कुछ न समझ सकी थी मां का प्रसंग आने पर चौंक-सी पड़ी। उसने साश्चर्य पूछा—मां, मां कहाँ हैं पिता जी।

क्षण भर के लिये नर्मदेश्वर को भी न सूझा कि क्या बताएं। तभी उसकी दृष्टि पास ही बैठी केला पर जा पड़ी। केला कुतूहलवश बैठी हुई वह सब-कुछ देख सुन रही थी। नर्मदेश्वर ने उसी की ओर संकेत करके कहा—तेरे जीवन की मां यह रही बेटी ?

केला यह सुनते ही कुछ ऐसे संकोच से भर गई कि वहाँ से उठकर जाने लगी। नर्मदेश्वर ने उसे रोक कर कहा—ठहरो केला, इस तरह क्यों चल दीं। तुमने इस बच्ची को जन्म नहीं तो क्या, जीवन तो दिया है।

केला विवश-सी होकर रुक गई। पर लज्जा की जो ललाई उसके कपोलों को लाल कर गई थी वह कुछ स्थिर-सी होकर कानों तक फैल गई थी। तभी नीरजा शिकायत-सी करती हुई बोली पर पिताजी ये तो मुझे मां कहने से मना करती हैं। मैं जब भी इन्हें मां कहती तो ये मुझे चुप कर देतीं। कहतीं कि ऐसा नहीं कहते, पाप लगेगा। तेरी मां तो देवी थी जो स्वर्ग चली गई। यह स्वर्ग क्या होता है पिताजी।

'सो तू अभी नहीं समझेगी बिटिया। यह एक बड़ा भयङ्कर भ्रम सुख है जिसका कि रास्ता जीवन के अन्त पर से शुरू होता है। इस जीवन में जो स्वर्ग पा-लेने से हार मान लेते हैं वे मरकर वैसा पाने की कोशिश करते हैं। कोई नहीं जानता कि आज तक जीवन के पार उस स्वर्ग तक कोई पहुंचा भी कि नहीं, पर इतना तो सब देखते हैं कि उस स्वर्ग के लोभी इस दुनिया को भी नहीं भोग पाते।'

तब केला के इस विरोध पर कि 'आप यह बच्ची को अभी से क्या-क्या सिखाने लगे' नर्मदेश्वर को चुप हो जाना पड़ा। केला ने नीरजा की मां के से अधिकार से आज पहली बार उसका शासन किया था। इस शासन से नर्मदेश्वर को प्रसन्नानुभूति ही हुई जिसे जानकर केला भी समझी कि वह जरूर ही नौकरानी केला की सीमा पार कर गई।

इसी तरह नीरजा की पढ़ाई प्रारम्भ हो गई। पहला ही अक्षर था 'अ'। नर्मदेश्वर ने कहा—देखो, बेटी यह है 'अ'। बोलो 'अ' का अत्याचारी!

नीरजा ने चट शंका की—यह अत्याचारी क्या होता है पिता जी? यहाँ तो अमरूद की तसवीर बनी है!

'हाँ यह अमरूद ही है। पर अत्याचारी पुरुष होता है। पुरुष समझी? ठीक जैसा मैं। अत्याचारी भी ठीक ऐसा ही। यह पुरुष स्त्री पर अत्याचार करता है। पर स्त्री ऐसी देवी होती है कि उसके अत्याचारों का भी विरोध नहीं करती। इसी से पुरुष के अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं। पर मेरी सलाह है बेटी कि अब स्त्रियों को देवी बनने का मोह त्याग देना चाहिये।

उन्हें मानवी बन कर ही अत्याचारों का विरोध और अपने अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये ।'

'केला ने दुखित होकर यह सब-कुछ सुना था । पर इस बार न तो वह विरोध कर सकी और न बैठी रह सकी । नर्मदेश्वर ने उसे न रोका । उसका उठकर चल देना ही मानों सबसे बड़ा विरोध था । बस उस दिन का पाठ उतना ही रहा ।

नर्मदेश्वर के जीवन में एक दाह था और वह उस दाह को अधिक से अधिक व्यापक करके ही शान्ति-पा लेना चाहता था । पर जलकर राख हो जाने पर जो शान्ति आती है, उस शान्ति में भी भला कोई जीवन होता है । जीवन के लक्षण तो नर्मदेश्वर के तब प्रगट होते जब कि वह नीरजा के साथ हिलमिल कर ठीक उसी जैसा बच्चा बन जाया करता । अक्सर खाना खाते समय ऐसे क्षण उपस्थित हो जाते । दोनों बाप-बेटी साथ ही एक थाली में खाने बैठा करते । पिता गस्से तोड़-तोड़कर खिलाते । बेटी गिनती—दो, नौ, चार । बस पूरे हो गए पिताजी !

फिर बेटी गस्सा तोड़कर पिता के मुँह में रखती और कहती—अब तुम गिनो पिताजी ।

पिता गिनते—'एक ।' और तभी कह देते 'बस' ।

नीरजा मचल उठती—वाह अभी से बस कैसे ?

इतनी जल्दी कैसे पूरे हो गए ?

'मुझे गिनती नहीं आती बेटी । अच्छा तो अब मैं गस्से तोड़कर देता हूँ । तुम ही गिनो रानी बेटी । तुम्हें खूब आता है गिनना ।'

बिटिया खुशी में नाच उठती—'अहाजी, पिताजी इतने बड़े, गिनना भी नहीं आता।'

तभी नर्मदेश्वर ने ग्रास लिया और अच्छी तरह साग-दाल से भर कर 'रानी बिटिया' के मुँह में रख दिया। बिटिया तत्काल चिल्ला उठी—'एक' और साथ ही निवाला मुँह से बाहर आ-गिरा।

पिता ने समझाया—नहीं ऐसे नहीं गिना करते बेटी! पहले ग्रास चबा-चबा कर निगल लेना चाहिये और तब बोलना चाहिए।

पर बिटिया ऐसी बातें न मानती। वह और जोरों से चिल्ला-चिल्लाकर गिनती—'उन्नीस, ग्यारह। पाँच''' पिता दबादब निवाले देते चलते आखिर रानी बिटिया की संख्याएँ ही चुक जातीं और तब वह हार न मानने के लिए मचल उठती। तब पिता को खाने और गिनने पर विवश होना पड़ता; और वे पहले ही गस्से पर चिल्ला उठते—'चालीस।'

बिटिया दूसरा ग्रास देती पर वे कहते—बस रानी बेटी। मेरी गिनती ज्यादा हो गई !

'वाह ऐसे कैसे ज्यादे!'

'चालीस, उन्नीस, ग्यारह और पाँच के बाद आते हैं न इसी से ज्यादा हुए।'

निर्णय के इस आधार को तो बिटिया मान लेती, पर निर्णय को नहीं। फलतः खुद गिनने बैठती—तीन'''''।

पिता विरोध करते—नहीं, तीन नहीं, पहले एक ही कहो रानी बेटी। एक पहले आता है।

'वाह, एक कैसे पहले आएगा। वह तो 'एक' ही है पिताजी।'

इस पर पिता हँस भर उठते। एक, एक ही है इस बात का खण्डन भी कैसे करते।

❀ ❀ ❀

नीरजा की शिक्षा चल रही थी। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वह प्रत्येक बात इतनी जल्दी सीख लेती कि नर्मदेश्वर उसे और भी अधिक उत्साह से पढ़ाने लगते। इसी उत्साह में कभी-कभी ऐसी बात भी कर जाते जिनका कि पढ़ाई से कम किन्तु उसके अपने हृदय के असंतोष से कहीं अधिक सम्बन्ध होता नीरजा इधर सात बरस की हो चुकी थी। समझ उसमें जाग जरूर रही थी, पर इतनी नहीं कि नर्मदेश्वर की अस्पष्ट बातों को भी समझ लिया करती। बढ़ते और बदलते समय के चिन्ह नर्मदेश्वर पर बड़ी गहराई से पड़ते जा-रहे थे। यह दो बरस का एक और समय का टुकड़ा बीत गया, जिसने उसे और बूढ़ा कर दिया। समय की यह साधारण विशेषता है कि उसका आने वाला अंश ही दुर्बल जान पड़ा करता है। जो अंश बीत चुकता है वह केवल कहने-सुनने के लिए रह जाता है। नर्मदेश्वर को भी यही भान होता। पर वह नन्हीं नीरजा को देखकर जो कि उसकी समझ में बहुत धीरे-धीरे बढ़ रही थी सोचा करता कि मेरी बूढ़ी जिन्दगी इस बच्ची की आती नई जिन्दगी का कैसे साथ दे सकेगी। इस तरह उसकी अनेक दुश्चिन्ताओं में एक चिन्ता और जुड़ जाती।

एक दिन नर्मदेश्वर ने नीरजा को जोड़ सिखाने का इरादा किया। पर जोड़ के सवालों के समझाने के स्थान पर उसने

कहना शुरू किया—देखो बेटी जिन्दगी भी एक हिसाब है, इसमें जोड़-तोड़ होता है, और बराबर होता रहता है। इसे कुछ लोग लेन-देन और बाँट-छाँट के रूप में भी समझाने की कोशिश करते हैं। बाँट-छाँट में कभी गुनना पड़ता है तो कभी तकसीम करना। यह सब-कुछ करने में जो हल करना पड़ता है उसी को कहते हैं जिन्दगी!

नीरजा ने कुछ न समझा, फिर भी नर्मदेश्वर ने कहना जारी रखा—पर मैं जिन्दगी के इस सारे हिसाब में जोड़ को ही महत्वपूर्ण पाता हूँ। घटना, गुनना और तकसीम करना ये सब इसी जोड़ के रूपान्तर हैं। देखो न बेटी जबकि जिन्दगी बरसों की बलि ले-लेकर या दे-देकर बढ़ती है तो दूसरी ओर वह उसी अनुपात से घटती भी रहती है। इसी को कोई तकसीम करके कह देता है कि जिन्दगी का इतना हिस्सा बीत गया और कोई गुना करता हुआ सोचता है कि बीते हिस्से का इतना गुणा बिताना बाकी है। पर है असल में यह सब जोड़ ही।

कैला पास ही ओट में खड़ी 'पंडित जी' की इस फिलासफी को सुन रही थी। उसकी समझ में आ ही नहीं रहा था कि बच्चों को इस तरह की बातें क्यों कर बतानी चाहिएँ। यह तो उनका दिमाग ही बिगाड़ना हुआ। फिर भी वह सुनती रही। नर्मदेश्वर ने और आगे कहा—समझती हो रानी यह जिन्दगी एक जोड़ ही है। पर बहुत से ढोंगी इसे मामूली जोड़ से ज्यादा योग समझने लगते हैं अपने इस योग की तारीफ में वे कहा करते हैं कि मनुष्य जीवन साधनाओं और तपस्याओं का योग है। पर उनसे कोई पूछे तो कि यह साधना किसकी? तपस्या

किस लिए ? और ये साधना तपस्या ही क्या ? तब वे अंधेरे में ढेले फेंकने लगते हैं। पर अच्छी बेटी आज मैं तुझे बताता हूँ कि यह साधना नाम है प्रवंचना का, तपस्या कहते हैं विडम्बना को। तू इस झूठे योग को साधने के लिए भूलकर भी इन विडम्बनाओं और प्रवंचनाओं में न फँसना।

जब इसी तरह नीरजा को पढ़ाकर नर्मदेश्वर दुकान पर जाने लगा तो उसे कला ने बाहर आंगन में घेरकर कहा—पंडितजी आपकी बड़ी-बड़ी बातें तो मैं नहीं समझती, फिर भी लगता है कि आप बच्ची के हित में ठीक नहीं कर रहे हैं। मैं नहीं समझती कि आखिर आप यह सब क्या और क्यों उसे सिखाना चाहते हैं।

नर्मदेश्वर ने धीरता पूर्वक यह आरोप सुना और फिर प्रयत्नतः मुसकरा कर कहा—सो तो मैं तुझे भी सिखाना चाहूँगा कला। मुझे तो लगता है कि तू भी नीर से अधिक समझदार नहीं। इस दुनिया की कुटिलताओं के लेखे उतनी ही भोली और बच्ची है।

लज्जा कला के कानों को मसलने लगी थी। फिर भी उसने साहस-पूर्वक विरोध किया—पर यह तो मेरी बात का जवाब नहीं हुआ।

'मेरी जैसी सीधी और भ्रम को ही सत्य समझकर पूजने वाली स्त्रियों के लिये मेरे पास कोई जवाब है ही नहीं। नीर की मा भी तो ऐसी ही थी। उसने मरकर मेरे सामने एक सवाल पेश कर दिया। मैं आज तक हर बात में, हर प्रयत्न में उसी का उत्तर खोजता हूँ, पर जो कि उत्तर पा-सका, कि दे सका।'

'यह मैं कुछ नहीं जानती। मेरी तो विनती इतनी ही है कि आप भोली बच्ची को ऐसी सीखें मत दें जिन पर चलते हुए उसका इस दुनिया में निभना ही समस्या हो जाए।'

'पर केला तुम किस दुनिया की बात कहती हो? उस दुनिया की तो नहीं जिसमें कि पुरुष प्रभु है और स्त्री दासी। स्त्री को बताया जाए कि पुरुष के अत्याचार भी उसके लिये अनुग्रह मूल हैं। इसी तरह तुम लोग अनादिकाल से ठगी जा-रही हो। उस वंचना को समझकर भी तुम श्रद्धामयी बनी रहीं, विश्वास करती रहीं। तुम्हारे दिमागों में ऐसे ही आदर्श ठूंस दिए गये और तुम्हारी जाति की जाति उनके लिये मरती रही, मिटती रही। पर मैं अपनी बेटी को तुम्हारी जमात में शामिल न होने दूँगा। उसे मुझे बताना ही होगा कि जीवन आदर्शों के लिए मर जाने के लिए नहीं पर आदर्श होकर जीते रहने के लिए है। जबकि आदर्श जीवन की कमजोरी बन जाएँ तो वे आदर्श नहीं ही रह जाते। बलिदान तो शक्ति का परिचय देने के लिये होने चाहिएँ न कि दुर्बल प्रभावित होकर मर जाने के लिये। मुझे नीरजा को यही सीख देनी है कि स्वत्व और अधिकार के लिये लड़ो। अगर तुम्हारे आदर्शों में केवल त्याग और पलायन रहा तो जीवन संशय में पड़ जाएगा।'

'लेकिन आप इतना भर चाहते तो कोई बात न थी। पर आप तो आज तक जो कुछ होता आया है उसे एकदम उलट कर एक नई गंगा ही निकालना चाहते हैं। इस उल्टी गंगा से मेरा कोई विरोध नहीं, पर मैं नहीं चाहती कि तुम मेरी बच्ची को अपने असंतोष का हथियार बनाओ।'

'मुझे तुम्हारी एक बात से तो खुशी ही हुई। सौभाग्य कि तुमने नीर को अपनी बच्ची तो समझा। पर तुम्हारी इस बात में कौन सा तर्क है कि जो आज तक होता आया है वह कल भी अवश्य हो। इसमें मोह के अलावा क्या और भी कोई संगति है।'

'आप जैसी बुद्धि और विद्या तो मेरे पास नहीं जो तर्क कर सकूँ। फिर भी मैंने कभी किसी से सुना था कि इतिहास न केवल अतीत का ब्योरा है बल्कि वह वर्त्तमान के परिष्कार और भविष्य के संधान में भी महत्वपूर्ण ढंग से सहायक होता है।'

नर्मदेश्वर ने हँसते हुये कहा—खूब, तब तो तुमने इधर पढ़ाई-लिखाई में काफी तरक्की की। यह न सोचो कि मैं तुम्हारे इस छिप-छिप कर पढ़ने को नहीं जानता था, हाँ इतना अवश्य ही नहीं सोच सका था कि तुम इतना आगे बढ़ चुकी होगी। तुम्हारी अभी अभी की बात सुनकर मुझे कहना पड़ रहा है कि यह तुम्हारी सुनी हुई नहीं बल्कि पढ़कर समझी हुई बात है।

केला ने आँखें नीची कर ली थीं। नर्मदेश्वर कहता गया—शरमाओ नहीं, इसमें लजाने की कोई बात नहीं। अब मैं तुम्हारे ऊपर नीरजा के बारे में और अधिक भरोसा कर सकूँगा। सच ही मेरी बेटी भाग्यशाली है जो इसने एक देवी जैसी मां को खोकर फिर दूसरी वैसी ही मां को पाया।

केला, जिसकी लज्जा बढ़ती ही जा रही थी किसी तरह वहाँ से गायब हो जाना चाहती थी। इसी से जमीन कुरेदती हुई बोली - जाऊँ, बच्ची अकेली ही होगी।

'चली जाना केला ! फिर नीरजा भी तो यहाँ आ सकती है। आज मैं तुमसे बातें करके बहुत ही प्रसन्न हुआ। इसी से कुछ और कहूँगा। तुम्हारी पहली बात का जवाब भी इसी में है। मैं मानता हूँ कि अतीत इतिहास बन जाता है और इस प्रकार उसकी सभी अच्छाइयों बुराइयों का एक महत्व भी हो जाता है। पर इसीलिए उसकी पूजा नहीं की जा सकती। उस पर विचार करना ही होगा।'

केला सुस्थिर हो चली थी। इस बार उसने जोर देकर पूछा—तो क्या आप यह भी मान लेंगे कि रीति-रिवाज, आचार-परम्परा और रूढ़ियाँ अनायास असंयोग में ही नहीं बन जातीं। इनके निर्माण में मनुष्य जाति के विपुल प्रयत्न होते हैं। विशेष प्रकार की उपयोगी और सत्वमयी वृत्तियाँ ही इन प्रयत्नों को उत्तेजन देती हैं।

'बिल्कुल ठीक। इसके मान लेने में किसी भी विचारवान को विरोध न होगा। और अगर तुम इससे यही कहना चाहो कि इन रूढ़ियों पर प्रहार करते हुये उनके इतिहास को भी समझ लेना चाहिये तो भी मुझे अस्वीकार न होगा। पर जैसा कि मैं कह चुका कि इतिहास के आवरण में किसी भी बात की पूजा नहीं करने लगना चाहिए।'

इसी तरह के प्रसंगों से विचार और व्यवहार में केला नर्मदेश्वर के परिवार की एक साधारण नौकरानी से गृहस्थी की संचालिका बन चली। वह काफी छुटपन से इस घर में काम करती रही है। फिर उसका व्याह हो गया था और तब यहाँ से बाहर ससुराल चले जाने के कारण इस परिवार में आना

जाना कुछ दिनों के लिए रुक सा गया था। फिर भी जब कभी वह ससुराल से लौटती तो इस घर को अपना ही घर समझकर आया करती। इस घर से अधिक उसे शारदा से मोह था। शारदा उसे सहेली की तरह प्यार करती और वह उसे मालकिन की तरह पूजती। इसी तरह दोनों एक दूसरे के लिये बहुत कुछ महत्व रखती थीं। ब्याह के थोड़े ही दिन बाद केला विधवा हो गई और जाने क्यों उसने मान लिया कि आज से उसका सौभाग्य-सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। वह दुनिया भर की उन करोड़ों स्त्रियों में से एक थी जो अपनी और अपने जीवन की सार्थकता किसी पुरुष विशेष के लिये ही मानती हैं, फलतः उसके न रहने पर या तो मर जाना पसन्द करती हैं अथवा निरर्थक होकर जीती रहती हैं। जब ससुराल के अत्याचार न सहे गये तो इस निरर्थक जीवन को लेकर अपने जन्म के घर लौट आई। यहाँ भी माँ-बाप तो थे ही नहीं जबकि भाई-भाभियों ने पहले का सा स्वागत न किया। तब वह अपने मालिक के घर में आकर टहल करने लगी। और वहीं रहना शुरू कर दिया। शारदा यद्यपि स्वयं इस परिवार और जीवन में सुखी न थी, फिर भी केला को उससे सुख ही मिला और इस तरह जीवन का छकड़ा चलता ही रहा। केला की ससुराल के लोग अपने जातीय रीति-रिवाजों के अनुसार अपनी विधवा बहू को अपने ही किसी सगे-संबंधी के घर में बैठा लेना चाहते थे। देखने भालने में चंगी और किन्हीं अर्थों में खूबसूरत भी वह थी ही। इससे ऐसा होने में कोई अड़चन थी ही नहीं। पर केला जो सवर्ण-हिन्दू-परिवारों में टहल करते करते बहुत कुछ उनके संस्कार अपना चुकी थी, सहसा इसके लिए तैयार

न हो सकती थी। तब उसे अपने पति के वियोग का दुःख भी था, जिसे कि उसने पहली ही बार चाहा हो, समर्पण किया हो। इस पर जब ससुराल वालों का दूसरे ब्याह के लिए दबाव पड़ा तो वह हठ पकड़ती गयी। एक दिन यही हठ उसका आदर्श बन गया जिसके कि समर्थन में वह उच्चवर्गीय हिन्दू विधवाओं के संस्कार भी पा गई थी। पर इधर जबसे उसने पढ़ना और कुछ कुछ विचारना प्रारम्भ कर दिया था उसके विचारों में फिर से कुछ परिवर्त्तन हुआ। इस परिवर्त्तन का एक अज्ञात कारण नर्मदेश्वर था, जिसे वह जान कर भी अज्ञात बनाए रखना चाहती थी। फलतः उसने अपने इस सैद्धान्तिक परिवर्त्तन को गुह्य रखा।

पर केला जब अपने फूल से खिले उच्छवासों से पुलकित देह को देख कर नर्मदेश्वर के अकाल-वृद्ध शरीर को देखती तो कष्ट ही पाती और चाहती कि वह भी ऐसी ही हो जाए। नर्मदेश्वर का अवस्था को पाकर आया बुढ़ापा न होकर विचारों से पका आकृति का बुढ़ापा था। यह आकृति का बुढ़ापा सच ही भयानक होता है। वाणी में यद्यपि गम्भीरता और प्रखरता थी, आंखों में वैसा ही तेज था फिर भी अधकचरे बाल, चिन्ता से म्लान मुख और आंखों के नीचे की कालिमा को देख कर अनजान को भी पीड़ा पहुँचने लगती थी। नन्हीं बच्ची नीरजा तक पिता के शरीर के इस समय से पूर्व आए बुढ़ापे को शंकित होकर देखती। उसके देखते ही देखते जो परिवर्तन हो चले थे वे इतने स्पष्ट थे कि कुतूहल का न होना ही कुतूहल था। नीरजा तो सात बरस से नौ की कि दस की हो गई पर लगता कि

नर्मदेश्वर बीस बरस कि तीस बरस बढ़ा हो गया। नीरजा अपने कुतूहल को मुखरित करती हुई दस के बजाय पांच ही साल की हो जाती। एक दिन वह पूछ ही तो बैठी—आप ऐसे कैसे हो गये पिताजी। मैं तो अभी······

'धत् पगली! अभी से मेरी बराबरी करती है। बेटी मुझे तो इस दुनिया ने बूढ़ा बनाया है। तू नहीं जानती कि मुझे इससे कितना लड़ना पड़ा है। लड़ते-लड़ते थक भी गया पर आज तक यह लड़ाई खत्म नहीं हुई। लगता है कि जिन्दगी की लड़ाई तो जिन्दगी के साथ ही खत्म होती है।'

नीरजा ने न समझते हुए भी बड़ी तीव्र उत्कण्ठा से पूछा—'यह दुनिया भला कब से लड़ रही है पिताजी!'

नर्मदेश्वर हँस पड़ा। कहा—'बहुत दिनों से बेटी! तुझे तो अभी उतनी गिनती भी नहीं आती होगी?'

नीरजा चाहती थी कि वह गिनती न जानने का विरोध करे। अब तो वह कई दर्जे पढ़ चुकी थी। तरह तरह के सवाल हल करने में तेज हो गई थी। पर पिता को कुछ और कहने के लिए मुंह खोलते देखकर चुप रह गई। नर्मदेश्वर कहता गया—'जीवन का एक एक दिन बुढ़ापे का सिपाही है। हर पल, हर घड़ी ये सिपाही मार करते रहते हैं। साँसों का चलना रुक सकता है, पलकों का झपकना भी बंद हो सकता है, पर इनके निरन्तर होते रहने वाले प्रहारों में कोई शिथिलता नहीं आती। दिनों की यह हर पल की लड़ाई होती है सिर्फ अपनी सत्ता को कायम रखने के लिये। पर मजा यह कि इसी तरह सत्ता बढ़ती भी रहती है और घटती भी।'

'पर पिता जी, आपकी बराबर बड़ी मैं कब होऊँगी ?'

'कभी नहीं। बच्चे सदा बच्चे ही रहते हैं।'

नीरजा क्षण भर के लिये घबड़ा सी गई। भला यह भी क्या कि उसे यह लड़ाई देखने तक को न मिले। वह मचल उठी—'नहीं, मैं नहीं जानती, आप ही इतने बड़े क्यों हुये।'

नर्मदेश्वर ने प्यार में भरकर बेटी के गाल थपथपा दिये। हँसते हुये कह दिया—'तुझे खिलाने के लिये। बूढ़ों को बच्चों से खेलने में बड़ा आनन्द आता है। तुम्हारे जैसे सुन्दर प्यारे खिलौनों से ये बूढ़े सदा खेला करते हैं। तू भी तो गुड़िया खेलती है न बेटी।'

'नहीं आजकल मैं सिर्फ पढ़ती हूँ, या केला मा से बातें करती हूँ, या कमला, विमला, उषा के आने पर दौड़ दौड़ कर खेला करती हूँ।'

'ओ ! तब तो मेरी बच्ची बड़ी ही सयानी हो गई।'

चार

दिन जुड़जुड़ कर मास बरस बनते गये जिनके साथ साथ नीरजा बालिका से किशोरी हुई, नर्मदेश्वर कुछ और थका हारा जान पड़ने लगा और कला में प्रौढ़ता का आभास मिलने लगा। इस प्रौढ़ता के साथ साथ कला का संकोच कम होता गया और अब वह नर्मदेश्वर से मुक्त होकर तर्क करने लगी तथा अवसर पड़ने पर गृहिणी जैसे विशेषाधिकारों का प्रयोग करने से भी न चूकती। इसी बीच में नर्मदेश्वर एक दो बार बीमार भी पड़ा और यह कला ही थी कि नर्मदेश्वर आज भी जीवित था। इस जीवन के साथ साथ उसे कला का वह प्यार भी मिला जो किसी भी सत्पुरुष के लिए परम सौभाग्य होता। अपनत्व के अधिकार से की गई सेवा को जिसमें कि समय समय पर कला की ओर से शासन के स्वर भी गूंज उठते हों प्यार से उत्तम और दूसरा नाम दिया भी क्या जा सकता है। इस प्यार ने नर्मदेश्वर को कुछ प्रसन्न भी कर दिया था। कला में भी मुखरता जागी और इस तरह बातों ही

बातों में उनके बीच ऐसा वातावरण उपस्थित हो जाता कि वे दम्पति से कम-अधिक कुछ न जान पड़ते।

एक बार घोर बीमारी की हालत में जबकि केला नर्मदेश्वर को जिद् करके दवाई पिलाना चाहती थी एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हो गया था जिससे केला का गुह्य-गुह्य न रह सका था। नर्मदेश्वर ने दवाई न पीने की इच्छा प्रगट करते हुए कहा था—ये कडुवे घूंट किस लिये पिला रही हो केला। इस तरह बच भी गया तो बाकी जिन्दगी बिताने में क्या आनन्द आएगा!

केला का जवाब था—जिन्दगी में केवल आनन्द ही तो नहीं, कुछ कर्त्तव्य भी तो होता है। आपको जीकर वही करना है।

'पर किसके लिए। कर्त्तव्य केवल अपने लिए ही किया गया तो वह स्वार्थ से कुछ कम न होगा।'

'इस पर मुझे अभी झगड़ना नहीं। आप इस बार अच्छे हो लें तो खूब बहस करूंगी। पर क्या मुझे यह भी याद दिलाना होगा कि नीरजा का आपके अलावा और कौन सहारा है। क्या आप उसे अनाथ ही छोड़ जाना चाहते हैं।'

'अनाथ कैसे केला, उसकी तुम्हारे जैसी एक अच्छी मा जो है। तुम्हारे संरक्षण में उसे छोड़ कर मर जाने में मुझे कोई कष्ट न होगा। तुमसे बड़ा सहारा अभी उसके लिए कोई न बन सकेगा।'

यह सुनते-सुनते केला जैसे भर सी चुकी थी। नर्मदेश्वर की वाणी में जाने ऐसा क्या था जिसने उसकी आंखों को

तरल कर दिया। आँखों में भर आए आंसुओं को थामने की कोई कोशिश किए बिना ही आहत स्वर में कह उठी—और जैसे मेरे लिए तो किसी सहारे की जरूरत ही नहीं।

इस एक टूटी आवाज में निकले वाक्य ने कुछ ऐसा असर किया कि नर्मदेश्वर के तेजी से सुधरते स्वास्थ्य को देख कर डाक्टर तक को ताज्जुब होता। स्वयं नर्मदेश्वर और किन्हीं अंशों में केला के अतिरिक्त कोई न जान सका कि जो नर्मदेश्वर अपनी सबसे प्यारी निधि आंसुओं की बेटी नीरजा के लिए न जी पा रहा था, वही केला के कारण मर न सका।

उसी दिन नर्मदेश्वर ने केला की बात तनक मान कर अपनी डायरी में ये कुछ विचार बड़ी ही सचाई के साथ अंकित किये थे कि—

'पहाड़ों में भी आग होती है—ज्वालामुखी। समुद्र भी जल उठते हैं—बड़वानल। पर आदमी धीरे धीरे सुलगा करता है। क्या शारदा की मृत्यु मेरे जीवन को अंधकार से भर गई थी! लगता था कि मार्ग दिखाने वाले सूरज का ऐसे क्षण में खग्रास हो गया था जब कि आसमान में चाँद तक न था। तब उस गहरे अँधियारे में एक दीपक की लौ की तरह मेरी बच्ची नीरजा ही थी जो टिमटिमा रही थी। उसने मुझे अंधियारे जीवन का रास्ता सुझाया। पर उस लौ को निर्दय हवा के झोंकों से बचाते रहने वाला एक कोई आंचल भी था। शुरू शुरू में मैं उस आंचल को न देख सका। पर धीरे-धीरे जीवन यात्रा की थकान में मुझे बयार कर फिर से ताजा कर देने वाले आंचल का मुझे पता चल ही गया। यह थी केला!

केला जो मेरे घर में केवल हीन जाति की दासी थी जाने कब मेरे उच्च जाति के अहंकार को पूर्ण कर दासी से कुछ ऐसी बन गई जिसके आदेशों की प्रतीक्षा मेरा सुख बन गई पर यह सुख प्रतीक्षा के सुख के समान ही था। केला कभी आदेश ही न करती। इसी प्रतीक्षा सुख में मैं बूढ़ा हो गया, इतना बूढ़ा कि मौत का किनारा भी मुझसे दूर न रहा। पर तभी किसी हाथ ने मुझे खुशहाल जिन्दगी की तरफ खींच लिया। यह भी थी केला ही।

'तो क्या कहूँ कि यह केला मेरे लिए क्या हो गई ?'

इस बार बीमारी से चंगा होकर नर्मदेश्वर ने अपनी जीवन दृष्टि में एक बड़ा भारी अंतर पाया। अब तक वह अपनी जिन्दगी को बुद्धि से धक्के दे देकर ढकेल रहा था। उसके दिल में जो कुरीति रूढ़ि और अतर्कित के प्रति आस्था के लिए विद्रोह था वह ध्वंस और खण्डन में ही इतना तत्पर था कि उसने जीवन के नव-निर्माण की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। पर अब उसने महसूस किया कि विचारों की ऐसी कोई भी क्रांति जो कि रचनात्मक न हो जीवन के लिये व्यर्थ है। इस नजरिए ने उसके जीवन को उत्साह से भर दिया। वह मन ही मन फूलों भरी क्यारी की तरह सौरभ से उच्छ्वसित रहने लगा। पर उसके ये सौरभ भरे उच्छ्वास दूसरों को न भाए। दुनिया फिर से उसके रास्ते में आने लगी। इस शैतान दुनिया की शिकायत के लिये कोई अदालत तक नहीं।

नर्मदेश्वर फिर से कुछ उदास हो उठा। पर इस बार की उसकी उदासी केला की उपेक्षा न बन सकी। वह पूछ ही तो

बैठी—आज कल देखती हूँ कि आपको फिर किसी चिन्ता ने आ घेरा है। इस तरह उदास रह कर क्या आप स्वस्थ रह सकेंगे।

'स्वास्थ तो मेरा तुम हो केला। जब तक तुम सम्हाले रखोगी सम्हला रहेगा। पर देखता हूँ कि यह दुनिया फिर से मेरे लिये बीमारी बन जाना चाहती है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो जाति और समाज मेरे कष्टों में सहायक न हुए, वही मेरे सुख के प्रति क्यों कुटिल और कठोर हो रहे हैं। मैं उन जाति और समाज वालों से ही पूछता हूँ कि तुम्हारा अस्तित्व ही क्यों न मिटा दिया जाए। क्यों तुम्हें व्यक्ति के विकास के लिए बाधक बना रहने दिया जाए? तुम्हारा प्रयोजन पारस्परिक समृद्धि, सहयोग और सहायता था। तुम्हारा निर्माण इस लिये हुआ था कि व्यक्ति के सुख-दुःख सभी कुछ अधिक से अधिक व्यापक रूप में तुम्हारे द्वारा भी अनुभव किये जाएँ। पर आज जबकि तुम केवल अपनी कल की बातें ही मनवाने के लिये तुले हो तो तुम्हारा आज और आगे के लिए उपयोग ही क्या?'

'आपने जो न भी कहा वह सब भी मैं समझ गई। मेरे तुम्हारे साथ रहने ने समाज और जाति के दिमाग में दर्द पैदा कर दिया है। बातें मुझ तक भी पहुँचती हैं। मेरा इस तरह का रहन-सहन, यह चारों ओर का घर-संसार उन्हें नहीं सुहाता। मेरा इन सबसे कोई मतलब नहीं पर आप जन्म-मृत्यु के बीच के बहुत कुछ के लिए इनसे बंधे हैं। आप सोच देखिये कि इस जाति या समाज का त्याग कर आप अपने जीवन की

अनेक आवश्यक पूर्तियों के लिए असहाय और दीन तो न पड़ जाएंगे। मैंने सुना है कि वे आपको जातिच्युत तक करने का इरादा कर रहे हैं। सो भी इसलिए कि आप के घर में मुझे कुछ हमदर्दी का आसरा मिल रहा है। आपने अपनी लड़की को अंग्रेजी पढ़ाया है वह दसवां दर्जा पास करके अब और आगे की तैयारी कर रही है, जब कि आपके समाज में यहां कोई इतना पढ़ा लिखा लड़का भी नहीं। इस समाज की निगाहों में अब तक उसे पत्नी ही नहीं मा तक बन जाना चाहिए था। बोलिए, इस सब कुछ के लिए आपने क्या सोचा है। आपको दुःखी, चिन्तित और उदास देख कर ही मान जाने वाला तो आपका समाज नहीं।'

'ओः केला, आज तुमने मुझे फिरसे गिरते-गिरते बचाया। तुम्हारे सामने ये सब बातें लाने का मैं साहस ही नहीं करता था। मुझे लगता था कि तुम इन सब गँदगियों से घबड़ाकर जाने क्या कर बैठो। यह समाज मेरे आज तक अविवाहित रहने का सम्बन्ध तुमसे जोड़ता रहा है। मुझे .खुशी है कि तुमने यह सब-कुछ जान कर भी कोई दुर्बलता नहीं दिखाई। सच ही केला अब तुम मुझे कभी उदास और चिंतित न पाओगी। मैं इस सारी दुनिया को तुम्हारे साथ देने पर जवाब दे सकूँगा।'

इतना ही नहीं ये सब बातें नीरजा तक भी पहुँचीं। पन्द्रह बरस की अविवाहित नीरजा समाज को धूम्रकेतु की तरह भयानक जान पड़ती थी। नर्मदेश्वर के चरित्र और नीरजा के विवाह को लेकर उत्पात खड़ा करने वाले जाति-बन्धुओं में से वे ही थे, जो कि नर्मदेश्वर की संपत्ति को देखकर उसकी पन्द्रह तो क्या

अट्ठारह बरस की लड़की से भी अपने सुपुत्रों की शादी करने को तैयार थे। पर नीरजा की शिक्षा ने उनको इस स्वप्न से झकझोर कर जगा दिया। जो विप्रकुमार शिक्षा में संकल्प के दो-चार मन्त्रों की अशुद्ध तोता रटन से अधिक कुछ न पढ़े थे कुलीनता की किसी भी सीढ़ी पर चढ़कर विद्या और नवीन विचारों के कारण दुर्लभ हुई नीरजा तक न पहुँच सकते थे, जिससे उसके चरणों में बिछा स्वर्ण-सुमेरु भी उनके लिए स्वप्न-चिन्त्य ही रह गया था। पर जब कि नीरजा तक भी ये बातें पहुँचीं तो वह सचमुच ही रो पड़ी। सबसे अधिक उसके लिए असह्य थी नर्मदेश्वर के चरित्र की आलोचना। इसी से तिलमिलाकर रोते-रोते नर्मदेश्वर से बोली—पिताजी यह सब दुनिया इस तरह हमारे पीछे क्यों है। आप चुप क्यों हैं। इन्हें जवाब क्यों नहीं देते।

नर्मदेश्वर ने अपनी रोती हुई बेटी के आँसू पोंछते हुए गम्भीर होकर कहा—जरूर दूँगा जवाब इन्हें बेटी, देना ही होगा। पर नीरा, बहादुर बेटी, तू मत रो। मुझे बचन दे मेरी बच्ची कि जब ये समाज संसार मिथ्याडम्बर से भर कर बादलों की तरह गड़गड़ाएँगे तो तू बिजली बनकर कड़केगी। तभी मैं इनकी बेवकूफियों का जवाब दे सकूँगा।

इसके बाद नर्मदेश्वर कुछ दिन के लिए बहुत अधिक व्यस्त रहा। प्रायः कोई न कोई योजना उसके दिमाग में घूमती रहती। वह आज कल क्या सोचा करता है न कला ने जाना और न नीरजा ने ही। पर एक दिन सबको आश्चर्य में डालते हुए उसने कहा—बेटी नीरा, लो मैंने तुम्हारे इस समाज से लड़ने के

लिए एक तोपखाना खरीद लिया है। अगले ही महीने तक वह दिल्ली से यहाँ आ जाएगा। अब मैं तुम्हारे समाज को जल्दी ही राह पर ला सकूँगा।

केला और नीर में से किसी की समझ में न आया कि बात क्या है। वे दोनों आश्चर्य में भरी एकटक देखती ही रह गईं तब नर्मदेश्वर ने हँसते हुए कहा—नहीं समझीं तुम लोग। मैंने दिल्ली से एक छापाखाना मँगवा भेजा है। यही वह तोपखाना होगा जिससे मेरी बेटी का 'क्रांति' पत्र निकलेगा। मैं इसी 'क्रांति' के बल पर पुराने और अनुपयोगिता को प्राप्त हुए समाज में क्रांति उत्पन्न करूँगा। आज जो हमारे जाति-बन्धु हमारी उचित-अनुचित आलोचना करते हैं हमारे ढङ्गों को पसंद नहीं करते वह इसलिये कि हम उनके विचारों, भावों और संस्कारों के संकीर्ण जगत से दूर जा पड़े हैं। बदलती हुई दुनियाँ को देख कर भी वे ख़ुद न बदल सके। इसका कारण है कि आज तक किसी भी समाज-नेता ने उनकी संकीर्णता की दीवालों को तोड़ने की कोशिश ही नहीं की जब कि आवश्यकता है राष्ट्र के सभी पिछड़े हुये अंगों को प्रगति के महत्व को समझाने की। हमें उन्हें यह सब बताने के लिये समाज नेता या राष्ट्र नायक बनने की जरूरत नहीं। हम उन्हें केवल एक सच्चे और ईमानदार दोस्त की तरह उनकी गलतफहमियों और अंधविश्वासों को मिटाने में सहायक होंगे, जिससे वे ख़ुद अपने ही हाथों अपनी संकीर्ण हदों को तोड़ें और नये समाज, नई दुनिया को बनाने में आगे बढ़ें। उन्हें हमें यही बताना होगा कि हमें अपने रहने के लिये ख़ुद अपनी दुनिया बनानी चाहिये, हमारी गति-

विधि विचार और आवश्यकता के विचार से न बनाई गई दुनिया हमारे किसी काम की न होगी।

केला ने शंकित मना होकर पूछा—पर इसके लिये भी क्या आपको समाज के सहयोग की आवश्यकता न पड़ेगी। मुझे तो सोच-सोच कर डर लग रहा है कि आप इतना सब-कुछ अकेले कैसे कर सकेंगे। फिर जब चारों ओर से आपका समाज, आपके जातिबंधु विरोध करने लगेंगे तब आप उन सबका सामना कैसे करेंगे।

नर्मदेश्वर ने हँस कर कहा—भय और शंकायें तो प्रत्येक अच्छे और नये काम के शुरू में उठा करती हैं, पर इसी से हमें अपने अच्छे काम न रोक देने होंगे। इस बस्ती के लोगों ने थोड़ी देर के लिये सहयोग न भी किया तो क्या। इस छोटे-से जनपद के बाहर भी एक बहुत बड़ी दुनिया फैली हुई है जिसका कि एक बड़ा भारी हिस्सा हमारी 'क्रांति' में दिलचस्पी रखेगा और हमदर्दी दिखायेगा। इतना ही नहीं दुनिया-भर के एक विचारों के लोग विचारों ही विचारों द्वारा अनजाने में ही एक साथ जुड़े रहते हैं। वे सब हमारा पूरा-पूरा साथ देंगे। तब यहाँ के लोग भी आँखें फाड़ कर देखेंगे कि मेढक के कुएँ के बाहर भी जगत है, जो वैसे भी मेढक के कुएँ से कहीं अधिक महत्व-शाली है। इस महत्व को समझकर ही वे अपनी मूर्खता और संकीर्णता को समझेंगे।

नीरजा ने प्रश्न किया—तो क्या आपको सचमुच ही इस फैली, बिखरी, एक दूसरे को न जानने वाली दुनिया पर इतना भरोसा है।

नर्मदेश्वर—क्यों नहीं! आज बैलगाड़ियों और नावों का युग न रहा। अब बड़े से बड़े भूमिखण्ड को पार करने के लिए तेज से तेज रेलें हैं। गहरे से गहरे तूफानी सागरों पर से दूर देश-विदेशों की यात्रा के लिए अच्छे से अच्छे जल के जहाज हैं। इतना ही नहीं, आज तो आसमान में भी हमने रास्ता बना लिया है। फिर ये तार, टेलिफोन और रेडियो हैं सब क्या? अपने विचारों को भूखण्ड के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक पहुँचाने में कुछ क्षण भी तो नहीं लगते। बेटी अब तो ध्रुवों और हिमालयों की दुर्गमता और अज्ञेयता भी न रही!

कभी भले ही वहां ऋषि, तपस्वी और देवता रहते हों पर आज तो मनुष्य का संचार हो चला है। फिर अभी लगभग एक सदी के एक चौथाई में उठ खड़े होने वाले दो-दो भीषण विश्व-युद्धों के द्वारा दुनिया ने केवल गलतियों को ही नहीं दुहराया बल्कि बहुत-सी मूर्खताओं को समझ कर सुधार के प्रयत्न भी किए हैं।

नीरजा—यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई। इन लड़ाइयों में भी भला कोई भलाई थी!

नर्मदेश्वर—भलाई तो जरूर न थी, पर पैदा अवश्य हुई। जन-शक्ति और जन-स्वातन्त्र्य का लोहा सभी को मान लेना पड़ा। इन दो युद्धों ने सबसे अधिक बड़े पैमाने पर जन-जय को प्रभावित किया। जो बात प्रत्येक देश में अलग-अलग होने वाली क्रांति से भी इतनी शीघ्रता से न हो पाती। वही इन दो युद्धों के द्वारा हुई। इन युद्धों और इनके परिणामों ने स्पष्ट कर दिया कि इस विश्व का शासन न तो हिटलर जैसे तानाशाह

कर सकते हैं और न चर्चिल जैसे अनुदार साम्राज्यवादी। युग की प्रगति के प्रवाह में हिटलर की सैनिक पराजय और चर्चिल की राजनीतिक हार एक ही सा प्रभाव रखती है। इन दोनों ही महा-प्राण व्यक्तियों की हार से साबित हो गया कि इस धरती पर न तो एक व्यक्ति, एक जाति, एक राष्ट्र या एक संकीर्णवाद का अखण्ड-अबाध शासन रह सकता है और न एक साम्राज्य और उसके समर्थकों का।

केला—पर इन व्यापक प्रभावों से हमारे अपने लोग कैसे बचे रहें।

नर्मदेश्वर—नहीं यह भ्रम है केला! युगों के प्रभाव से चट्टानें भी नहीं बचतीं, फिर आदमी तो आदमी ही है। पर प्रभाव के ग्रहण की क्षमता में भेद होता है। जो लोग जितने ही अधिक अशिक्षित, राजनीतिक चेतना से शून्य और अतीतवादी रहे उन लोगों पर उतना ही कम प्रभाव पड़ा या कहो कि देर से पड़ेगा। हमारे अपने देश के जो जन शिक्षित और राजनीतिक चेतना से सम्पन्न हैं वे आज भी विश्व के विकास से प्रभावित हैं और अपने विकास और विचारों से विश्व के नेतृत्व की क्षमता रखते हैं। अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से भागने के लक्षण तो स्पष्ट हो गये किन्तु अभी हमें राजनीतिक सत्ता पाने में कुछ देर लगेगी। और तब हम साम्राज्यशाही या उपनिवेशवाद के साथ-साथ विचारों की भी एक बहुत बड़ी दासता का अन्त कर डालेंगे।

नीरजा ने पुलकित होकर कहा—तो पिताजी अब हम भी आजाद हो जाएँगे!

नर्मदेश्वर—क्यों नहीं बेटी ! अब केवल आर्थिक स्वार्थों के लिए राजनीतिक प्रभुता कायम न रखी जा सकेगी । प्रत्येक भू-खण्ड को अपना शासन अपनी परिस्थितियों, जनता की आवश्यकताओं को देखकर विकसित तरीकों से करना होगा । बड़े-बड़े युद्धों ने जिस तरह आज हार मानली है, कल उसी तरह प्रत्येक शस्त्र-बल हार मानकर जन-बल के आगे झुक जाएगा ।

केला—लेकिन विज्ञान की सहायता से इसी प्रकार शस्त्र-बल में वृद्धि होती रही, अणु-बम जैसे आविष्कारों को न रोका गया, भला तब क्या हमारी यह धरती अपनी महत्ता में ही निरीह न हो उठेगी !

नर्मदेश्वर—पर इसके लिये विज्ञान का विकास नहीं रोक देना होगा ! वस्तुतः देखा जाए तो तो विज्ञान का विकास ही मनुष्य का सच्चा विकास है । कल तक हम जिन बातों की कल्पना ही कल्पना किया करते थे अथवा कल्पना ही नहीं कर पाते थे, वे सब आज विज्ञान के द्वारा हमारे सामने प्रत्यक्ष हो चुकी हैं । अब हमें सजग बुद्धि से अधिक से अधिक विश्वास इस प्रत्यक्षता, अनुभवगम्यता और प्रयोगक्षमता में ही रखना होगा ! विज्ञान के द्वारा ही हम अपने ऊपर युगों से पड़ते आए अंधविश्वासों और कुसंस्कारों को दूर कर सकेंगे । तुमने अणुबम का प्रश्न उठाया । पर मैं तो यह सोचता हूँ कि हमें इसे बम के रूप में नहीं शक्ति के रूप में लेना चाहिए । अणु शक्ति से विज्ञान में भी क्रांति होगी ! जिस तरह इन युद्धों ने भयानक शस्त्रों के द्वारा मृत्यु को सरल कर दिया, उसी तरह नई-नई दवाइयों, इंजेक्शनों और चीर-फाड़ के प्रयोगों द्वारा किसी भी

परिस्थिति में जीवन को असंभव न रहने दिया। यह अणुशक्ति भी बहुत-सी असंभवताओं का निदान करेगी। इसके द्वारा मिले चलना, उत्पादक की शैली को विकसित करना या ऐसी ही कुछ भी करना आसान है, आने वाला जमाना इसी के बल पर या इससे भी विकसित शक्तियों के बल पर जीव-जगत् और प्रकृति सभी के रहस्यों को खोल डालेगा। जब चन्द्रलोक और मंगल तथा शनि ग्रहों तक की यात्राएँ होने लगेंगी तब ये ग्रह और देवता हमारे भाग्य के विधायक न रहकर स्वयँ हमारे विचार के प्रश्न रह जाएँगे। केला, मैं तो आज एक ऐसा मधुर स्वप्न देख रहा हूँ जब कि मनुष्य अपनी विज्ञान-शक्ति के द्वारा इन चन्द्र-सूर्य, नक्षत्रों, ग्रह-उपग्रहों और पंचतत्वों पर भी उसी तरह शासन करेगा जिस तरह आज बहुत कुछ अंशों में अनेकों बन-स्पतियों और अन्य पदार्थों पर करने लगा है !

केला—आपने तो आज इतनी सारी-बातें कह डालीं कि मैं उनमें से बहुतों को ठीक-ठीक समझ भी नहीं पाई। पर एक बात तो बतावें कि अध्यात्म गुरु भारत को क्या आज विज्ञान के लिए भूतवादियों की शिष्यता करनी होगी !

नर्मदेश्वर—ठीक कहती हो केला, जब हम अधिक संकीर्ण होकर विचार करते हैं तो इसी तरह के मिथ्या मानापमान के प्रश्न उठा करते हैं। जिस प्रकार विकसित समाज की तुलना में अविकसित व्यक्ति संकीर्ण और तुच्छ है, इसी तरह विकसित विश्व की तुलना में अविकसित देश राष्ट्र। हमें ऐसे अवसरों पर भारत और उसकी पुरातन महत्ता का मोह त्याग कर अधिक व्यापक विश्वमुखी दृष्टि को अपनाना चाहिए। मैं तो सोचता हूँ

केला कि अध्यात्मवाद भी एक प्रकार का ज्ञानवाद रहा। किन्तु यह ज्ञानवाद अधिकतर संभावनाओं, कल्पनाओं, आस्थाओं और बुद्धिविकास पर ही आश्रित था। कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा भी बुद्धि का एक खास ढंग का विकास हुआ, जिससे विश्व-जीवन प्रभावित होकर ही रहा! पर इसका प्रभाव तब था जब कि व्यक्ति के स्वार्थ इतने व्यापक और मनुष्य-जीवन इतना जटिल न था। शनैः शनैः जीवन ने ऐसी दिशाओं में भी प्रसार किया जिनमें कि अध्यात्म का प्रवेश संभव न था और ऐसी नई समस्याएँ उठीं जो अध्यात्मवाद के लिए अज्ञेय भी थीं और हेय भी! पर अधिक काल तक अज्ञेय, अमूर्त्त और अतर्कित के पीछे अपने दृष्टि-विषयों या पदार्थ-जीवन की उपेक्षा न कर सका। उसे ज्ञान से विज्ञान की ओर आना पड़ा जिसने उसके जीवन की प्रत्येक समस्याओं का बोधगम्य समाधान किया और आज भी करता हुआ सदैव करता रहेगा। समय आने पर फिर कभी कुछ कहूँगा, पर अभी तो मैं मान लेता हूँ कि किसी भी प्रकार के ज्ञान से विज्ञान श्रेष्ठ है और प्रत्येक वाद से विज्ञानवाद महत्तम। समय तो वह आ-गया है कि यदि अध्यात्मवाद को अपना अस्तित्व बनाए रखना हो तो विज्ञान की शरण लेकर अपनी बहुत-सी भ्रान्तियों को दूर करना होगा।

केला को वह सब-कुछ बहुत अच्छा न लगा। वह कोमल भावनाओं वाली स्त्री थी जिसमें धर्म, देवता और ईश्वर-पर अटूट श्रद्धा थी जबकि आज का विज्ञान इन तीनों पर संदेह करके चलता था। इसी से उसने कहा—तब तो हमारा धर्म, ये सब देवता और ईश्वर भी विज्ञान को भ्रम ही लगेंगे!

नर्मदेश्वर—अभी हमें इतना आगे बढ़कर कुछ नहीं कहना। जब विज्ञान ईश्वर देवता तक पहुँचने की क्षमता उत्पन्न कर लेगा तो इनका भी विचार करेगा। विज्ञान का सबसे पहला विश्वास अस्तित्व है और वह इस अस्तित्व को प्रत्येक पदार्थ का विश्लेषण करके प्रमाणित किया करता है। इस अस्तित्व और विश्लेषण के प्रति यह उसी तरह जिज्ञासु रहता है जिस प्रकार कि सभी प्रकार के दर्शन अपने ज्ञेय के प्रति। दर्शन चाहे अध्यात्मवादी हो भी पदार्थवादी विज्ञान से इस दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रमाणित होता है क्योंकि वह प्रत्येक बात का समग्रता और अधिक से अधिक संश्लिष्ट व्यापकता में विचार करता है। पर मैं तो अभी ऐसा मानता हूँ कि विज्ञान अपने इस विश्लेषण के द्वारा ही एक दिन किसी ऐसे तथ्य तक जा पहुँचेगा जिससे वह आपही दर्शन की इस विचार शैली को प्राप्त हो जाएगा। दर्शन संश्लिष्ट रूप में इसी लिए विचार करता है क्योंकि वह सम्पूर्ण जगत को या तो किसी आत्म-तत्व के द्वारा अथवा किसी प्रवृत्ति विशेष के द्वारा परस्पर आबद्ध मानता है। इसी तरह जब विज्ञान भी किसी मूलतत्व को पालेगा और फिर उसके विश्लेषण की कोई निकट सम्भावना न रह जाएगी तब वह अवश्य ही अपनी विचारशैली बदल कर संश्लिष्टि के प्रयोग करेगा।

पर नीरजा के दिमाग में अपने 'क्रांति' पत्र की ही बातें घुमड़ रही थीं। उसे इस क्षण विश्व, विज्ञान और दर्शन से इतना प्रयोजन न था जितना कि अपने से साक्षात् संबन्धित लोक से। इसी से पुनः क्रांति की चर्चा चलाते हुये बोली—वाह

पिताजी आप जाने क्या-क्या कह गए। हमारे 'पत्र' की बात तो रह ही गई। पहले मुझे यह बतला दीजिये कि हमारा पत्र समाज के विरोधों में भी कैसे चल सकेगा ? हम उस विरोध का कैसे सामना करेंगे।

नर्मदेश्वर—कह तो चुका हूँ बेटी कि हमारी धरती बहुत बड़ी है। इस पर के सभी लोग अनुदार और संकीर्णमना नहीं हैं। फिर सही बात तो यह है कि जब समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है तो उसका विकासशील व्यक्तियों से संघर्ष में आना स्वाभाविक ही है। वैसे भी समाज और व्यक्ति की आस्था एक सी नहीं होती। समाज सदैव से परम्परा पूरक है और व्यक्ति विकास पूरक। कहने को तो प्रत्येक नवीनता पुरातन का अंत और उसी का विकास है, पर जिस रूप में व्यक्ति इस नवीनता को ग्रहण करता है समाज नहीं कर पाता ! व्यक्ति को तो अपने इस विकास का ज्ञान तक प्रायः विलम्ब से हुआ करता है, और जब वह जान पाता है तो प्रसन्न ही होता है। किन्तु समाज सदैव अपनी स्थिति को जैसी भी क्यों न हो दृढ़ बनाने का पक्षपाती रहा है। इसलिए उसके विकास के लिए प्रायः अधिक व्यापक क्रांति करनी पड़ती है। हम अपने पत्र के द्वारा वैसे ही प्रयत्न करेंगे बेटी ! तुम निश्चित रहो। समय की कसौटी किसी के साथ अन्याय नहीं करती, सचाई की ही आखिरी जीत होती है। झूठ तो बाढ़ के पानी की तरह बढ़ कर आप ही उतर जाता है।

केला—तो क्या आप इस प्रकार समाज के विरुद्ध व्यक्ति के स्वार्थ की स्थापना करेंगे।

नर्मदेश्वर—मेरी बात को इस तरह समझो केला कि हम संकीर्ण स्वार्थ के स्थान पर विराट या व्यापक स्वार्थ की स्थापना करेंगे। स्वार्थ अपने आप में बुरा या त्याज्य नहीं, जब कि संकीर्ण स्वार्थ अवश्य ही। देखो न यह स्वार्थ तो एक व्यक्ति से लेकर विश्व तक और एक क्षण से लेकर प्रलय तक व्याप्ति रखने वाला हो सकता है। इन स्वार्थ-सिद्धियों के लिए आवश्यकता इसी बात की है कि क्षुद्र-स्वार्थ मामूली प्रयत्नों से साधे जा सकते हैं जबकि महान् स्वार्थों के लिए महती शक्ति की आवश्यकता होती है। हम उस व्यक्ति के विकास के लिए, जो कि एक क्षुद्र जाति के समाज का ही अंग नहीं बल्कि विश्व की दृष्टि से भी अस्तित्व रखता है, इसी विशाल विश्व से शक्ति संचय कर समाज की पैदा की गई बाधाओं को दूर करेंगे!

नर्मदेश्वर के बोलना बंद करते ही केला उठकर जाने लगी तो उसने पूछा—यह क्या केला?

केला ने मुसकुरा कर कहा—सिद्धान्त चर्चा से तो मेरा पेट न भरेगा। कितनी देर हुई अब कुछ 'रोटी' की भी बात हो!

सब मुक्त होकर हँस पड़े।

❀ ❀ ❀

पाँच

पिछली बातों को हुए लगभग दो मास बीत गए। इसी बीच नर्मदेश्वर का छापखाना आकर लग चुका था। 'क्रांति' के प्रकाशन में अभी भी कुछ विलम्ब था। मामूली छपाई का काम जरूर छेड़ दिया गया था। नर्मदेश्वर का विचार 'क्रांति' को साप्ताहिक रूप देने का था। अपने पत्र का वह केवल स्थानीय महत्व ही नहीं रखना चाहता था, इस लिए वह 'हिन्दी' के अच्छे से अच्छे लेखकों तथा सामयिक लेखों के संग्रह में व्यस्त था। साथ ही उसकी दृष्टि किसी ऐसे अनुभवी व्यक्ति की खोज में भी थी जो उसके पत्र की नीति का समर्थक होता और योग्यता पूर्वक पत्र भी सम्पादन कर पाता। सम्पादक के लिये योग्य व्यक्ति मिलने में तो कोई बाधा न थी, पर प्रश्न था 'क्रांति' की विचार धारा में मेल रखने वाले व्यक्ति का। वह अवश्य ही ऐसा व्यक्ति न चाहता था जो कि जीवन में चाहे कैसा भी दृष्टि क्यों न बरतता हो किन्तु पत्र की नीति का निर्वाह करता रहे। इस प्रकार के प्रयत्नों में नर्मदेश्वर का अपना विश्वास न था। इसी से पत्र के प्रकाशन

में विलम्ब होता गया। पर मनोनुकूल सम्पादक के अभाव में उसका पत्र स्थगित नहीं हो सकता था। अतएव उसने यह निश्चय कर लिया था कि आगामी संक्रांति को 'क्रांति' का अंक अवश्य ही प्रकाशित होगा। इसके लिये वह स्वयं कटिबद्ध था। प्रेस का मैनेजर एक योग्य व्यक्ति था, जिससे नर्मदेश्वर को विश्वास था कि 'पत्र' में प्रकाशन संबन्धी कोई त्रुटि न आ सकेगी। संक्रांति भी अब अधिक दूर न रह गयी थी। केवल दो मास की बात थी। इससे नर्मदेश्वर की तत्परता और व्यस्तता बढ़ चली।

पर नर्मदेश्वर जितना अपनी जाति या समाज के लिए चिन्तित था, उससे कम चिन्तित उसके जाति-बन्धु भी उसके प्रति न थे। अन्दर ही अन्दर कुछ ऐसे व्यक्तियों का कुचक्र चल रहा था जो कि उसे किसी तरह जातिच्युत कर समाज-सेवक बनना चाहते थे। नर्मदेश्वर तक ये सब बातें पहुँचती रहतीं पर अब उसे मिथ्यावाद के प्रचारकों की भर्त्सना तक करने का अवसर न था। वह समझता था कि इन सब कुचक्रों के विधाता से इससे अधिक अच्छाई या भलमनसाहत की बात की आशा भी नहीं की जा सकतीं। पर ये सब बातें नर्मदेश्वर की पीठ पीछे ही होतीं। खुलकर ऐसा कुछ भी करने या कहने की हिम्मत किसी में न होती। बात आने पर बात बनाने से तो कोई न चूकता, पर करने के वक्त सभी बगलें झाँकने लगते। एक दिन नर्मदेश्वर के पास ऐसे ही कुचक्रियों में से एक महाशय का भेजा हुआ पत्र आया। इन महाशय को नर्मदेश्वर अच्छी तरह जानता था। वे अपने एकमात्र विधुर और मूर्ख

पुत्र का वयस्का और अंग्रेजी पढ़ी लिखी जाति द्रोही नर्मदेश्वर की लड़की नीरजा से पाणिग्रहण केवल इसलिये करने को इच्छुक थे कि उन्हें नर्मदेश्वर की संपदा का मोह धर्म-रक्षा या जाति हित से भी अधिक था। पर पत्र में उन्होंने कुछ ऐसा ही लिखा था जिससे वे नर्मदेश्वर पर अनुग्रह करते जान पड़ते थे। अपने उसी पत्र में उन्होंने यहाँ तक लिख डाला कि नीरजा का उनके सुपुत्र से विवाह हो जाने पर समाज के किसी व्यक्ति में नर्मदेश्वर की आलोचना तक करने की हिम्मत न रह जायेगी।

नर्मदेश्वर ने इस पत्र को पढ़कर उपेक्षापूर्वक एक ओर को फेंक दिया। उस समय वह कुछ और ही विचारों में इतना उलझा हुआ था कि उसे फाड़ डालने तक की बात उसके दिमाग में न आई। वही पत्र थोड़ी ही देर बाद कमरे के फर्श पर पड़ा हुआ नीरजा के हाथ में पकड़ा गया जिसे पढ़कर वह खूब रोई। जाने उस पत्र ने उस पर कैसा आतंक डाला कि उसने निश्चय कर लिया कि स्वयं ही पिता से विवाह के लिए कह डालेगी। समाज से विद्रोह और क्रांति की बातें तो आजतक उसने अनेक सुनी थीं और बहुत कुछ सड़े-गले समाज के निकृष्ट प्रतिबंधों के प्रति उपेक्षा से भी भर उठी थी, पर इस पत्र को पढ़कर उसे लगा कि सचमुच ही जाति-समाज के सारे लोग उसके पिता का विरोध करने के लिये एक साथ उठ खड़े हुये हैं। वह सोच ही न पाती थी कि उसके अकेले पिता कैसे इन सब विरोधियों का सामना कर सकेंगे। फलतः उसका सुकुमार हृदय अपने आपको अपने पिता के संकट का

कारण समझकर रो पड़ा। रोती रोती वह केला के पास पहुँची और उसके आगे वह पत्र रख कर और जोरों से रो पड़ी।

केला ने उसे इस तरह रोते देखकर अचरज के साथ पूछा—क्या है बेटी!

नीरजा से कुछ न कहा गया। केला ने पत्र पढ़कर सब कुछ समझ लिया। तदनन्तर प्रयत्नतः मुसकुराते हुए बोली—धत पगली, इस कागज की बात पर रो पड़ी!

नीरजा ने किसी तरह रोते रोते ही कहा—नहीं माँ, अब मेरी शादी कर दो। ये सब पिता जी········।

केला ने उसे हिचकियाँ लेते देख बात काट कर कहा—नहीं बेटी, ये तेरे पिताजी का कुछ नहीं बिगाड़ सकते! क्या तू सोचती है कि तेरे निरीह बलिदान पर तेरे पिताजी प्रसन्न हो सकेंगे? मेरी बच्ची, तू अपने आँसू पोंछ डाल। कहीं उन्होंने भी तुझे इसी तरह रोते देख लिया तो सच ही कमजोर पड़ जाएँगे। तेरी दृढ़ता पर उन्हें अपने से भी अधिक भरोसा है। क्या यह भरोसा तू अपने आँसुओं में ही बहा देगी। फिर तू ही सोच न बेटी कि जिन्दगी नाम ही उलझनों, समस्याओं और बाधाओं का है। इन सबको इस तरह भावुक होकर तो नहीं सुलझाया जा सकता। बुराई के आगे झुक जाना भी एक बुराई है और उसका शासन करने में कोई भी कमजोरी दिखाना कभी ठीक नहीं। यह दुनिया मेरे ही बारे में क्या नहीं कहती। पर क्या मैं इसलिये—डर कर इसके खड़े किए झूठ पर अपनी जान दे दूँ। ना बेटी, जिस दिन मैं भी इसी तरह रोने लगूँगी या कमजोर पड़ जाऊँगी तो अपने साथ ही नहीं तुम्हारे पिता

के प्रति भी अपराध करूँगी। समस्याओं और कठिनाइयों से घबड़ाकर आत्म-हत्या कर लेने या अपने जीवन-सुख को सुविधा के लिए नष्ट कर देने में कोई बुद्धिमानी नहीं। बेटी आज दिन जिस तरह सैकड़ों बातें और अतीत के असामयिक आचार प्रगतिशील जीवन की प्रगति के विमुख होने के कारण त्याज्य हो उठे हैं इसी प्रकार बुराई से लड़ने की शक्ति छीन लेने वाली भावुकता भी। बेटी इस तरह की निर्जीव भावुकता को अब कहानी उपन्यास के चरित्रों के लिये ही छोड़ दो, जीवन का इससे उद्धार न होगा।

यह सुनकर नीरजा ने आँसू भरी आँखों से ही एक बार केला को देखा; फिर उसकी छाती में अपना मुँह छिपा लिया। केला ने स्नेह से उसकी पीठ थपथपाते हुये अभी तक पलकों में उलझे आँसुओं को अपने आँचल के छोर से पोंछ डाला।

थोड़ी ही देर में नीरजा सहज स्वभाव से मुसकुराने लगी। जिस विवाद की बात ने उसे अभी-अभी रुलाया था वही अब उसका कुतूहल-सा बन गई थी। एक बहुत ही छोटी बच्ची की तरह उसने पूछा—अच्छा मां, यह तो बताओ कि इस विवाह का प्रयोजन क्या है!

केला ने कहा—मेरी बच्ची, कभी तो इसका प्रयोजन स्त्री-पुरुष की पारस्परिक संग की सहज इच्छा-भर रही होगी, पर बाद में इसे सामाजिक आवश्यकता का रूप दे दिया गया। जब एक जगह रहने वाले समुदाय की संख्या बढ़ने लगी और वर्ग-व्यवस्था तथा वर्ग-भेद जोर पकड़ने लगे तो इसे सामाजिक से धार्मिक स्तर दे दिया गया। व्यक्ति की दृष्टि से स्त्री-पुरुष अपने

आप में अधूरे हैं, विवाह इन्हें पूर्णता देता है। पर समाज को सृष्टि से अधिक व्यवस्था अभिप्रेत है। वह हजारों और लाखों की भीड़ में हर एक को विशेष बनाकर रखना चाहता है, इसी से उसने स्त्री-पुरुष की सहज संग की इच्छा को विवाह की मर्यादा में आबद्ध कर दिया।

"पर इसे धार्मिकता क्यों प्रदान की गई।"

"इससे कि धर्म के बन्धन समाज से भी अधिक कठोर हैं। समाज को तो मनुष्यकृत मानकर उसमें परिवर्तन स्वीकार कर लिये जाते हैं, किन्तु धर्म पर दिव्यता का आवरण डाल उसे तर्क और बुद्धि से परे वह भी अनादि और अनन्त मान लिया जाता है। विवाह को केवल सामाजिक विधान बताया जाता तो हिन्दुस्तान में भी विदेशों की तरह तलाक प्रचलित होते देर न लगती। इसी से कुछ चतुर पुरुषों ने इसे धार्मिकता प्रदान कर जीवन की सीमाओं में अविच्छेद्य कर डाला।"

'और यह धर्म क्या है मा!'

'इसका निर्णय साधारण नहीं बेटी। आजतक इस पर बहुत कुछ कहा-सुना गया, पर इसके स्वरूप का निश्चय न हो सका। मैं तो इसके बारे में अब यह मानती हूँ कि धर्म क्रिया और फल के समन्वित स्वरूप पर लोक-हित की दृष्टि से नियंत्रण रखने वाला किन्तु लोकोत्तर मान लिया गया विधान है। इसे जितना कम अध्यात्मिक या अलौकिक रखते हुये सामाजिक और पार्थिव बनाकर समझने की चेष्टा की जाएगी उतना ही इससे मनुष्यता का कल्याण होगा।'

'अच्छा तो मा क्या धर्म यही कहता है कि विवाह के बाद

लड़की को अपने जन्म के घर से सदा के लिए पृथक होकर अपने पति के घर को ही अपना जीवन-मृत्यु का स्वर्ग बना लेना चाहिये।'

'किसी सच्चे धर्म का भी ऐसा कोई आशय हो सकता है सो तो मैं नहीं जानती। पर जहाँ तक मैं समझती हूँ यह एक पद्धति पड़ गई है। इस पद्धति पर चलते हुए हमें अपने उस सांस्कृतिक इतिहास को ही सिर झुका देना पड़ता है जिसका कि हमारे पूर्व-पुरुषों से ही सम्बन्ध रहा।'

'तो इस पद्धति को आज बदल ही क्यों न दिया जाए।'

'यदि परिवर्तन आवश्यक हो जाए तो अवश्य ही कर डालना चाहिए। पर बेटी न तो इतिहास ही इतना तुच्छ है और न युगों के संस्कारों से निवृत्ति ही सरल। वैसे भी इतिहास हमारे सहस्रों वर्षों के कार्यों और मनोभावों का प्रमाणिक विवरण है। हमारी अनुभूतियों का विपुल कोष इसमें निहित है। यदि हम उन सबको ध्यान में रख कर चलेंगे तो अवश्य ही बहुत-सी भूलों की आवृत्ति से बच जाएँगे।'

'इसका तो मतलब यह हुआ कि इतिहास हमारे लिये उपदेष्टा है।'

'जरूर! उपदेश का आगम अनुभव है और अनुभवों का निगम भूलें। फिर पिता की उत्पन्न की गई सहूलियतों का सन्तान क्यों न लाभ उठावे।'

'पर मां इस तरह इतिहास के ज्ञान से भूलों की आवृत्ति बन्द हो जाती तो वेद, पुराण, बाइबिल, इंजील और कुरान

पढ़कर यह पृथ्वी भी स्वर्ग बन जाती। इसलिये मैं तो कहूँगी कि प्रत्येक जन अपना रास्ता आप क्यों न बनाये ?'

'लेकिन बेटी, तब तो यह मनुष्य जाति जो सांस्कृतिक एकता के आधार पर मोतियों की माला की तरह सुग्रथित है बिखर ही जाएगी।'

तभी नर्मदेश्वर ने सहसा बाहर से आकर कहा—'बिखर जाने दो केला। जिस एकता ने विकास को भी बाँध लिया हो वह मिट भी जाए तो कोई हर्ज नहीं। मैं तो चाहता हूँ कि इस एकता के भ्रम से मुक्त होकर व्यक्ति विचार-स्वातन्त्र्य रखते हुए इस तरह फैले रहें जिस तरह क्यारी में फूल। इस तरह छिटके रहें, जिस तरह आकाश में तारे। तब जन-जन के जीवन में पुष्पों का रस और तारों का प्रकाश होगा।'

❀ ❀ ❀

इसके बाद संक्रान्ति भी आई। सूर्य दक्षिणायण से उत्तरायण हुए। जाड़े ने और भी जोर पकड़ा। प्रायः लोग सुबह के आठ बजे तक रजाई ओढ़े पड़े रहते। कुल्ला तक करने के लिए गरम जल की जरूरत पड़ती। रजाई के अलावा आग के पास या तेज धूप में बैठने पर ही अङ्ग खुलते जान पड़ते। सुबह की बेला बाजार में जो दो-चार व्यक्ति दिखाई भी देते वे सब गरम ऊनी चादरों से सिर मुँह सहित शरीर का जितना भी हिस्सा ढाँपे रह सकते ढांपते। सिर्फ आँखों भर के लिए थोड़ा-सा रास्ता खुला रहता। ऐसे समय में चाय वाले की अच्छी बिक्री होती। वह आभी जाता भरे अँधियारे। रेल पकड़ने और देखने जाने वाले यात्री और पंडा या टाँगे वाले उसके

पास आकर चाय भी पीते, आग भी तापते और गप्पें भी लड़ाते। हर कोई आग के अधिक से अधिक निकट रहना चाहता। फिर भी पीठ पर ढाँढू (खुश्क और बहुत ठंडी हवा) के थपेड़े पड़ते रहते। गरम स्वेटर, कोट, चादर, मफलर, टोपें, दस्ताने और जुराबें सभी उस ठंड में ठिठरे रहते, फिर आदमी को ही उनसे क्या निमास मिलती। जिनके पास गाढ़े के कपड़े होते और दस्ताने जुराबें जैसी कोई चीज नहीं वे भी अपने गाढ़े की दोहरों में काश्मीरीशाल की सी गरमाई का अनुभव करते हुए अपने को बहकाए रहते। पूरब में कहीं सूरज की ललाई फूटने लगती तो मेहतर भी सड़क साफ करने आ जाता। झाड़ू की मूँठ को पकड़ने वाली मुट्ठी ठंड से कुछ ऐसी अकड़ी रहती कि बाद में उसे जल्दी से खोलते भी न बनता। गाँव से सब्जी लाकर बस्ती में बेचने वाले गँवई अपने सब्जी के टोकरे ले-लेकर सब्जी मंडी कही जाने वाली जगह में सड़क के दोनों ओर डट जाते। इनके पास तन ढापने को गाढ़े की दोहर से ज्यादा कुछ न होता। ये लोग अधिकतर मुसलमान होते। चेहरों पर तन्दुरुस्ती की ललाई ठंड से सिकुड़ी खाल पर और भी उमड़ी पड़ती। इनके पास चाहे कोई भगत से भगत या बाबू से बाबू हिन्दू आता, ये उसे 'राम-राम महाराज,' ही कहते। वह भी 'राम राम' कह कर जवाब देता। दोनों की जरूरतें एक दूसरे से इतनी अधिक जुड़ी रहती थीं कि दोनों के राम-रहीम चोटी-दाढ़ी, पूजा-नमाज धोती तहमद, मन्दिर, मस्जिद सभी भूल गए थे। यहाँ तक कि दोनों की जबान तक में कोई भेद न था। मेरठ के गाँवों में बोली जाने वाली हिन्दी अपने उसी रूप में या कभी-कभी कुछ परिष्कृत रूप में इनकी

आम-फहम भाषा बनी हुई थी। आस-पास के वातावरण और साथ रहने वाले हिन्दुओं का इन मुसलमानों पर इतना प्रभाव था कि वे गंगा को भी सिर्फ गंगा या 'गंगा नदी' न कह कर आदतन 'गंगाजी' कहते थे। गंगा-जल को भी जल छोड़ कर पानी कहना कभी पसंद न करते। जिस तरह बहुत से हिन्दू उनकी मजारों पर फूल चादर आदि चढ़ाते, पीरों की मनौती मानते और रमजानी जुलाहे कादिया नजर का गंडा अपने अपने बच्चों से लेकर गाय-भैंसों तक के गलों में बाँधते उसी तरह ये भी गंगाजी में दूध बतासे चढ़ाते, पुजारी जी के पास अपने बच्चों को झड़वाने जाते और भगत के दरवाजे अपनी विपदा रोते। कितने अच्छे और फर्क को पाप समझने वाले थे ये लोग, जिनके दिमागों में जबरदस्ती कुछ शैतानों की खासियत के लोग फर्क का बीज बो डालना चाहते थे।

इस सब के बीच उस कड़ाके के जाड़े में भी भगत लोग गंगा से नहा नहा कर, या गोता लगा कर कर्तव्य-मुक्त से लौटते। जाड़े की वजह से होंठ नीले पड़े रहते। दाँतों की कटकटाहट छिपाने की गरज से बराबर मुंह से राम-नाम की उच्चरनी होती रहती। यह सब कुल अपने आप में बहुत कुछ अपरिष्कृत होकर भी बड़ा सुहावना लगता। कोई न कोई बल इन लोगों के पीछे जरूर ही होता जो ये भरे अंधेरे कड़ाके की सर्दी में भी गंगा के पानी में नहाने की हिम्मत रखते। घाटों पर जो आग जलती रहती या अंगीठियां दहकती रहतीं वे सब उस भयानक शीत की तुलना में डूबते को तिनके का सहारा जैसी जान पड़तीं। जब धीरे-धीरे अंधियारा दूर होता,

पूरब में ललाई फूटती पहाड़ों की ओट से सूरज उठता, दो एक किरणें गंगाजल का स्पर्श करती जान पड़तीं, दूर स्थित बर्फीले पहाड़ों की चोटियां दिखाई देने लगतीं, जिनसे कभी-कभी जाड़े के ऊदे-ऊदे बादल लिपट कर बर्फ होने का ही भ्रम पैदा करते, गंगापार की मोतियों के चूरे की सी रेती स्पष्ट हो जाती, नील और शिवालक की पहाड़ियां अपनी ढालों पर उगी मूंज की झाड़ियों और प्याल आदि पेड़ों को कँपा-कँपा कर पुलकित होती रहतीं, तब गंगा के उस काँच जैसे साफ, आसमान जैसे गहरे नीले और हवा जैसे ढुलकते जल में नहाने में जो आनन्द आता वह जाड़े का कष्ट देखते हुए भी बड़े ही पुण्य की बात जान पड़ती। जो तारों की छाया में नहा सकते वे तब नहा लेते और जो सूरज का आसरा ताकते वे तब नहाते। ये सब गरम-निमासदार बिस्तरों में पड़े उन लोगों से जिनके कि कमरों के खिड़की दरवाजे तक बन्द होते कहीं अधिक जीवन का मर्म समझने वाले जान पड़ते।

यह सब इस कनखल बस्ती की सदा की बात है जो जाड़ों में रहने लायक हो जाती है। नर्मदेश्वर को यहाँ की जिन्दगी का यह पहलू बड़ा ही पसन्द था, इसलिए वह भक्त न होते हुए भी बारहों मास गंगा—स्नान करने वाले व्यक्तियों में से था। केला विचारों में बहुत कुछ प्रगतिशील होकर भी अपनी स्वाभाविक श्रद्धा से मुक्त न हो पाई थी, इसलिए इस बार उसने 'क्रांति' पत्र की सफलता के लिए संक्रांति स्नान करने का पुण्य-संकल्प किया। जब केला के मन की यह बात नीरजा ने नर्मदेश्वर को बताई तो वे खूब हँसे, जिससे लजा कर थोड़ा

केला नवयुवतियों से भी सुन्दर लगने लगी थी और जिस सौंदर्य को देख कर नर्मदेश्वर भी कम से कम बीस बरस छोटे तो हो ही गए थे।

जब घर के तीन प्राणियों में से दो बड़े तो गंगा नहाने वाले हो गए तब नीरजा ही स्वाभिमान के नाते किसी से छोटी बन कर रहने वाली न थी। इसलिए संक्रांति को भोर में ही, जिस दिन कि उनके 'क्रांति' पत्र का प्रथम अंक भी शाम तक बाजार में आ जाने वाला था वे तीनों गंगा नहाने चले। आज तक जो लोग सिर्फ नर्मदेश्वर को ही गंगा नहाने जाते देखा करते थे केला और नीरजा को भी साथ में देखकर अचरज और दुष्टता से भर गये। दुष्टता यही कि कुछ भगत लोग नर्मदेश्वर से मुंह-छूट कर ही बैठे—अक्खः पंडितजी! आज तो बात कुछ और है। यह घरनी सहित माघ स्नान करेंगे।

नीरजा सुनकर क्रोध से भर उठी और केला एक दम पीली पड़ गई पर नर्मदेश्वर उसी प्रकार प्रसन्न मुद्रा से प्रतिपक्षी को अवाक् करते हुए बोला—क्या कहूँ भाई, मेरे लिए तो अब ये दोनों ही घर-घरनी से अधिक हैं। नीरजा तो एक न एक दिन पराई हो जायगी, पर हमारी केला तब भी हमारी ही बनी रहेगी। जाने कब का संचित पुण्य था कि मेरे इस अंधियारे जीवन में केला जैसी सात्विक स्त्री प्रकाश की तरह मिल गई।

कहने-सुनने वाले धीरे-धीरे सरक गए। किसी ने सोचा—बेशर्मी की हद हो गई!

कोई दूसरा बोला—पाप बड़ा बड़बोला होता है।

तीसरे भगत ने आर्त्त-नाद किया—मात गंगे, तू इन सब पापों को धोना।

कुछ दुष्ट लोग हँसे, कुछ ने आवाजें भी कसीं। पर नर्मदेश्वर जाड़े की सुबह की सर्द हवा की तरह सर्द ही बना रहा। उसने केला और नीरजा को उदास देखा तो पूछा—अरे, तुम लोग इस तरह सुस्त क्यों हो गईं।

नीरजा ने क्रोध प्रकट करते हुए कहा—क्यों पिता जी, इन्हें धर्म यही दुष्ट शिक्षा देता है।

नर्मदेश्वर ने कहा—नहीं बेटी, धर्म का यह लक्षण तो कभी नहीं। शस्त्र सदैव आत्मरक्षा और आततायी के संहार के लिए होते हैं। फिर भी उनके द्वारा आत्म-हत्या भी कर ली जाती है और निर्दोषों पर अत्याचार भी। धर्म की तलवार भी ऐसी ही दुधारी है। धर्म तो वस्तुतः पुण्यात्माओं और उदार चेतनाओं की आचरण-विभूति है। पर यही धर्म जब रूढ़ि ग्रस्त हो जाता है तो इसके अन्धानुयायी संकीर्ण-मना, अनुदार और असहिष्णु हो जाते हैं। ऐसे धर्मान्धों की बात का बुरा नहीं मानना चाहिए।

अब तक वे लोग घाट पर जा पहुँचे थे। इक्के दुक्के लोग ही वहाँ दिखाई दे रहे थे जिनमें से अधिक जन बंद घाटों में नहा रहे थे। नर्मदेश्वर ने पूछा—अच्छा तो तुम लोग किधर नहाना पसंद करोगी। बंद जनाने घाट पर ही कि मेरे साथ। पर देखो इधर हवा की रोक थाम के लिए कुछ नहीं !

केला ने कहा—नहीं हम लोग आपही के साथ नहाना पसन्द करेंगी।

नर्मदेश्वर—यह क्यों भई ?

केला—इसलिए कि हम लोग आप जैसी शिव नहीं; जब कि स्त्रियां पुरुषों से भी अधिक असहिष्णु होती हैं। उनकी बातें तो हमसे सुनी भी न जाएँगी।

नर्मदेश्वर ने हँस कर कहा—अरे, स्त्री होकर भी स्त्रियों की बुराई करती हो ?

केला—बुराई नहीं सच बात है। शिक्षा के अभाव में घर की चहार दीवारी में बन्द रहते-रहते हमारी ये स्त्रियाँ इतनी अधिक असहिष्णु हो गई हैं कि किसी के भी मर्म को पैरों तले कुचल देना इनके लिए बड़ी बात नहीं। इनमें ईर्ष्या, कलह और निन्दा की मात्राएँ भी इतनी बढ़ चली हैं कि कुछ ठीक नहीं। वहाँ घाट पर राम-चर्चा के बजाए कलुषित लोक चर्चा सुननी हो तो कोई जाए।

संक्रांति-स्नान के उपरान्त अपने यहाँ के व्यापक रिवाज के अनुसार नर्मदेश्वर के परिवार की ओर से केला ने खिचड़ी और मिट्टी की अँगीठियों का ब्राह्मणों को दान किया और गरीबों में भी ये दोनों चीजें बाँटीं। नीरजा को इस बात का बड़ा भारी कुतूहल था कि आज के दिन खिचड़ी और अँगीठियाँ बांटना ही क्यों जरूरी समझा जाता है। जब अपनी बुद्धि से वह इसकी कोई तर्क संगति न स्थापित कर सकी तो केला से पूछा—मा आज के दिन सब लोग खिचड़ी और अँगीठी ही क्यों दान करते हैं।

केला ने कहा—बेटी अधिक तो मैं कुछ नहीं जानती, पर सुनती हूँ कि खिचड़ी का दान पितर जनों के लिए किया

जाता है। रहा यह अँगीठी बाँटना। इसे तो मैं स्थानीय लोकाचार ही समझती हूँ। जिन जगहों में इतनी ठंड नहीं पड़ती, वहाँ लोग ऐसा नहीं करते। लेकिन हमारे यहाँ घोर शीत पड़ता है, शायद इसी से अंगीठी दान करने का रिवाज भी पड़ गया।

नीरजा ने हँसते हुए कहा—नहीं माँ, तुम्हारी यह दूसरी बात कुछ कम ठीक है। पितर कच्ची खिचड़ी ही थोड़े खाते होंगे। उनके नाम की अंगीठी भी तो होनी चाहिए!

केला भी मुसककुरा दी!

इसके बाद शाम आई जिसके साथ-साथ प्रायः सभी पढ़े लिखों के हाथ में 'क्रांति' का संक्रांति अंक दिखाई देने लगा। जो कुछ पढ़े-लिखे भी न थे वे भी नर्मदेश्वर के कारण उस पत्र को पढ़े-लिखों से सुनने के लिए उत्सुक थे। पत्र का सम्पादन नर्मदेश्वर ने खुद किया था। विषय चयन और उसके प्रस्तुत करने का ढंग योग्य सम्पादकों के समान था। पत्र के विविध स्तम्भों में स्त्रियों और बच्चों से सम्बन्धित स्तम्भ कम प्रमुख न थे। पत्र जीवन के सभी अंगों को अधिकृत करके लिखे गए विचारपूर्ण लेखों से सुसज्जित था। मुखपृष्ठ पर एक कविता थी और अन्य सामग्री में एक कहानी। सम्पादकीय में देश-विदेश की अनेक ज्ञातव्य बातों के अतिरिक्त प्रधानतः 'संक्रांति' पर विचार प्रकट किये गये थे जिनसे पत्र की नीति स्पष्ट कर दी गई थी। संक्रांति सम्बन्धी कुछ विचार इस प्रकार थेः—

'सूर्य के दक्षिणायन से उत्तरायण में संक्रमण करने पर ज्योतिर्विदों के द्वारा सुनिश्चित यह संक्रांति वर्ष भर में केवल

एक दिन के लिए आती है। जनसाधारण इस दिवस की प्रतिष्ठा पर्व के रूप में करते हैं। इस दिन से उनके सदियों के संस्कार इतने अधिक जुड़ चुके हैं कि अन्य दिनों की अपेक्षा इस दिन में कोई प्रत्यक्ष महत्व न देख पाकर भी इस दिन कुछ विशेष ही अनुभूति करते हैं। सूर्य के दक्षिणायन रहने पर उनके जो बहुत से शुभ कार्य उत्तरायण होने की प्रतीक्षा में रुके रहते, उनके सम्पादन के लिए अब वे मुक्त हो जाते। इस दिन का उनके आध्यात्मिक विश्वासों से सम्बन्ध होने के कारण भी महत्व है। पर देखा जाए तो यह संक्रांति पर्व इस जगत में सतत बना रहता है। सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में गमन करने के लिए अवश्य ही प्रतिक्षण संक्रमण करता होगा। यद्यपि वैज्ञानिक तथ्य इसके विपरीत है तथापि हम प्रचलित विश्वास के आधार पर प्रतीक रूप से ऐसा मान लेते हैं कि सूर्य गत्वर है और हमारा अनुमान है कि राशि परिवर्तन मुहूर्त्त विशेष की ही क्रिया न होती होगी। ठीक इसी प्रकार हमारे जीव-जगत् में भी विचारों का विचारों में नित्य और प्रतिपल संक्रमण होता रहता है। जिस तरह वर्त्तमान प्रतिक्षण अतीत बनता रहता है। और भविष्य प्रतिक्षण वर्त्तमान ठीक उसी प्रकार मनुष्य की संभावी योजनाएं कार्य-रूप होने के पश्चात् इतिहास बनती रहती हैं। समय और विचारों के संक्रमण का बोध कम ही जन कर पाते हैं। यही कारण है कि हम इतिहास रूप हो चुकी स्थूलताओं से इतने अधिक आबद्ध हो जाते हैं कि वर्त्तमान में होते रहने वाले नवीन कार्यों और भविष्य की विशद् योजनाओं को केवल अतीत का विद्रोह समझते हैं। अतीत जो कभी वर्त्तमान रहकर चाहे कितना भी

अधम क्यों न रहा हो अपनेपन के व्यापक मोह के कारण श्लाघ्य हो जाता है। इस मोह में हम यह भी भूल जाते हैं कि प्रगति ही प्रकृति और जगत् का मूल मन्त्र है और हम में से प्रत्येक चेतन और बौद्धिक का यह महत् कर्त्तव्य है कि संसार की सामान्य गति को प्रगति देते रहें।'

'विचार विशेष के प्रचलन के द्वारा काल की एक खास अवधि अपने आप में एक युग बन जाती है। इसी प्रकार युगों का निर्माण या आविर्भाव होता है। इन दो युगों का संधिक्षण विचारों की क्रांति और परिवर्त्तनशीलता के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इस संधिक्षण में पुराने विचार अपनी सत्ता कायम रखने के लिए सत्ता में आने वाले नए विचारों से संघर्ष में आते हैं। इस संघर्ष में विचारों में क्रांति से अधिक संक्रांति होती है। यह संक्रांति जो प्रतिक्षण होती है युगों के संधिकाल में अनायास सार्वबोध्य हो जाती है। फिर भी इससे हमें जो सीखना चाहिए हम नहीं सीख पाते। संक्रांति का आशय यही है कि वर्त्तमान भूत से सर्वथा पृथक होकर नहीं आता और भविष्य वर्त्तमान से असम्पृक्त होकर। जिस प्रकार बोध के सुभीते के लिए एक अखण्ड काल-प्रवाह में भूत-भविष्य-वर्त्तमान जैसे भेद कर लिए गए हैं उसी तरह अखण्ड विचार-प्रवाह में भी नए और पुराने जैसे। पर वस्तुतः विचारों के प्रवाह में भी कोई खण्डता नहीं। संक्रांति में इनका संश्लिष्ट रूप खुलकर प्रकट हो जाता है। इसलिए आज हम 'क्रांति' के नाम से जिन नए और शुद्ध विचारों के प्रचार में प्रवृत्त हुए हैं वे भी इतने नए नहीं हैं कि अतीत की प्रगति को भुलाकर किसी पूर्ण-पर से हीन विश्व में विकसित किये जा

सकें। इसलिए इस संक्रांति पर्व पर 'क्रांति' की यही मौलिक शिक्षा होगी कि हम नए से नए या प्रगतिशील से प्रगतिशील विचार को भी विजातीय न समझें। मनुष्य जाति के समान विचारों की भी एक सन्तति या संतान-प्रवाह है और जिस प्रकार पूर्व पुरुषों के बिना वर्त्तमान और भावी पुरुष संभव नहीं उसी प्रकार पूर्व विचारों के बिना वर्त्तमान और भावी विचार भी संभव नहीं। इस विचार सन्तति के अविच्छिन्न प्रवाह को संक्रांति के उदाहरण से समझकर हमें अपने जीवन के प्रत्येक विकसित क्षण का पर्व के समान ही महत्व समझना चाहिए।'

नर्मदेश्वर के संक्रांति सम्बन्धी इन विचारों को कुछ ने समझा, कुछ ने न समझा और कुछ ने ऐसा समझा कि उसके निन्दकों, विरोधियों और कटु आलोचकों की संख्या बढ़ चली। पर तब इनके प्रति उदासीन नर्मदेश्वर ने 'क्रांति' के प्रथम अङ्क को केला को समर्पित करते हुए कहा था—केला आज यदि शारदा जीवित होती तो उसे मैं यह 'क्रांति' का प्रथम प्रयास जिस आग्रह और आभार से भरकर भेंट करता उसी से आज तुम्हें कर रहा हूँ। इस क्षण मेरी यही कामना है कि हमारी नीरजा हमारे जीवनों की क्रांति बनकर आगे आने वाले जीवनों में उत्क्रांति करे।

केला के नेत्रों से दो आँसू चूपड़े। नर्मदेश्वर ने सकौतुक पूछा—आज ये आँसू?

केला ने कहा—हाँ, अपनी बेटी को आशीर्वाद देने के लिए निकल ही पड़े।

छः

इसी बीच कनखल में एक नए पंजाबी ब्राह्मण परिवार का आगमन हुआ। इस परिवार में नौकर-नौकरानियों को छोड़कर केवल दो ही प्राणी थे एक मा और एक बेटा। मा का नाम भारती था पर अपने कुछ ही दिनों के वास में बस्ती भर के लोग उसे भारती मा के नाम से जानने लगे थे। भारती एक बहुत ही सुन्दर-स्वस्थ और हृदय की अत्यधिक उदार पढ़ी-लिखी प्रौढ़ महिला थी। अपनी दानशील प्रवृत्ति के कारण वह शीघ्र ही भारती से भारती मा बन गई थी। प्रत्येक दीन और याचक की आशा उसके द्वार पर पूरी हो जाती। वैसे भी वह प्रायः लड़के-लड़कियों के प्राईमरी स्कूलों में पुस्तकें या इसी तरह की दूसरी चीजें बँटवाया करती, जिससे वह हर एक बच्चे के लिए एक प्यार और आदर की मा बन गई थी। भारती के लड़के का नाम सुशीलचन्द्र था। वह कोई बीस वर्ष का बड़ा ही होनहार युवक था। देखने-भालने में भी अपने नाम के अनुसार ही सुशील और संकोची था। बी० ए० तक पढ़-लिखकर भी उसे आडम्बर छू तक न गया था। कोट, पतलून जरूर पहनता था

पर ये सब कपड़े इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से पहने जाते और उसके सुन्दर शरीर पर ऐसे फबते कि उस विदेशी पोशाक में उसे देख-कर भी कोई अस्वाभाविकता नहीं जान पड़ती।

भारती पश्चिमी पंजाब की रहने वाली थी। तब तक पाकि-स्तान जैसा कोई भूखण्ड राजनीतिक सत्ता प्राप्त न कर सका था अतएव वह कनखल में आने से पहले वहाँ बहुत ही आनन्द और शान्ति-पूर्वक रहती थी। भारती स्त्री-स्वभाव के अनुसार साधारणतः धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी, अतएव जब पंजाब में उसका विशेष मोह न रह गया तो तीर्थ-वास की दृष्टि से कन-खल रहने चली आई थी। बड़े शहर के जीवन से कुछ इतनी ऊब भी चुकी थी कि कनखल की प्राकृतिक रमणीयता ने धार्मिक आवरण में उसे मुग्ध कर लिया था। उसने पंजाब की अपनी सारी जमीन जायदाद बेच डाली थी और जो थोड़ी-बहुत जाय-दाद बेचने से बच भी गई थी वह इसीलिये कि उसका उपभोग उससे उपकृत कुछ दूर के सगे-सम्बन्धी कर रहे थे। कनखल में आकर उसने एक बहुत ही सुन्दर मकान गंगा के किनारे बस्ती की लगभग एक बाहरी सीमा पर खरीद लिया था। मकान एक खण्ड का और काफी खुला था। आँगन भी उसका अच्छा बड़ा था जिसमें उसके बनवाने वाले ने 'गंगा तीरे कूप खनति दुर्मतिः' वाद की परवाह न करके भी कुआ खुदवा दिया था। कदाचित् इस सूक्ति के रचयिता को कभी बरसात में गंगा के किनारे रह-कर उसके मिट्टी के शरबत जैसे गदले जल को पीने की नौबत न आई होगी। इस मकान की छत नीची, खिड़कियाँ बहुत कम और छोटी-छोटी थीं। कमरों की दीवालें आज-कल के बंगलों की

तरह सपाट न होकर आलों और अलमारियों से भरी पड़ी थीं। यह मकान भी कनखल के अन्य मकानों का एक साधारण नमूना था। यहाँ के घोर जाड़े को देखकर ही शायद पहले के लोग नीची छतें बनाना पसंद करते आये थे।

इस मकान का दरवाजा गंगा की ओर खुलता था, जिससे लगभग बीस-पचीस सीढ़ियाँ उतर कर घाट का हिस्सा शुरु होता था। बरसाती बाढ़ से बचाव के लिहाज से मकान काफी ऊँचाई पर और मजबूती के साथ पुराने ढंग की छोटी-छोटी ईंटों से बना हुआ था। मकान के आँगन का फर्श तक उन्हीं ईंटों का था। कमरों का फर्श चूने का था, जिसे भारती ने आते ही सीमेंट का करवा डाला था। इस मकान की दो-तीन खिड़कियाँ भी गंगा की तरफ खुलती थीं जिससे गर्मियों में शीतल-सुखद हवा तो आती ही थी साथ ही गंगा की पहली धारा, उसके बाद पड़ने वाले रेतीले और भाभड़-बेरियों की झाड़ियों से भरे मझाड़ों और सामने की नील-पर्वतमाला का बड़ा ही सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। यहीं से नील-पर्वतमाला पर स्थित 'चंडीदेवी' और 'अंजना' के मन्दिरों के कलश भी दिखाई देते थे जिन्हें देखकर ही नित्य प्रातःकाल भारती उठती और दोनों देवियों को मनही मन प्रणाम करती! सुशील मा के इस नियम को बहुत ही जल्दी जान गया था और वह जो सब के सामने दब्बू बना रहता, मा से कुछ इतना अधिक खुला हुआ था कि नित्य ही उसकी अप्रसन्नता के लिए कोई न कोई बात ढूँढ़ा करता। इसी से वह प्रायः भारती की शैया के ठीक सामने पड़ने वाली खिड़की को उसके उठने से पहले ही बन्द कर डालता था जिससे जब

भारती आँख मीचे-मीचे उठती और दोनों पर्वतवासिनी देवियों का मन ही मन स्मरण कर उनके मन्दिरों के कलश देख कर प्रणाम करने के लिए आँखें खोलती तो बन्द खिड़की की कुंडी के सहारे किसी बिल्ली या बन्दर के चित्र को झूलते देखती। भारती वात्सल्यपूर्ण हृदय से क्रोध का अभिनय करती और तभी सुशील ठठाकर हँस पड़ता।

भारती को यहाँ आकर जो अनेकों सुख मिले उनमें एक कष्ट यह था कि यहाँ न तो उसके सुशील के लिये कोई अच्छी संगति थी और न ख़ुद अपने लिए ही। आसपास के लोगों से मिलते रहना और मेल बढ़ाते रहना उसकी आदत थी। लेकिन जिन-जिन स्त्रियों से वह मिलती वे उसे अपने आचरणों द्वारा कष्ट ही पहुंचातीं। उन स्त्रियों का काम दूसरों की बुराई करना था किसी भले आदमी के घर की बातों को नंगी उघाड़ी करना ही होता जो भारती को कतई पसन्द न था। इन्हीं बातों से ऊब कर वह सुशील से कहती—देख बेटा अब तो तू शादी कर ले, मेरा इस तरह इस सूने घर में जी नहीं लगता।

सुशील हँस कर कहता—तो दो नौकर और बढ़ाले !

भारती बिगड़ती—तू बड़ा दुष्ट हो गया है रे। तू अब अपनी मा की बराबरी नौकरों से ही तो करेगा ! वे ही तो रह गए ना मेरा मन लगाने के लिये !

'वाह मा तू भी कैसी है ? नौकर क्या आदमी नहीं होते ! मैंने भी कहीं छोटी-मोटी नौकरी करली तो क्या आदमी न रह जाऊँगा।'

'अच्छा बस चुपकर। तुझसे तो कुछ कहना भी पाप है।

बाबूजी सुबह दस बजे सोकर तो उठते हैं, करेंगे नौकरी !'

'वाह मा तू भी कितना झूँठ बोलती है । तभी तो तुम्हें सुबह देवियों के मन्दिर के कलश न दिखाई देकर बिल्ली, बन्दर की तस्वीरें दिखाई देती हैं ।'

'तो तू सुबह उठता है इसी शैतानी के लिए ।'

तब मा को प्रसन्न करने के लिये हँसता हुआ सुशील कहता—'मा तुझे कितनी बार तो कह दिया कि मैं बैरिस्टरी पास करने विलायत जाऊँगा और तब डिग्री के साथ-साथ शादी करके एक मेम भी लाऊँगा ।'

भारती का कृत्रिम क्रोध उसके होठों की हँसी में डूब जाता । वह मुसकुराती हुई कहती—'पर तेरी उस मेम के हाथ का पानी तक नहीं पीने की मैं ।'

'वाह मा तब तो तू यह समझती है कि मेरी शादी के बाद मेरी बीबी से नौकरों के काम लेगी । ना मा, मैं तो उसे हमेशा अपनी अलमारी में बन्द करके रक्खूँगा ।'

भारती मा 'नटखट' कहकर जोरों से हँस पड़ती ।

इधर सुशील का नर्मदेश्वर से 'क्रांति' पत्र के संपादक के रूप में परिचय हो गया था । यद्यपि दोनों की उम्र में काफी अन्तर था पर विचारों के मेल के कारण वे बातों ही बातों में हम-उम्र दोस्त हो जाते । पर सुशील उनका पिता के समान आदर करता और नर्मदेश्वर उसे पुत्र के समान चाहते । उन्होंने उसके लेख भी अपने पत्र में प्रकाशित किये थे । उनका यह स्नेह सम्बन्ध निरन्तर बढ़ रहा था ।

होलिकोत्सव निकट आरहा था । नर्मदेश्वर होलिकांक की

तैयारी में व्यस्त था। भारती मा भी फाग वाले दिन शाम को एक छोटा-सा उत्सव करना चाहती थी। नाच-गाने के साथ-साथ साधारण जल-पान की व्यवस्था भी करली गई थी। भारती मा भरसक प्रत्येक के घर जाकर उस दिन का निमन्त्रण दे आईं। नर्मदेश्वर के यहाँ भी वह गई। उस समय नर्मदेश्वर घर पर न था। केला भी रसोई घर में होने के कारण न मिल सकी। नीरजा ने ही उनका स्वागत किया। भारती मा ने अपने आयोजन की चर्चा करते हुए कहा—तो बेटी, उस दिन तुम्हें हमारे यहाँ जरूर ही आना होगा। अपनी मा को भी साथ लाना!

नीरजा ने कहा—मेरे जन्म की मा तो हैं नहीं, हाँ जीवन की मा जरूर हैं। उन्होंने ही मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है। पर वे कभी किसी के यहाँ आती-जाती नहीं। मैं आपसे भी अनुरोध करूँगी कि आप उनसे मिलने पर कभी आने का आग्रह न करें। उन्हें आपके निमन्त्रण को अस्वीकार करने में कष्ट होगा जबकि स्वीकार भी न कर सकेंगी।

भारती—'तो बेटी तुम तो आओगी!'

नीरजा—'मेरा आना पिताजी की आज्ञा पर निर्भर करता है। उनसे पूछ कर ही इस सम्बन्ध में कुछ कह सकूँगी।'

भारती—'तो वे क्या तुम्हें कहीं आने-जाने नहीं देते।'

नीरजा—'ऐसा अवसर तो कभी आता ही नहीं। इस बार पहली ही बार आप बुला रही हैं। यहाँ के लोग हमसे कुछ उदास रहते हैं। खैर छोड़िए इस बात को। जहाँ तक है पिताजी अवश्य ही आज्ञा दे देंगे। फिर भी उनसे पूछ कर ही वचन देना उत्तम होगा।'

भारती मान गई और वह इस नीरजा के शील-स्वभाव से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि सुशील की मा के नाते अपने हृदय में एक चिरपोषित आशा भी जगाकर लेगई।

होली के लगभग शारदा का देहान्त हुआ था। इसलिए जब कभी होली आती तो अपने बसन्त गीतों के साथ-साथ नर्मदेश्वर के लिए वेदना के तीव्र स्पर्श भी लाती। जो नर्मदेश्वर कला के अप्रकट खेद को पाकर भी शारदा की स्मृति से कभी वंचित न हुआ इन दिनों तो विशेषकर चिन्तित और उदास रहता। उसकी इस चिन्ता और उदासी को कला शायद कुछ समझती हो तो हो पर अन्य कोई नहीं। अपनी पत्नी की स्मृति में वह उसका दिवस भी न मनाता। कला अवश्य ही उस दिन कुछ करना चाहती पर नर्मदेश्वर की अनिच्छा को देखकर कुछ न करती। फिर भी नर्मदेश्वर घोर पश्चात्ताप के द्वारा अपनी उन भूलों या पापों का प्रक्षालन किया करता जो कि उससे अनायास ही हो गए थे। होली से पहले दिन की बात है; वह उस बहुत पुरानी डायरी में रात के समय बैठा हुआ अपने विचार-द्वन्द्व को अङ्कित कर रहा था। नीरजा चुपचाप पीछे आकर खड़ी भी होगई पर उसे पता न चला। वह चुपचाप लिखता गया और नीरजा कुतूहलवश पढ़ती गई। वे कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

'देखता हूँ कि जीवन आशंकाओं और प्रत्यक्ष विषमताओं से सदा बाधित रहता है। तो क्या जीवन की सार्थकता भी इसी में है? शारदा आशंकाओं से भी परे जा-चुकी है, कला विषमताओं के मध्य खड़ी है और नीरजा इन दोनों के लिए प्रस्तुत हो रही है। तो क्या मैं उसे यह विषमताओं का आशंका पूर्ण

मार्ग ग्रहण करने दूँ ?···एक मन कहता है कि जीवन की सार्थकता इसी में है। पैदा होकर तो हर कोई मरता है पर जो विशेष सत्व के साथ जी सकता है वही विशिष्ट है। तो क्या इस विशिष्टता के लिए ही जीवन में जो परीक्षा और संघर्ष के अवसर आएँ उनका सामना करें ?···एक व्यक्ति कोई लकीर खींचता है, दूसरे उसे बढ़ाते हैं, इस प्रकार वह कभी मिटता नहीं; व्यक्ति भले ही मरते-मिटते रहें। तो क्या इस लकीर की अमरता के लिए अपने को और सभी अपनों को मिट जाने दूँ—'

इतना लिखकर नर्मदेश्वर ने सिर उठाया। देखा कि नीरजा उसके कंधे पर झुकी थी। नर्मदेश्वर ने यह जानकर भी कि नीरजा उसके द्वन्द्व से परिचित हो चुकी होगी सहज स्वभाव से पूछा—कहो बेटी, क्या बात है।

नीरजा ने इस सम्बन्ध में कुछ न कह कर कहा—भारती मा का तो नाम आपने सुना होगा पिताजी। कई रोज हुए वे अपने यहाँ आने के लिए बुला गई हैं। कल ही उनके यहाँ कोई उत्सव है। उसी के लिये कह रही थीं।

नर्मदेश्वर—तो और लोगों को भी बुलाया होगा !

नीरजा—कहती तो थीं !

नर्मदेश्वर—तो तुम जाओगी !

नीरजा—जैसा आप कहें !

नर्मदेश्वर : मेरे कहने की तो कोई खास बात नहीं। मैं तो चाहता हूँ कि तुम जरूर जाओ और जो कुछ पुस्तकों से भी नहीं सीख सकी वह दुनिया और व्यवहार से सीखो। पर·····

नर्मदेश्वर कहते-कहते कुछ रुक-सा रहा था। नीरजा ने पूछा पर क्या पिताजी! बताइए, रुक क्यों गए!

उसने कहा—कुछ सोचने लगा था बेटी। तुम्हारे स्वभाव में कुछ चंचलता और उग्रता अधिक है। साथ ही आज से पहले तुम कभी यहाँ के समाज में सम्मिलित नहीं हुई। पर इस तरह अलग-अलग रहकर बचे रहना भी तो ठीक नहीं। तुम्हें जाना ही चाहिए। हाँ समाज में पहुँचकर दो बातों पर ध्यान अवश्य रखना। एक तो यही कि छद्म रूप में प्रस्तुत होने वाला प्रत्येक मनोहर स्वागत योग्य नहीं होता और दूसरी यह कि व्यक्ति को अपनी आलोचना सुनने और सहने के लिये सदा तैयार रहना चाहिए।

नीरजा निश्चल भाव से सुनती रही। नर्मदेश्वर ने और गंभीर होकर कहा—तुम्हारे सच्चे प्रशंसक भी तुम्हें मोह में डाल दे सकते हैं जबकि झूँठे आलोचक नहीं। इन आलोचनाओं को धैर्यपूर्वक सुनते हुए मीठा घूँट छोड़कर कड़ुए को गले के नीचे उतारना होगा। किन्तु उसका जो भी मलिन अंश हो वह गले में ही अटक जाय और शेप शोधक तत्व प्रत्येक स्नायु में संचार करे। नीलकंठ का यही स्वरूप है बेटी। दुर्भाग्यवश कड़ुए घूँट के साथ-साथ कालकूट भी तेरी मा के गले से नीचे उतर गया था इसी से वह नीलकंठ न बन सकी। उसकी भूल आत्म-घात के तुल्य हुई।

कहते-कहते नर्मदेश्वर का शरीर काँप उठा—नीरजा रोने लगी।

नर्मदेश्वर ने बेटी के आँसू देखकर क्षोभ पूर्वक कहा—बस

पगली रोती है। मा की याद करके रोने लगी होगी। खैर बेटी यह अच्छी तरह जान लो कि जिस समाज में तुम पैदा हुई हो उसी के विरोधों को सहकर अपना विकास करना होगा। नीर, तेरी पराजय तेरे पिता की पराजय होगी। इसलिए बेटी तू मेरे आशा स्वप्नों को सफल करने के लिये विरोधों से ही शक्ति लेना।

नीरजा ने आँसू पोंछ लिए।

अगले दिन शाम को नीरजा भारती मा के यहाँ जा पहुँची। भारती मा के मकान का आँगन पूरा-पूरा भरा था। बस्ती भर की जवान बूढ़ी औरतों का जमघट था। कुछ छोटी उम्र की लड़कियाँ भी होंगी। नीरजा को देख कर सभी को अचरज हुआ। जो नीरजा आज तक कभी किसी के यहाँ आई गई नहीं, वही इस बस्ती में दो रोज से आई भारती के यहाँ हाजिर थी! इससे वे सभी स्त्रियाँ जो कि नीरजा को किस्तान समझ कर घृणा ही करती थीं भारती मा के प्रति भी कुछ वैसी ही अनुदार हो उठीं। भारती ने नीरजा का स्वागत यद्यपि सबके समान ही किया, फिर भी द्वेष भरे दिलों को उसमें खासियत ही जान पड़ी। नाच गाना हो रहा था सो होता रहा। फिर भी नाचने वालियों में नीरजा के आने पर खास सनसनी थी। कुछ दिन नीरजा ने अपने घर पर ही एक बंगाली नर्त्तक से नाच सीखा था। फिर ऐसा हुआ कि उस व्यक्ति को अकस्मात ही यहाँ से कहीं और चला जाना पड़ा। तब से नीरजा के नाच के बारे में यहाँ तक किम्वदन्तियाँ फैलीं कि कोई मेम भी उसे विलायती नाच सिखाने आती है। हालाँकि उस मेम की सूरत

कभी किसी ने न देखी थी, फिर भी हर कोई उसके बारे में बता सकता था कि बड़ी पतली है, गोरी भी और बाल तो ऐसे हैं जैसे सोने के लच्छे। इतना ही नहीं, बंगाली नर्तक के बस्ती छोड़ने पर तो बहुत कुछ ऊँच-नीच की सी बातें भी उड़ी थीं। यह सब वृत्तान्त कोई तब का था जबकि नीरजा दस ग्यारह वर्ष की रही होगी। पर अपने अपने चरित्रदोषों को कभी ध्यान में न लाने वाले बड़े से बड़े पतित ने निर्दोष बालिका को कलंक देने में कोई कसर न छोड़ी थी। इस सबमें स्त्रियाँ ही अग्रणी थीं। नाचने वाली स्त्रियों में जो सनसनी थी इसी बात की कि आज इसके विलायती नाच के आगे सभी का सिर नीचा होगा!

कुछ ऐसी युवतियाँ भी थीं जिन्हें अपने धोती के छोर पकड़ कर नाचने की कला का अभिमान था। उन्होंने आज नीरजा को चुनौती देने का निश्चय कर लिया। शुरू शुरू में जो व्यग्रता फैली वह कुछ कम होती जान पड़ी और उसके स्थान पर आंखों ही आंखों में कुटिल इशारे होने लगे। सभी के होठों की वक्रता में दुष्टता गढ़ बनाए बैठी थी। तभी किसी ने नीरजा से नाच का प्रस्ताव किया! भारती मा इन सब परिवर्त्तनों को देख देख कर चकित थी। जल्दी ही उसने समझ लिया कि नीरजा का शुभ चाहने वाला इस समुदाय में कोई नहीं। इसलिए उसने इस भय से कि कहीं इस जमाव में कोई अवाँछित बात न हो जाए कहा—अभी नीरजा को रहने दो। बेचारी आ ही तो रही है, कुछ आराम कर चुके तो नाच के लिए भी कह देना।

इस पर सब के होठों की कुटिल मुस्कान हँसी बन गई।

किसी ने दबी जबान से यहाँ तक कह डाला—देखो कहीं हम लोगों की आँखें फूलकुंवर के तन का बोझ न बन जाएं !

दूसरी ओर से भी आवाज उठी—और बातें दिल का जहर न हो जाएँ।

नीरजा ने सुना और भारती की चिन्ता को भी समझा। उसने उस उपस्थित स्त्री समुदाय पर बड़ी ही तुच्छ दृष्टि डाल कर कहा—नहीं माँ मुझे नाचने दो ! यहाँ तक आने में भी भला क्या थकती।

बस नीरजा ने पैरों में घुंघरू बाँध लिए। नाच के साथ बाजे के नाम पर ढोलकी ही थी, इस पर भी ऐसी कोई बजाने वाली नहीं थी जो कि उसके ताल-बद्ध नृत्य का साथ दे पाती। एक युवती जिसे अपनी ढोलकी बजाने पर नाज था और जिसके नाज को उचित समझने वाला प्रायः वह सभी समुदाय था मूक चुनौती के साथ ढोलकी पर जा बैठी। नीरजा ने पूछा—बहन मेरे नाच के साथ कौन सी ढोलकी बजाओगी ?

उसने सदर्प कहा—तुम नाच तो शुरू करो !

नीरजा का गति ताल-बद्ध नृत्य प्रारंभ हो गया। साथ ही साथ ढोलकी भी चीख उठी ! उस नृत्य की तुलना में ढोलकी बजाने वाली जैसे मरा चमड़ा पीट भर रही थी। दो घड़ी में नौबत यहां तक आई कि नीरजा के लिए नाचना कठिन हो गया। आखिर उसने नाच बंद करके कहा—तुम बस करो बहन ! मैं बिना ढोलकी के ही नाचूँगी !

ढोलकी वाली को यह अपना अपमान लगा। समुदाय भर ने उसे अपने ऊपर लिया। ढोलकी बजाने वाली युवती के

आहत अभिमान के साथ ढोलकी पटककर उठते ही तरह-तरह की बातों से वातावरण भर गया। एक साथ बहुत सी आवाजें उठीं—

'क्यों ढोलकी पसंद नहीं आई ?'

'क्या हमें ढोलकी बजानी नहीं आती ?'

'कौन सा तुम्हारा नाच विलायती है ?'

'इतनी शान ?'

'हुं, नाचना न आए तो आंगन टेढ़ा !'

पर नीरजा ने जैसे सबको एक ही बात में उत्तर देकर निरुत्तर कर दिया—ना बहनो, सो मैं कब कहती हूँ। असल में मुझे ढोलकी पर नाच आता ही नहीं।

इसके पश्चात् उत्सव में कोई आनन्द नहीं आया परस्पर की निन्दा और कुत्सित बातों में ही दिए बलने का समय हो गया। सब स्त्रियां, कोई अपने दूध पीते बच्चों का ध्यान कर, तो कोई पति का, उठ खड़ी हुईं। किसी को चूल्हे की फिक्र ने सताया तो किसी को गाय की धार निकालने की याद आई। भारती ने जैसे-तैसे करके सबको विदा दी। धीरे-धीरे आंगन खाली हो गया बाकी रह गई नीरजा। भारती ने प्यार से उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा—क्यों बेटी, उदास क्यों हो गई !

नीरजा ने कहा—नहीं मां, ऐसे ही कुछ सोचने लगी थी।

भारती—पर बेटी तू न नाचती तभी अच्छा था। मैंने तो तेरे आते ही इनकी चेष्टाओं से समझ लिया था कि इनमें से एक भी ऐसी स्त्री नहीं जिसे तू फूटी आंखों भी सुहाती हो !

बेटी जाने, स्त्री के प्रति स्त्री में ही इतनी अधिक ईर्ष्या और अनुदारता क्यों होती है। तू इनसे सावधान रहना! ये तेरी राह के काँटे हैं।

नीरजा—मा तुम तो बहुत घबड़ा गयीं। सच तो मुझे कोई फिक्र नहीं। मैं तो इतना भर जानती हूँ कि राह के काँटे सुरक्षित पैरों के नीचे पड़ कर आप ही आप नष्ट हो जाते हैं।

भारती—मुझे खुशी हुई बेटी तेरी इस बात पर! पर मैं मा हूँ जिसे कि संतानों की राह के कांटे भाले बन कर लगते हैं। फिर बेटी विरोधी के जो अवसर उपेक्षा करके बचाए जा सकते हैं उनके संघर्ष में शक्ति क्षय करना उचित नहीं।

नीरजा ने हँसकर कहा—ठीक कहती हो मा, पर मैं तो मानती हूँ कि संघर्ष में शक्ति बढ़ती ही है।

भारती ने आशीर्वाद देकर कहा—मेरी बेटी ईश्वर तेरी शक्ति इसी तरह बढ़ाए।

❀ ❀ ❀ ❀

इधर जिस समय नीरजा पर स्त्री-समुदाय वाग्बाण छोड़ रहा था ठीक उसी समय नर्मदेश्वर को भी जगह-जगह गालियां पड़ रही थीं। 'क्रांति' का होलिकांक जैसे ही बाजार में आया और लोगों ने होलिका पर लिखे नर्मदेश्वर के सम्पादकीय को पढ़ा, वे आग बबूला हो उठे। यद्यपि इस प्रकार क्रुद्ध होने लायक कोई बात न थी, पर नर्मदेश्वर से यहाँ के सभी दकियानूसी लोग इस बुरी तरह चिढ़े रहते थे कि उसकी उत्तम से उत्तम बातें उन्हें धर्म विरुद्ध जान पड़तीं। नर्मदेश्वर ने अग्रलेख में लिखा था—'किसी भी जाति के त्यौहार और उत्सव

उसके सांस्कृतिक प्रतीक होते हैं। उन त्यौहारों और उत्सवों के मनाने के ढंग से ही लोगों के सांस्कृतिक स्तर का पता चल जाता है। हिन्दू जो इतिहास के प्रारम्भ में आर्य कहलाते थे जीवन के प्रति उत्साहमय दृष्टि रखते थे। उन्होंने अपनी चिन्तना द्वारा यद्यपि यह भली भांति जान लिया था कि इस जीवन में 'सु' और 'कु' का द्वन्द्व, अच्छे बुरे का संघर्ष प्रतिपल होता रहता है और एक न एक की पराजय होती ही रहती है, फिर भी वे इतने अधिक आशावादी थे कि सदैव उनके देवताओं ने दानवों को परास्त किया। वृत्र के लिए इन्द्र, रावण के लिए राम और कंस के लिये कृष्ण सदैव विद्यमान रहे। उन आर्यवीरों के जीवन की यही आशावादिता और सत्य-विजय-निष्ठा उनके त्यौहारों में अधिक से अधिक प्रकट हुई। पर आज हम इस आशा और उत्साह के संदेश को भूलकर संस्कृति के निम्न स्तर पर उतरते जा रहे हैं और जिस गोपाल ने होलिकोत्सव मना मनाकर, रास रंग रचते हुए गोपों के जीवन में असुर कंस से लोहा लेने की शक्ति भरी उसी कृष्ण के उपासक प्रह्लाद की प्रतीक गाथा होलिका के मर्म को विस्मृत कर तथा गोपाल की लीलाओं को कलुषित रूप में अपनाकर आज इतने नीचे गिर गये हैं कि उन्हें नशा कर के गंदा प्रलाप करने और वेश्याओं के पाद-प्रहार सहने में ही होली के त्यौहार की सफलता जान पड़ती है। मैं तो यही कहूँगा कि इन सांस्कृतिक प्रतीकों को इस प्रकार दूषित करने की अपेक्षा इनका भूल जाना ही उत्तम है। यदि हम होलिका दहन के साथ-साथ व्यक्तिगत बुराइयों, सामाजिक कुरीतियों और देश की अवनति

के कारणों को भस्म करने का कोई प्रयत्न नहीं करते तो हमें कोई अधिकार नहीं कि जातीय त्यौहारों के नाम पर ढोंगों को बढ़ाएँ।......"

लेख काफी बड़ा था और न समझने वालों के लिए काफी उत्तेजक भी। इसे पढ़कर कुछ लोग तो आपे से बाहर हो गए और उन्होंने निश्चय कर लिया कि किसी न किसी तरह नर्मदेश्वर को अच्छा सा सबक देकर 'क्रांति' की भ्रांति को दूर करना होगा। जो कुछ ज्यादा समझदार थे उन्होंने नर्मदेश्वर को धमकी का पत्र देने का निश्चय किया, पर जो इसे मूर्खता समझते थे अपने वेदों-उपनिपदों के धर्म की रक्षा करने के लिये खड्ग-हस्त हो उठे। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस समय नर्मदेश्वर छापखाने से घर लौट रहा था कुछ गुण्डों ने लाठियों का प्रहार करते हुये उस पर हमला कर दिया। भरे बाजार का किस्सा था, फिर भी किसी ने नर्मदेश्वर से हमदर्दी न प्रकट की। तभी उधर से सुशीलचन्द्र भी निकला। अचानक उसकी निगाह नर्मदेश्वर पर पड़ी और उसे खून से लथपथ देखा तो अपने-आपको सम्हाल न सका। उसने बिजली की तेजी से झपटकर एक बदमाश की लाठी छीन ली और नर्मदेश्वर को बचाते हुए आततायियों के प्रहार का जबाब देने लगा। पर वे लोग अधिक देर तक न जमे। जब नर्मदेश्वर को सख्त घायल होकर गिरते देखा तो नौ दो ग्यारह हो गये। सुशील को भी कुछ चोट आई थी, फिर भी उसका उत्साह मन्द न पड़ा था। वह उन लोगों का पीछा करके सबक देना चाहता था, पर नर्मदेश्वर की नाजुक हालत ने उसे वहां रोक लिया।

इसके बाद कुछ भले लोगों की सहायता से नर्मदेश्वर को खाट पर डाल कर घर लाया गया। नर्मदेश्वर के बुरी तरह घायल होने का समाचार थोड़ी ही देर में बस्ती भर में फैल गया। बहुत से लोग जो अब तक उस पर धर्म-द्रोही के नाते गालियों की बौछार कर रहे थे, सहानुभूति से भर उठे। जो इस काण्ड में सहायक या प्रेरक थे, इससे हमदर्दी रखते थे अब पकड़े जाने के भय से चुप थे। भारती का एक नौकर भी बाजार आया हुआ था। उसे जैसे ही पंसारी की दुकान से मसाला खरीदते-खरीदते इस काण्ड का पता चला दौड़ा-दौड़ा घर आया। अभी तक नीरजा और भारती मा में बातें ही हो रही थीं कि उसने बीच ही में हाँफते हुए जोर-जोर से कहना शुरू किया—मा जी आज अनर्थ हो गया। वे जो पण्डत नरमदेसर हैं, अख-बार वाले, आज तो उन्हें गुण्डों ने मार ही डाला होता। पर ठीक बखत से अपने बाबूजी पहुँच गए, इसी से जान बच गई। लोग कहते हैं बाबूजी के कन्धे में भी थोड़ी-सी चोट आई है, पर पंडतजी तो इतने घायल हुए हैं कि मुसकिल से ही बच पायेंगे!

नीरजा ने सुना तो गिरते-गिरते बची! भारती मा ने उसे तत्काल सम्हाला और नौकर को भी साथ लिए चल दीं। इधर जब ये सब घर आए तो तब तक डाक्टर आकर मल्हम पट्टी कर चुका था। नर्मदेश्वर बेहोश था। डाक्टर ने उपस्थित व्य-क्तियों की चिन्ता देख कर कहा—अब कोई घबड़ाने की बात नहीं खून का बहना बन्द हो गया है। इसी बात का खतरा था। अब आप लोग ऐसी बात न करें जिससे इन्हें उत्तेजना पहुँचे!

सुशील ने फीस देकर डाक्टर को विदा किया। भारती मा नीरजा के साथ-साथ नर्मदेश्वर की चारपाई के पास जाकर खड़ी हो गई। दोनों की ही आँखों से आँसू बह रहे थे। नीरजा जो कि अब अपने को सम्हाल न सकी नर्मदेश्वर के पैरों पर गिरकर रोने लगी। नर्मदेश्वर ने किसी प्रकार यह सब कष्ट सहते हुये कहा—बहन तुम क्यों रो रही हो ! देखो, जरा इस पगली लड़की को तो सम्हालो। बेटी नीरू, अरी एक मामूली-सी बात से इतनी अधीर हो गई। उठ बेटी, जो मेहमान आए हैं उन्हें तो देख !

नीरजा और भी हिड़क-हिड़क कर रोने लगी। केला जो डाक्टर के आने पर दूसरे कमरे में सिर्फ रोने के लिए चली गई थी नीरजा की हिड़कियाँ सुनी तो दौड़ी-दौड़ी आई। नीरजा उसे देखते ही 'मा ! मा !' करती हुई उसकी छाती से चिपक गई। केला अब अपनी रोती हुई बच्ची को समझाने की गरज से अपनी आँखों के आँसू पोंछ कर कुछ कहने की कोशिश कर रही थी। भारती मा इस सबके बीच एकदम अवाक् थीं। आँखों के आँसू ही जो कहना चाह रहे थे कह तो रहे थे। नीरजा के दुख ने उसे इतना संत्रस्त कर दिया था कि अपने बच्चे सुशील की ओर तक की ओर उसका ध्यान न था। तभी सुशील भी डाक्टर को बाहर तक छोड़कर चला आया। सुशील को देखकर नर्मदेश्वर ने कहा—भैया सुशील देखो तो ये हमारी मेहमान अब तक खड़ी हैं। कोई इनकी बात नहीं पूछ रहा। तुम्हीं इनसे बैठने को कहो !

सुशील ने कहा—नहीं पतिदेव जी, ये मेहमान नहीं, मेरी मा हैं !

नर्मदेश्वर के मुँह से जैसे अचरज ही बोला हो–कौन भारती बहन ! तुम्हारा नाम तो सुन चुका था आज अच्छे मुहूर्त से दर्शन भी हो गये। बहन तुम धन्य हो। तुम्हारा सुशील बहुत ही होनहार और बहादुर है। जितनी तेज इसकी कलम चलती है उससे कम तेज लाठी भी नहीं चलती ! तुम्हारे बेटे ने अपने अच्छे-अच्छे लेखों से 'क्रांति' को ही समृद्ध नहीं किया बल्कि क्रांति सम्पादक को भी जीवन दान दिया।

भारती मा पुलकों से भरी जा रही थी और सुशील लज्जा से गढ़ता जारहा था। जब उससे सहा ही नहीं गया तो बोल उठा—आप व्यर्थ ही लज्जित कर रहे हैं पण्डितजी ! अच्छा देखिए अब आप चुप हो जाइए। डाक्टर ने बोलने की सख्त मुमानियत की है।

नर्मदेश्वर मुसकुरा कर चुप ही रह गया। नीरजा ने केला की छाती से लगे-लगे ही कनखियों से सुशील को देखा। मानों किसी देवता के दर्शन कर लिए हों।

❀ ❀ ❀

इस घटना से भारती और नर्मदेश्वर के दो परिवार हृदय से बिल्कुल एक हो गए। नीरजा भारती के लिये बेटी से भी बढ़कर हो चुकी थी। सुशील भी नर्मदेश्वर के लिए अपने घर का-सा लड़का हो गया था। नीरजा में उसे आकर्षण मिला, फिर भी वह उसकी बातों से घबड़ाता था। हाँ केला में उसने दूसरी मा पाली थी। वही जो कि नीरजा के उत्पातों से खुद तंग रहता, अपने ऊधमों से केला को परेशान रखता। पर केला उन सबसे निहाल ही हो उठतीं। आज तक तो उसके एक बेटी ही बेटी

थी, पर अब एक बेटा भी हो गया। सुशील अपने घर पर तो भारती मा के पूरी-पूरी सतर्कता बरतने पर भी खाने-पीने में लापरवाही दिखाता पर जाने नर्मदेश्वर के घर आते ही उसे क्या हो जाता कि जोरों की भूख सताने लगती और जब तक कि केला अपने हाथ की बनी कोई चीज लाकर न खिलाती तब तक उसकी भूख ही न मिटती। भारती तक ये सब बातें नीरजा के द्वारा पहुंचती रहतीं और इस पर वह संतोष ही प्रकट करती।

शुरू-शुरू में तो सुशील बहुत लजाया करता था। नीरजा से बात करने की तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। हाँ केला से जरूर ही दो-एक रोज में ही निस्संकोच हो गया था। सुशील के संकोच ने नीरजा की छेड़खानियों को और भी प्रोत्साहन दिया। धीरे-धीरे सुशील उन सबका अभ्यस्त होकर नीरजा की बातों का जबाब दे सकने की बुद्धि और क्षमता पाने लगा। इस संकोच का कारण यही था कि उसे अपनी मा के अतिरिक्त किसी स्त्री के सम्पर्क में आने का मौका ही नहीं मिला था। कालेज में पढ़ते समय उसकी सहपाठिकाएँ कुछ लड़कियाँ अवश्य ऐसी थीं जिनसे वह परिचय बढ़ा सकता था। पर उन सब में उसके लिए आकर्षण से अधिक भय था। उसके दिमाग में तो स्त्री का गहराई तक समाया हुआ एक ही आदर्श था और वह था ममतामयी, स्नेहमयी और उसकी भावनाओं के लिए पुण्यमयी मा का। भारती जितनी स्वभाव से सरल थी उतनी ही अपने रहने-सहने में भी। आडम्बर से उसे सख्त चिढ़ थी। इसी आडम्बर-शून्य स्नेह भावनी मा का चित्र लिए सुशील घूमा करता। पर जबकि उसकी आंखों के इस चित्र से अन्य कोई

दूसरा चित्र ही नहीं मिलता तो वह उनसे भागा करता। कालेज में साथ पढ़ने वाली लड़कियाँ भी स्वभाव और बर्त्ताव में कुछ इतनी अधिक आडम्बर प्रिय थीं कि सुशील जैसे लड़के के लिये वे तिलिस्म ही बनी रहीं। अपने दूसरे साथियों के शब्दों में सुशील बुद्धू था कारण कि वे देखते थे कि वह उन लड़कियों से भागता था जो कि सुन्दर और आकृष्ट भी होती थीं।

आडम्बर तो नीरजा में भी कम न था पर इसकी सीमा उसके वस्त्रों और पहनने-ओढ़ने की रुचि तक ही थी। कह सकते हैं कि वह कुछ कलात्मक अधिक थी। पर स्वभाव में उसके यह आडम्बर न था। उसका कलहास उसके आसपास की हवाओं पर तिरता रहता और उसकी आँखों की ज्योति अँधियारे में भी मुसकुराती रहती! सुशील के लिए जो स्थान भारती का रहा वही नीरजा के लिये नर्मदेश्वर का था। उसकी पुरुषों के प्रति प्रायः बड़ी ही भव्य धारणा रही। उसने उन सबको अपने पिता के ही समान समझा। पास से देखने का कोई मौका न मिला, इससे वह धारणा बनी ही रही। पर स्त्रियों की अनुदारता का वह बराबर शिकार रही, इसलिये उनके सामने वह जितना संकोच प्रदर्शित करती इतना पुरुषों के भी नहीं। यह भी एक कारण था कि वह आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक पुरुष से निर्भीकतापूर्वक मिल-जुल सकती और स्वतंत्रता-पूर्वक बातें कर सकती थी। इससे लोगों को जिसमें स्त्रियाँ ही अधिक थीं उसे गलत समझने का मौका भी खूब मिला।

नर्मदेश्वर स्वयं सादा रहता। उसकी अपनी जरूरतें इतनी कम थीं कि उसे सरल सादे जीवन का आदर्श माना जा सकता

था। पर नीरजा को वह एक से एक बढ़कर पहनने-ओढ़ने के लिये शौक की चीजें लाकर देता। नीरजा छुटपन से ही अपनी इच्छा और कल्पना से अधिक प्रिय और मनोहर चीजें पाती गई, फलतः वे सब उसके लिये एक मामूली बात हो गयीं। इसलिए वह अब भी उन्हें धारण करती तो बिल्कुल साधारण तौर पर ही। यही कारण था कि स्वर्ण सुमेरु पर बैठकर भी उसे स्वर्ण का मोह न हुआ।

पर नर्मदेश्वर को अपनी बच्ची नीरजा का मोह था! मोह ही, जो कि ममता से कहीं आगे बढ़ा होता है। यह बात नहीं कि अब उसका जीवन अपने तईं इच्छाओं से शून्य हो गया हो, पर वे सब इच्छाएँ उसमें उत्पन्न होकर भी नीरजा में समाधान पाने लगीं। वह अपने सब अभावों को उसमें मिटाने के स्वप्न देखने लगा। केला उसके लिये एक पवित्र आकर्षण थी और वह उसे ठीक उसी तरह देखता जिस तरह की कोई हलवाहा भिनसारे में नसीम को अपने अलापों से चंचल करता हुआ भोर के अकेले तारे को देखा करता है। इस एक तारे में उसके लिए सब तारे और सारा आसमान सिमटा रहता। ऐसा अनुभव करता नर्मदेश्वर भी! पर नीरजा को उसने पूनम के चाँद से कम कभी अनुभव न किया!

केला खुद तो कभी-कभी ही अपने मकान से बाहर जाया करती पर नीरजा और नर्मदेश्वर प्रायः सुबह शाम गंगा की तरफ या नहर के किनारे घूम आते थे। गंगा की बड़ी नहर बस्ती की एक सीमा से सटकर बहती है। उसकी छोटी शाखा में जिसे कि वहाँ के लोग रजबाहा कहते तैरना सीखते-सिखाते

बड़ी नहर और गंगा को पार कराने का इरादा किया करते। शाम को नीरजा का घूमने का इरादा होता तो कहती—पिताजी आज उधर नहीं चलियेगा!

नर्मदेश्वर कहता—'जरूर चलेंगे बेटी। पर देखो देर हो रही है। चलना हो तो जल्दी चलो?'

नीरजा प्रसन्नमना जाती हुई कहती—अभी आई पिताजी!

पर नीरजा की 'अभी' छोटी नहीं होती। उसे देर करते देख नर्मदेश्वर पुकारता—बेटी नीर, कहाँ हो। बड़ी देर कर रही हो रानी! क्या कपड़े पहन लिये!

नीरजा फिर अपने कमरे से चिल्ला कर कहती—अभी आई पिताजी?

यह अभी फिर बढ़ने लगती। नर्मदेश्वर को कहना पड़ता—अरी बेटी कपड़े पहनने में इतनी देर!

नीरजा का खिलखिलाता हुआ जवाब—कपड़े पहनने में नहीं पसन्द करने में। आप ले ही आते हैं इतने ढेर सारे!

इस छोटी सी सुख वार्त्ता में ही नर्मदेश्वर का स्वर्ग धरती पर उतर आता।

ऐसे पिता के कष्ट की पीड़ा नीरजा जैसी लड़की को जितनी भी होती थोड़ी थी। पर स्वयं नर्मदेश्वर की दृढ़ता केला की परिचर्या और सुशील की उस स्थिति ने उसे काफी कम किये रखा। नर्मदेश्वर की चोटें भी आशानुकूल ठीक हो रही थीं। पन्द्रह ही रोज में वे अच्छी तरह घूमने फिरने लायक हो गए थे। सिर के जख्म की पट्टी अभी तक बँधी थी; इसलिए नीरजा उसे अभी घर से बाहर न जाने देती। इस बीच भी 'क्रांति' के

अंक निकलते रहे। नर्मदेश्वर कितने ही आगामी अंकों की सामग्री तैयार रखता था। इससे सुशील और नीरजा नर्मदेश्वर से पूछ-ताछ करते हुए मिलजुल कर नये अंकों को आसानी से निकाल सके। सुशील के बाएँ कंधे में जो चोट आई थी वह गुम थी जो दो चार रोज के सेक से ठीक हो चली थी फिर भी भारी मन आठ दस रोज तक बना रहा। नीरजा के लिए उसकी यह चोट कभी कभी विनोद हो जाती। जब वह सुशील को कुछ गम्भीर सा या सकुचाया हुआ देखती तो उसके उसी कंधे पर हाथ मारकर पूछती—क्यों भैया, क्या सोच रहे हो।

सुशील दर्द की वजह से उछल पड़ता। नीरजा इस पर और हँसती—कहती बड़े बहादुर हो। हलकी सी थपकी से आँखें भर आयीं। भला उस दिन तुमने लाठी कैसे चली होगी; शायद पिताजी को मुगालता हुआ। उन्हें बचाने वाला कोई और ही बहादुर था!

ऐसी ही मिलती जुलती बात नर्मदेश्वर के सामने भी घट जाती। तब नीरजा की ज्यादतियों को देख कर उसे गूंगे सुशील का पक्ष लेना पड़ता। नीरजा विरोध करती हुई कहती—वाह पिताजी, आप तो झूँठे ही इनकी तारीफ करते हैं!

नीरजा की इन्हीं ज्यादतियों ने सुशील को बोलना और लड़ना झगड़ना सिखा दिया। अब वह भी मौका पाने पर नीरजा की चोटी कुर्सी, पलंग या ऐसी ही किसी चीज से बाँधने से न चूकता। नीरजा के बाल बहुत ही खूबसूरत, मुलायम काले चमकीले और लम्बे थे। उसे उनसे प्यार भी बहुत था। इसी से सुशील को चोटी बाँधने का मजाक ज्यादा पसन्द आता।

इसी पर एक दिन नर्मदेश्वर ने कहा—आज कल तो सुशील बेटा का लड़कीपन जाता रहा।

सुशील सुन कर हँसता रहा पर नीरजा लड़कीपन को तुच्छ बात मानने को तैयार न थी। उसने पूछा—लड़कीपन कैसा? लड़की का एक गुण भी होता तो समझदार न हो जाते।

नर्मदेश्वर ने हँस कर कहा—लो भाई सुशील इसकी सफाई तुम्हीं दो। मेरे पास तो इसका कोई जवाब नहीं।

सुशील ने कहा—जवाब तो समझदारी की बातों का होता है। कोई भला आदमी किसी की कमअकली पर कहे ही क्या?

नर्मदेश्वर ने ठठाकर हँसते हुए दाद दी—वाह भाई खूब मान गए तुम्हारा जवाब! जाओ नीर बेटी, इसी बात पर आज सुशील बाबू को बढ़िया सा जलपान कराओ।

नीरजा कृत्रिम रोष के साथ कहती—खाने के मामले में ये दूसरे की अक्ल से काम नहीं लेते। इस बात में पक्के हैं। जब यहाँ आते हैं तो पहले सीधे मा के पास जाते हैं। और जब तक माँग-माँग कर पेट नाक तक नहीं भर जाता चैन नहीं लेते।

नर्मदेश्वर कहता—बेटा सुशील मुझे तो जान पड़ता है कि कभी भारती बहन ने इसे घर में भूखा ही टाला है, तभी तुम्हें आज यह ऐसी बातें सुना रही है।

इस पर नीरजा कहती—नहीं मेरी भारती मा ऐसी नहीं हैं। जब वे मुझे अपने पास बैठाकर बड़े प्यार से खुद खिलाने लगती हैं तो ये हजरत ताका करते हैं!

सुशील उत्तर देता—और तुझे ही कौन सी कैसा आक्षा

पूछती हैं। मेरे आते ही मिठाइयों और फलों के ढेर लगा देती हैं। मुझसे कुछ बच-खुच जाता है तो तुझे भी मिल जाता है।

नीरजा अब मुसकुराहट को काबू में न रख पाकर कहती—और जनाब को तो भारती मा मेरी जूठन भी नहीं देतीं।

अपनी बात कह कर नीरजा ने अपनी मुस्कान मधुर हँसी में गुंजित कर दी। इस पर सुशील प्रसन्न होकर बोला—अच्छा चलो इसी बात पर समझौता हुआ। तेरा गुस्सा भी दूर हुआ और हँसी आई।

नीरजा—पर समझौता आखिर किस बात पर।

सुशील—यही कि तुझे केला मा मेरी जूठन देकर संतुष्ट किये रहती हैं।

इसी तरह की विनोद वार्त्ता से सारे जाति समाज से उपेक्षित नर्मदेश्वर के घर में बचपना उल्लास में भर कर क्रीड़ा करने लगता। सुशील और नीरजा यों लड़ते झगड़ते एक दूसरे के लिए वह हो गये जिसको कि वे स्वयं भी न जान सके। जब सुशील को घर आये बिना दो रोज भी हो जाते तो नीरजा बेचैनी महसूस करने लगती और जब सुशील ही उससे दो एक दिन किसी विवशता में न मिल पाता तो उसकी नींद जाने कहाँ चली जाती। पर जब वे एक दूसरे से मिलते तो कभी स्वीकार न करते कि उन्हें किसी एक की कुछ भी इंतजार या अपेक्षा रही। कई दिनों के बाद भी मिलकर खाने बैठते तो झगड़ा खड़ा कर ही देते।

भोजन करते-करते नर्मदेश्वर केला से कहता—सुशील को एक रोटी और दो।

सुशील उछल पड़ता—एक ! ना मा अब तो एक का हजार वां हिस्सा भी नहीं । नहीं, नहीं बस कीजिए, बहुत खा चुका ।

नर्मदेश्वर जोर देकर पूछता—आखिर मैं भी तो सुनूँ कि तुम 'बहुत' कितने को कहते हो ।

सुशील कहता—नीरजा से अधिक तो खा चुका ।

बस इसी बात पर नीरजा तमक कर कहती—इसका मतलब यह हुआ कि मैं बहुत खाती हूँ । देखो मा, तुम्हारा यह बेटा कितना खराब है । और कुछ नहीं तो बैठा-बैठा मेरी रोटियों को ही नजर लगाता है तभी तो आजकल मेरी भूख मरती जारही है ।

इस पर सबके मुक्त-हास से घुलमिल कर प्रसन्नता की गङ्गा ही उस घर में बहने लगती ।

किन्तु इन लोगों की यह प्रसन्नता भी समाज के लिये पाप थी । घर-घर नीरजा और सुशील को लेकर तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगीं । इतना ही नहीं अपने छिद्रों को न देखने वाले महानुभावों ने तो भारती और नर्मदेश्वर के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ उचित-अनुचित का प्रचार कर डाला । केला अब उन लोगों के लिए गौण हो गई थी । फिर समाज की यह आदत है कि वह नई चीजों पर ही संदेह किया करता है । जब परिवर्त्तन समय पाकर पुराने पड़ जाते हैं तो उसके विश्वास के पात्र हो जाते हैं । अभी तक ये नई चर्चाएँ लोगों के अपने ही काले दिलों और झूँठे होठों तक थीं पर एक प्रसंग में यह सारा विष-वमन होकर नीरजा पर जा पड़ा ।

पड़ोस के घर में शादी थी । हालाँकि इससे पहले वे नर्मदे-

श्वर के परिवार से कोई वास्ता न रखते थे, पर घरनी को बेटे के ब्याह में ऐसा चाव चढ़ा कि वह कुछ भी करके अपने आँगन में नीरजा का 'विलायती' नाच देखा चाहती थी ! इस मोद में वह नर्मदेश्वर के सभी कलंक भूल गई । और दौड़ी-दौड़ी आकर घर भर की खुशामद करने लगी।

नीरजा ने कहा—पर मैं नाच न सकूँगी। आजकल मेरी तबियत ठीक नहीं।

पड़ोसिन बोली—ठीक हो जायगी बेट्टी। पर तू अइयो तो! नाच भी बखतसिर देक्खा जागा!

नीरजा को विवश होकर जाना ही पड़ा । उसी शाम को 'खोरिया' था। जैसे ही वह वहाँ पहुँची तरह-तरह की बातें उसके कानों में पड़ने लगीं। यद्यपि वे सब बातें उपस्थित स्त्रियाँ आपस में ही कर रहीं थीं, पर जोर-जोर से बोलने का उनका उद्देश्य यही था कि नीरजा भी सुने!

किसी ने कहा—'अब तो इस लौंडी का ब्याह होने जा-रहा है !'

'अरी किससे !'

'किससे होत्तारी, उसी पंजाबी से। वह भारती का लौंड्डा।'

'सुशील', नीरजा काँप उठी !

'चलो जी बखत सिर सुध ली। अब बच्चा होने में देर भी क्या थी।'

नीरजा पर वज्र गिरा !

'यह भी अच्छा हुआ। जिसका पाप उसी के सिर गया।'

इसी बीच में किसी ने नाचने का प्रस्ताव भी कर दिया !

नीरजा ने क्रोध से काँपते हुए कहा—'मैं आप लोगों में नाचने नहीं आई।

इस पर तो और कुहराम मच गया। फिर एक ओर से ताना आया—'बेचारी नाचे कैसे लाज आने लगी है।'

'अजी लाज? राम का नाम लो! पैर भारी है।'

इस बात के साथ ही दुष्टतापूर्ण अट्टहास उन 'आर्य महिलाओं' के मुख से निकलकर आँगन भर में भर उठा। नीरजा उसकी चोटों से टूटती जारही थी। गुस्से के मारे उससे बोलते तक न बनता था। वह जहाँ की तहाँ काँपती हुई खड़ी रही।

'यह रूप ही तो है जो भोले जवानों को पाप में खींच लेता है।'

'अजी छोड़ो भी! अब इतनी उम्र में चारा भी क्या था। बाप तो आँखों पर पट्टी बाँध कर बैठा रहा। बेटी ही क्या करती। खुद ही स्वयंबर रचा लिया।'

'फिर जी औलाद का ही क्या कसूर। वह भी मा-बाप के ढंगों पर चलती है। जैसा बाप को करते देखा वैसा ही बेटी ने किया।'

सहने की भी हद हो गई। नीरजा चीख उठी। नीरजा रो उठी। रोते-रोते ही उसने कहा—आप को जो कहना हो मुझे ही कह लीजिए। क्यों खामख्वाह मेरे देवता से पिता को लांछित कर रही हो।

इस पर भी किसी को दया न आई। एक ने तुर्रा छेड़ दिया—'वाहरे देवता बाप के मोह!'

'अजी चुप भी रहो अब। किस निर्लज्ज के मुँह लगीं।

एक कहोगी तो चार सुनोगी। बनाने दो इसे अपने बाप को देवता।'

'आँसू तो देखो जरा लौंडिया के। कैसा दिखावा कर रही है।'

फिर और अधिक नीरजा न सुन सकी। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। जिसके यहाँ ब्याह था वह घबराई। आज वह अनायास ही नीरजा की हिमायती हो उठी थी। पर इतनी हिम्मत उसमें भी न थी कि उस स्त्री-समुदाय से कुछ कहती। वह जिस हालत में थी उसी में दौड़ी-दौड़ी नर्मदेश्वर के घर गई और चिल्लाते-चिल्लाते केला को सब-कुछ सुना दिया। केला इस हद की कल्पना भी न कर सकी। जिस प्रकार कसाई को अपना बच्चा ले जाते देखकर कोई गाय उसके पीछे-पीछे रस्सा तुड़ाकर रँभाती भागती है उसी तरह केला भी भागी।

कितनी ही देर बाद नीरजा को होश आया। घर आकर भी वह केला की गोद में मुँह छिपाए रोती रही। केला ने छापेखाने से नर्मदेश्वर को बुला भेजा था। घर आकर उसने सब समाचार सुने। थोड़ी देर चुप रहकर नीरजा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—बेटी, अभी तुम्हें और दृढ़ बनना होगा। तुम्हारे अंगों पर जो दुर्बलता के आभूषण चढ़े हैं उन्हें उतार फेंको। तुम्हारे इन लाछनों और कष्ट के लिये कोई एक व्यक्ति उत्तरदायी नहीं। सैकड़ों बरसों से हमारे समाज का इसी तरह पतन होता आरहा है। बुराइयों ने हमें बुरी तरह जकड़ लिया है। गुलाम और पिछड़ी हुई जातियों में जितने भी दोष सम्भव हो सकते हैं, वे सब हम लोगों में घर कर चुके हैं। हमें आज अपना

विरोधी किसी समाज और व्यक्ति को न समझकर इन्हीं बुराइयों को समझना होगा और इन्हीं के उन्मूलन के लिए सब-कुछ सहना और करना भी पड़ेगा। उस दिन लोगों ने मेरे शरीर को चोट पहुँचाई, आज ये तुम्हारे हृदय और सम्मान पर ही चोट कर गए। उनका यही काम है, उन्हें मिलकर यही करने दो। पर इसी डर से हम कुछ भीरु या अपने सत्य के प्रति संदिग्ध न हो उठेंगे। बेटी, स्त्री का सबसे कोमल मर्म उसका चरित्र है। तुम्हारे उसी मर्म पर कठिन प्रहार हुए। मुझे प्रसन्नता होगी यदि तुम उन्हें सहने के लिये कल फिर तैयार रहोगी।

अगले दिन सुशील भी इस समाचार को सुनकर आया। नीरजा उसे अपने कमरे में अकेली ही मिली। उसने स्वयं को अपराधी समझते हुए कहा—नीरा, तुमने मुझे क्षमा किया ?

नीरजा ने पूछा—तुम्हें किस बात के लिए क्षमा ! क्षमा तो अपराधी को माँगनी चाहिए, पर हम दोनों में से एक भी तो अपराधी नहीं।

'लेकिन अपराधी समझकर ही तो समाज ने यह लांछन लगाया ! हमें उसे सफाई देनी होगी।'

'सफाई ? सो किस बात की ! अपनी निर्दोषिता की या इस समाज की मूर्खता की।'

'कुछ भी समझो नीरा अब हम इस समाज की उपेक्षा न कर सकेंगे। हम सामाजिक प्राणी हैं। हमारे सुख-दुख इसी से बँधे हैं।'

'तुम डरपोक हो। मुझे किसी ऐसे समाज की परवाह नहीं। आखिर यह सब समाज है क्या ? हमारे तुम्हारे मिलने से ही

तो बना है। यह व्यक्तियों का समुदाय है जो व्यक्तियों के हितैक्य की दृष्टि से एक कहलाता है। पर जब आज व्यक्तियों का हित-साधन ही इस से न हो रहा हो तो हम किसलिए इस समाज नाम की पूजा करें। क्यों न भ्रष्ट को नष्ट करके नवीन का निर्माण करें।'

'आज मैं यह कुछ नहीं समझ पा रहा। मैं कहीं कमजोर पड़ रहा हूँ। फिर भी तुम्हारा हित चाहता हूँ। इसके लिए तुम मुझे जो कुछ भी करने की आज्ञा दोगी सहर्ष करूँगा।'

नीरजा ने अभिमान के साथ कहा—'पर तुम्हारे कमजोर पड़ने का कारण! हिन्दू समाज में तो नारी ही ऐसी है कि जिसका जन्म होने से पूर्व ही पूर्ण निर्माण हो जाता है। उसी नारी का गर्भजात पुरुष अपना विधाता है। इतने पर भी मैं तो कमजोरी नहीं महसूस कर रही। अपनी रक्षा के लिए मैं तुम्हें शस्त्र बनाऊँ भी क्यों ? मैं जानती भी नहीं कि मेरे लिए ऐसे अवसर पर तुम्हारा कौन सा उपयोग हो सकता है।'

'अच्छा तो जाऊँ नीरा!'

'क्यों, बस इतने भर के लिए आये थे ?'

'हाँ और शायद इसी को बहुत कुछ समझ कर।'

सुशील चला गया। केला से भी न मिला। उसे पता तक न चला। नीरजा ने भी न रोका। पर सुशील जाते-जाते जैसे कोई कीड़ा उसके दिल में छोड़ता गया। उसने उसके मन को कचोटा। नीरजा ने शीशे में देखा। उसकी आकृति मलिन पड़ती जा रही थी। उसने सोचा, मन से फिर-फिर पूछा। शीशे में बंदिनी अपनी मलिन छाया से पूछा—'सुशील का मतलब!'

वह कीड़ा उसी मतलब को तो बताने की कोशिश कर रहा था।

तभी जाने उसके मन में कैसी गूंज उठी कि वह रोते-रोते जोरों से कह उठी—भारती मा अपने रत्न की रक्षा करो! मैं उसका इस तरह अपहरण न कर सकूंगी।

नीरजा कभी एक नन्हीं बच्ची थी। इसी दर्पण के सामने थिरक २ कर बड़ी हुई। पर आज एकदम इतनी बड़ी हो गई थी कि समाज को वह पहाड़-सी लगने लगी। सुशील इसी पहाड़ को सुख से सिर पर उठाना चाहता था। पर नीरजा उसकी शक्ति में अविश्वास करती हुई समझती रही कि वह इस भार से पिस जाएगा।

बादल देखकर ही बरसात की सुखद कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए। जाने हवा कब उसके टुकड़े-टुकड़े कर अन्तरिक्ष के किस अज्ञात प्रदेश में ले जाये और धरती के बीज की कब्र बिना पानी के धरती ही बन जाए। भारती मा जो नीरजा को स्वार्थ से भर कर प्यार करने लगी थीं अपनी चाह को ही फल भी समझने लगी थीं जिसमें जाने अभी कितनी बाधाएँ थीं।

घटनाचक्र की कोई निश्चित गति तो होती नहीं। कभी पलक झपकते ही सैकड़ों कांड हो जाते हैं और कभी बरसों में भी कोई परिवर्तन नहीं आता। घटनाओं के चक्र के साथ दुनिया घूमा करती है। सुशील के जीवन में भी कुछ ऐसे ही चक्कर आ रहे थे। अथवा वह खुद ही विराट जगत् के अनन्त चक्करों में से एक चक्कर बन चला था।

नीरजा प्रश्न चिह्न की तरह नर्मदेश्वर के जीवन में आई और जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती गई वह प्रश्न चिह्न भी

विस्तार पाता गया। इस प्रश्न चिह्न के समाधान में नर्मदेश्वर मस्तिष्क की तरह था। केला ने सूक्ष्म भावना की तरह उसके गूढ़ विचार का साथ दिया। इस प्रश्न चिह्न के समाधान का प्रयत्न हो ही रहा था कि उस प्रयत्न में भारती अकल्पित प्रसंग की तरह आविर्भूत हुई जिसका सुशील प्रश्न चिह्न की पूर्ण समाधान की दिशा में केवल अपूर्ण विराम था। और विराम-पूर्ण विराम, वह कदाचित् अभी बहुत दूर था। इस विराम-चिह्न के लगते ही जीवन के सभी प्रश्न-चिह्न उड़ जाते हैं। प्रश्न-चिह्न जीवन का उत्तर चाहते हैं और यही जीवन की निरन्तरता है। नीरजा का जीवन विशेष घटनाओं में स्थित न होकर निरन्तरता में बह रहा था। सुशील इस निरन्तरता को कठिनता से ही क्षणिक स्थिति दे पाता।

वह दिन बीत गया। दिन भर नीरजा सुशील के बारे में ही सोच-सोच कर परेशान रही। वह मन को समझाना चाहती कि सुशील चला गया तो क्या हुआ। सुशील आखिर ऐसा है क्या जो उसके लिए उसका जाना-आना भी बहुत कुछ मायने रखने लगा। फिर रात को जब उसने सो जाने की कोशिश की तब भी उसे सुशील की चिन्ता ने सोने न दिया। आज जबकि वह सुशील को कुछ काल के लिए एकदम विस्मृत कर डालना चाहती थी, उसके स्मृति-चित्र और भी स्पष्ट होकर आँखों में मूर्त होने लगे; मानों वे सब उसे समझाना चाहते कि सुशील उसके लिए क्या मायने रखता है!

सुशील से अभी वह कल ही तक तो एक छोटी बच्ची की तरह लड़ती रही है। तब सुशील भी बिल्कुल नन्हा मुन्ना या

उतना ही छोटा बच्चा बन जाता था। नीरजा हठ करके भारती मा की गोद में बच्ची की तरह सिर रखकर कहानी सुना करती। कहानी के चाव में उसका बहुत दिनों का गया बचपना भी लौट आता जबकि भारतीमा नानी-दादी की कोटि में जा पहुँचती। तभी सुशील बीच में आ धमकता। नीरजा भारतीमा को कहानी कहते-कहते रुकते देखकर बेचैनी के साथ कहती—हाँ तो उसके बाद क्या हुआ था!

सुशील अपनी ही कहता—बाद-बाद कुछ नहीं। शुरू से सुनाओ मेरी अच्छी माँ।

नीरजा चिढ़ाती हुई कहती—वाह कैसे खुशामदी टट्टू हैं। शुरू से सुनने के लिए तो मा हो गईं अच्छी, नहीं तो......

सुशील—नहीं तो क्या री?

नीरजा—मुझे हुजूर से झगड़ना नहीं। हाँ तो मा उस थप्पड़ के बाद क्या हुआ।

सुशील—कुतूहलपूर्वक पूछता—थप्पड़ कैसा मा?

नीरजा—बस होली ऐसे तो कहानी पूरी! जनाब चुप रहें। क्या करूँ, उम्र में छोटी हूँ, नहीं तो बता देती कि थप्पड़ कैसा होता है। बड़ी भूल की भगवान ने?

सुशील—बड़ी आई भगवान की बच्ची!

नीरजा—देखो अब लड़ाई हो जाएगी बाबू साहब। कहानी चुपचाप सुननी न हो तो यहाँ से तशरीफ ले जाएँ।

सुशील—तू, तू भला कौन होती है मुझे यहाँ से जाने को कहने वाली?

भारती उनके कृत्रिम वाग्युद्ध को देखकर प्रसन्न ही होती।

फिर भी कहती—तू बड़ा झगड़ालू हो गया है रे सुशील, कहाँ से सीख लिया यह लड़ना !

सुशील सरलता से कह देता—यही तो सिखाती है ।

इस पर खूब हँसी होती । नीरजा के कानों में आज उसी हँसी की गूँज बिजली की कड़क से भी तेज हो चली थी !

फिर जब कभी नीरजा को भारती के यहाँ रात को काफी देर हो जाती तो भारती कहती—बेटा सुशील जरा नीर को घर तक तो छोड़ आओ !

नीरजा कहती—चलो मा ! किसी काम तो आए बाबू साहब । नौकर की ही बचत हुई !

सुशील चीख कर कहता–सुनती हो मा, क्या कहती है यह।

नीरजा और चिढ़ाती –सुशील किसने रख दिया मा इनका नाम । बात-बात पर तो लड़ने दौड़ते हैं ।

सुशील—देख नीरा मार बैठूँगा !

नीरजा—और मर्द होकर करियेगा ही क्या !

फिर सुशील पराजय स्वीकार करता हुआ कहता—अच्छा अब आप पधारें ।

नीरजा—तो देर क्यों कर रहे हो !

सुशील—मैं साथ नहीं जाने का । मेरी कोई गरज नहीं ।

नीरजा फिर खुशामद करती—छोड़ भी आओ राजा बाबू, मुझे डर लगता है !

सुशील मान जाता !

और बेचैनी से करवटें बदलती हुई नीरा सोचती—आज तो मैंने ही उसकी एक बात न मानी !

इसी तरह बेचैनी का अनुभव करते-करते नीरा को जाने क्या-क्या याद पड़ रहा था। यही याद उसे कहती तूने इस सब का मर्म तब तक न समझा तो आज समझ ले।

कभी ऐसा होता कि नीरजा भारती मा के पास कहानी सुनने पहुँच भी जाती और सुशील उसका आना जानकर भी न आता तो वह खुद ही पुकार कर कहती—सुशील बाबू, क्या आज कहानी नहीं सुननी।

सुशील दूर से ही कहता—मैं अभी पढ़ रहा हूँ तू सुन ले!

नीरजा—फिर बाद में तो बाबू साहब झगड़ेंगे नहीं!

सुशील—झगड़ूँगा क्यों, तू जो सुना देगी।

नीरजा—ना जनाब मुझसे नहीं सुनाई जाएगी आपको। एक बार सुनाकर ही भुगत ली!

भारती मा प्रसन्न भाव से पूछती—क्या बात है नीरजा।

नीरजा—घंटों लगाते हैं बाबू साहब मा!

भारती—ऐसी भी बात क्या बेटी!

नीरजा—समझते तो हैं कुछ नहीं और लगते हैं बात-बात के मायने पूछने! पूछते हैं भला पति पत्नी को क्यों प्यार करता था?

भारती मा हँस पड़ती, सुशील झेंप जाता! नटखट नीरजा मुस्कुराती रहती।

पर आज कहाँ चली गई थी नीरजा की मुस्कान! यही नहीं, भारती मा भी उसे रोती दिखाई देती और सुशील भी। उसने एक बार फिर ऐसी अनेकों छोटी-मोटी बातों पर सोचने की कोशिश की। करवटें बदलते-बदलते ही जैसे वह जाने ले रही थी

कि यह बचपना न था। बचपना इस उम्र में भी भला कभी लौट कर आता है। 'तो फिर क्या था ?' यह एक प्रश्न उसके मन में घुमड़ता, जिसके ऊत्तर में उसे अपने चारों ओर के विश्व से जो गूँज उठती सुनाई पड़ती वह उसे बेहोश-सा करने लगती।

सात

'क्रांति' का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा था। जब लोगों ने देखा कि नर्मदेश्वर प्राणों तक की परवाह न करके अपने संकल्प के प्रति दृढ़ निष्ठा रखे हुए हैं तो उनमें से कुछ ने उसकी सचाई की तारीफ की और कुछ उसके प्रति पहले से भी अधिक अदय हो उठे। फिर भी 'क्रांति' को प्रोत्साहन मिला। समर्थक, तटस्थ और विरोधी सभी उसे पढ़ना पसन्द करते। खास तौर से वे लोग तो अवश्य ही जो कि बुद्धि और विचार को अत्यन्त ही पवित्र और मान्य समझते थे। इस बस्ती में जो बाहर से आकर बसे हुए अब्राह्मण परिवार थे अथवा वे जन जो कि ब्राह्मण होकर भी दान वृत्ति न लेते थे 'क्रांति' के प्रति पर्याप्त सद्भावना रखते थे। साथ ही इधर कुछ वर्षों से नई हवा में उत्पन्न और पली जो एक नई पीढ़ी बढ़ रही थी उसके हृदय में भी 'क्रांति' के प्रति सम्मान था। इस पीढ़ी में अधिकतर वे ही नवयुवक आते थे जो कि किसी भी प्रकार स्कूलों में भर्ती होने का सौभाग्य प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि इनके विचार अभी कच्चे थे, फिर भी

उनके मस्तिष्क उर्वर थे। जब पूर्ण स्वस्थ होने पर नर्मदेश्वर ने पुनः 'क्रांति' का सम्पादन स्वयं करना प्रारम्भ किया तो उसी सप्ताह के अङ्क में 'धर्म का बल' शीर्षक से एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। उसमें लिखा था—

'अधर्मी संसार की जो कल्पना कर ली जाती है वह एक बड़ा भारी भ्रम है। वस्तुतः धर्म का नाम न केवल अस्तित्व का है अपितु अस्तित्व की पवित्र सत्ता के विकास का भी। इस पवित्र धर्म के बिना क्षण भर के लिए भी जगत् की स्थिति सम्भव नहीं। इसलिए किसी भी ऐसे व्यक्ति के विचारों के सम्पर्क में आने पर जो कि हमसे मतैक्य न रखता हो हमें सहसा न मान लेना चाहिये कि वह अधर्मी है। धर्म तो जीवन का सबसे स्पष्ट लक्षण है और जागरूक जीवन की तो आत्मा ही। फिर जीवन और उसके विचार धर्म भ्रष्ट कैसे हुए। चाहे मनु के शब्दों में धर्म को धारण और प्रभाव-संयुक्त कह कर समझें अथवा आज के किसी विचारक और उद्भावक के कथन के अनुसार विकासशील अस्तित्व इसमें कोई भेद नहीं।

'फिर भी अधर्मी न कह कर विधर्मी के लांछन द्वारा भी जीवन की प्रगति के लिए विघातक विचारों और घृणा का प्रचार किया जा सकता है। मैं तो कहूँगा कि वस्तुतः विधर्मी भी कोई नहीं। व्यक्ति में अपने विचार, मत और आस्था के प्रति सबसे प्रबल मोह होता है। विशेषकर विचार विरहित आस्था उसके जीवन की सबसे अधिक नियामिका शक्ति होती है। इस आस्था मोह या भ्रम में वह दूसरों के विचारों के

प्रति तुच्छ भाव रखने के कारण धर्म-वाह्य होता जाता है। इस प्रकार 'विधर्मी' कह कर जिस घृणा, संकीर्णता और द्वेष बुद्धि को प्रोत्साहित किया जाता है वह स्वयं धर्म विरुद्ध है। इसलिए अपने धर्म का सम्मान चाहने वाले व्यक्ति को सबसे पहले यह चाहिए कि दूसरे के धर्म का भी सम्मान करे। हमारा देश विरोधियों के मतों को भी मान्यता देने में अग्रणी रहा है। चक्रवर्ती अशोक जैसे उदारबुद्धि लोक-पालकों ने धर्म के इस सद्भाव को समझकर अपने अनुकूल आचरणों द्वारा इस तथ्य को ऐतिहासिकता तक प्रदान कर डाली है। इसके प्रमाण में अशोक के शिलालेख और स्तम्भलेख पर्याप्त होंगे।'

'विश्व जितना विस्तृत है उतना ही विविध। धरती के तुच्छ धूलिकण से लेकर इन जगमगाते चाँद-सूरज तक सभी कुछ तो इस विश्व का अविभाज्य अंग है। महत्व की दृष्टि से ही विचार करें तो हमारी दुनिया के लिए जितने आवश्यक ये चन्द्र-सूर्य हैं उससे कम धूलिकण भी नहीं। इन्हीं कणों से मिलकर यह धरती बनी है जिसे कि हम मा कहते हैं, जिसके कि अभाव में हमारा जन्म, जीवन और मृत्यु सभी कुछ तो असम्भव होती। इसी बात को गहराई से समझते हुये हमें विचारों की विविधता और उनके महत्व को समझना चाहिए। विचारों के विश्व में भी इसी प्रकार कण-पर्वत के अन्तर देखने में आएँगे। पर वस्तुतः देखा जाये तो ये अन्तर भी भ्रमोत्पादक हैं। 'अ' का स्वरूप भले ही 'ज्ञ' से न मिलता हो पर यदि 'अ' और 'ज्ञ' के बीच के पूर्ण विकास को न समझते हुए स्वयं को 'विज्ञ' मान लिया जाएगा तो इसमें कोई

सन्देह नहीं कि 'अज्ञ' ही रह जाना होगा। 'अ' से 'ज्ञ' तक सभी तो अक्षर हैं और सभी अनिवार्यतः आवश्यक भी। हमें इन सब की अक्षरता और अनिवार्यता का सम्मान करना चाहिये।

'जब कि धर्म इतना स्वाभाविक है व्यापक और विकास क्षम तब उसे किसी दायरे में बाँधकर देखना, फिर चाहे वह दायरा कितना भी बड़ा क्यों न हो पाप है। धर्म को कोई स्थिर और विकास शून्य तत्व मानना उसका सबसे अधिक अपकार करना है। विश्व के विकास के लिए धर्म का विकास करना होगा ?

'पर धर्म का विकास दुराग्रह और अनुचित बल प्रयोग से कभी संभव नहीं। धर्म तो स्वयं ही व्यक्तियों की रक्षा और उनका संहार करता आया है। फिर उस धर्म की रक्षा का दंभ हम कैसे रखें। धर्म का एक अपना बल है सत्य। धर्म के ज्ञान के लिए इस सत्य के परिज्ञान की पहली आवश्यकता है। यह सत्य हमें अपने सबसे परिष्कृत रूप में जगत् के अस्तित्व और उसके विकास में मिलेगा। किन्तु जब व्यक्ति दैविक बल या शास्त्र बल का प्रयोग करने पर उतारू हो जाता है तो लगता है कि वह इस 'सत्य' से परिचित नहीं। बल के द्वारा हम अधिक से अधिक अपने विरोधी के शरीर-बल को ही कुचल सकते हैं सत्य बल को नहीं। उसके सत्य का बल तब तक रहेगा जब तक कि उसके विचार। और ये विचार, जो कि प्रगति-धर्म की धुरी हैं व्यक्तियों के साथ मरते मिटते नहीं, बल्कि विकसित होते हैं। विचारों की जो पवित्र गंगा अनादि

काल से बहती चली आई है वह अनन्तता काल तक बहती रहेगी। इसका प्रवाह और इसकी अनन्तता ही इसका पुण्य है। आओ हम सब मिलकर इस पुण्य का अर्जन करें।'

इस अंक के निकलते न निकलते नीरजा के अपमान की एक और घटना उपस्थित हो गई थी। नीरजा नर्मदेश्वर का मर्म थी जिस पर हुए मामूली से मामूली प्रहार से उसे वज्राघात के समान पीड़ा होती। ऐसे अवसरों पर वह जितनी सरलता से नीरजा को समझा देता उतनी सरलता से स्वयं को नहीं। उसका मन कमजोर पड़ने लगता और उसके वे संस्कार जिन्हें उसने मान लिया था कि उन्मूलित हो गए उसे मोह के दायरे में बाँधने लगते। जब उस रात को नर्मदेश्वर ने भोजन तक न किया तो केला को समझते देर न लगी कि आज वह किस बात से अभिभूत है। उसने भोजन का आग्रह न किया किन्तु जब वह पढ़ने-लिखने के बहाने अपने अलग कमरे में जाकर कुर्सी पर बैठा हुआ मेज पर रखी किताबों की ढेरी पर सिर रखकर एक बार खुलकर रो ही लेना चाहता था वह वहाँ जा पहुँची। उसने धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रखा। उस स्पर्श से कुछ काँप कर नर्मदेश्वर ने सिर उठा लिया। केला ने कन्धे पर हाथ रखे ही रखे कहा—क्यों आज तबीअत कुछ खराब है क्या ?

नर्मदेश्वर कुछ देर चुप रहकर बोला—हाँ केला, आज तक तो कोशिश की कि तबीअत के इस भले-बुरे को भूल जाऊँ, पर अब देखता हूँ कि ऐसा कर न सकूँगा।

केला ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं तो नहीं समझती कि

क्यों न कर सकेंगे। न भी कर सकेंगे तो भी करना ही होगा।

'यही तो मैं भी आज तक सोचता आ रहा था और इसी दृष्टि से मैंने पराजय को भी विजय समझा। जब मुझे एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचना ही था तो दूरी और थकान के बहाने बेकार थे। पर केला जब सामर्थ्य ही चुक जाए तो फिर बढ़ा भी कैसे जा सकता है। अपनी कमजोरी को भी तो बहाना बता कर शांत नहीं किया जा सकता।'

पर मैंने तो आपही से सीखा है कि कमजोरी भी एक मान लेने की ही चीज है। नहीं तो इस गतिमय जीवन में एक भी ऐसा क्षण नहीं कि जिसे कमजोरी कहा जा सके।

'जरूर मैंने यह सीख दी होगी, पर आज खुद इस सीख पर चल नहीं सकता। कल तक मैं समझता था कि इस विश्व का विराट् जीवन ही मेरा जीवन है पर आज महसूस करता हूँ कि यह भ्रम है। जो जीवन अपनी सीमाएँ खो देगा उसका अस्तित्व भी मिट जाएगा। मैं फिर से अपनी सीमाओं में समाकर अपने अस्तित्व को सुदृढ़ करना चाहता हूँ।'

'पर आपकी वे सीमाएँ क्या हैं।'

'मेरे सुख की परिधि। नीरजा मेरा सुख है, केला। तुम भी शारदा की स्मृतियों की तरह मेरा सुख हो। तुम ही मेरे सुख की सीमा या परिधि हो। मैं इस सीमा के बाहर जाकर अपने सुख से हाथ धो लेना नहीं चाहता। मैं किसी अन्य के लिए क्यों मरूँ जबकि मेरे अपने ही जीवन की आवश्यकताएँ जीवित हों।'

'तो क्या हमारी कोई कमजोरी आपको दुर्बल कर रही है?'

'तुम लोगों की कमजोरी कैसे कहूँ। तुम्हीं तो मेरी शक्ति हो, जिन्हें देखकर मैंने विपदाओं और विरोध का भी मजाक उड़ाया। केला बाप को अगर अपनी औलाद के सुख के लिये भूखा तक रहना पड़े तो भी वह अपने को सुखी समझता है, पर यदि उसके सुखी रहने पर औलाद सुखी नहीं रहती तो उसका वह सुख भी दुःख हो जाता है। आज मैं देखता हूँ कि मेरे ही कारण मेरी बच्ची कष्ट पारही है। फिर भला मैं किस सुख का धोखा खड़ा करके अपने आपको सुखी समझता रहूँ।'

'लेकिन आपने ही यह कैसे मान लिया कि हम आपकी इस सैद्धान्तिक हार से प्रसन्न हो सकेंगी। शायद नीरजा भी यह पसन्द न करें कि उसके जीवन का सुख आपकी हार हो।'

केला के सिर का वस्त्र अनजाने में नीचे खिसक आया था। उसकी ऋजु कुन्तलराशि मुक्त होकर कंधों और वक्ष पर बिखर रही थीं। तेल और वैसे किसी भी प्रसाधन के अभाव में वे सूखी और उलझी लटें उसके सुन्दर सुगठित शरीर पर वैराग्य की छाया की तरह पड़ रही थीं। नर्मदेश्वर ने उसे क्षण भर उसी रूप में देखा और फिर उसकी उन लटों को अपने हाथों में लेकर सुलझाने का लोभ सँवरण न कर सका। जिस तरह कोई बच्चा अपने खिलौनों में व्यस्त हो गया हो, उसी तरह वह उन लटों से उलझ गया। केला निर्विरोध भाव से खड़ी रही। नर्मदेश्वर के कंधे पर रखे उसके हाथ की अँगुलियाँ जरूर ही कुछ चंचल हो उठीं। वह अपनी उन अँगुलियों को उसके मोटे कुर्ते के फूसड़ों को बीनने में व्यस्त रखने लगी! तभी नर्मदेश्वर ने पूछा—तो केला तुम्हीं बताओ कि मैं किस तरह तुम्हें और अपनी बच्ची को सुखी रखकर स्वयं सुखी रह सकूँगा।

केला ने उसी तरह फूसड़े उखाड़ते हुए कहा—पर सुख तो ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसके लिए व्यक्ति परेशान रहे। मैं तो आजतक करणीय और सुख में कोई विभेद कर ही न सकी। जबकि आप अप्रभावित बुद्धि से उस करणीय को करते रहेंगे तो सुख की खोज करनी रह ही नहीं जायगी। आदमी के कुछ सम्बन्ध होते हैं और उन सम्बन्धों से उसे बहुत कुछ मोह भी होता है। इस मोह को मैं बुरा नहीं मानती। जिस तरह चित्र के लिए रेखाएँ आवश्यक हैं उसी तरह जीवन सम्बन्धों के स्पष्टीकरण के लिए यह मोह भी। लेकिन जब यह मोह सीमा बन जाता है या विकास के प्रयत्नों में सफल होने लगता है तो मैं मान लेती हूँ कि यह अपनी पवित्रता से वंचित हो रहा है। आपका हमारे प्रति जो मोह है वह हमारे लिये प्रसन्नता की बात है। फिर भी मैं कहूँगी कि उसे आप अपवित्र न करें।

नर्मदेश्वर के मस्तिष्क में एक सुखमय आलोक-सा फैल गया। वह बैठे-बैठे उठ खड़ा हुआ। अभी भी उसके हाथों में केला के बालों की सूखी उलझी लटें थीं, पर अब वह उनके सुलझाने में व्यस्त न था। बोला—केला, तुमने मेरे जीवन का बहुत बड़ा भ्रम दूर किया। जाने कब यही भ्रम मेरे प्रकाश-पूर्ण मार्ग का घनान्धकार बन जाता। केला, मेरी सखि तुम सदैव मुझे इसी तरह आलोक देना।

केला पुलकों से भर उठी।

फिर केला जाकर चुपचाप थोड़ा-सा भोजन ले आई। नर्मदेश्वर ने इस तरह प्रसन्न होकर वह भोजन किया मानो कोई बच्चा अपनी मा के हाथ से मनचाही मिठाइयाँ पाकर खारहा

हो। उसके खा चुकने के उपरान्त जाते-जाते केला ने कहा—अच्छा तो अब आज चुपचाप सो जाना। पुस्तकों में दिमाग खराब करके जागते रहने की कोई जरूरत नहीं।

नर्मदेश्वर ने मुसकराकर कहा—तुम भी पुस्तकों को इतना खराब समझती हो।

केला—शायद खराब न भी समझती होऊँ, फिर भी मानती हूँ कि जीवन का एक बहुत छोटा अंश ये पुस्तकें पास की हैं। खैर, इस समय मैं बहस न करूँगी। आप चारपाई पर चले जाएँ तो मैं बत्ती बुझाती हुई चली जाती।

नर्मदेश्वर—तुम जाओ केला। इतना तो मैं भी कर लूँगा।

केला—अच्छा जाती हूँ, पर देखो पढ़ना नहीं? मेरे जाते ही चुपचाप सो जाना।

केला चली गई और नर्मदेश्वर क्षणभर के लिये कोई स्वप्न-सा देखता रहा। फिर वह कुछ तेजी से उठा और अपनी उस डायरी को निकाला जिस पर उसने बहुत दिनों से कुछ नहीं लिखा था। अपने प्रिय या अभिन्न मित्र से अपने हृदय की बात कहने में जो रस आता है, वही नर्मदेश्वर को इस डायरी के लिखने में आता था। उसने लिखा—

"आज मैं बहुत सुखी हूँ। पर यह सुख क्या है अभी भी न जान पाया। इसे एक क्षण कहूँ या एक घटना यह विचार है कोई कि भावना। या कि केवल व्यक्ति! ओ केला, तेरे सम्पर्क के क्षण ऐसे ही सुखद हैं। तेरी बातें भी सदा घटनामयी हैं। तुझसे मिलने पर हमेशा नये-नये विचार और नई-नई भावनाएँ पैदा होती हैं। सुख के सभी संभाव्य संस्थान एक तुझी में हैं।

फिर अरी केला, क्या मेरा सुख तू ही है, एकमात्र तू ही ? पर तू ही बता कि तुझे एकान्त में पास देखकर ही मुझे शारदा क्यों याद आती है ? तुझे भूले बिना भी मुझे नीर से क्यों मोह होता है ? हाँ बताना ।"

आठ

इसके बाद नर्मदेश्वर ने 'क्रांति' के सम्पादन और प्रकाशन में और भी अधिक तत्परता दिखाई। व्यवसाय की दृष्टि से तो 'क्रांति' अभी तक घाटा ही दिला रही थी, पर नर्मदेश्वर का लक्ष्य 'क्रांति' द्वारा अर्थ सर्जन न करके गले-सड़े चिथड़े समाज को क्रांति पथ पर ला खड़ा करना था। 'क्रांति' उसके लिए एक अनुष्ठान के समान थी और वह इसे अनुष्ठेय समझ कर ही कर रहा था। इस अनुष्ठान की स्वतन्त्रता पर जो उसकी आशा थी वे सभी इतनी व्यापक थीं कि किसी भी एक व्यक्ति की सीमाओं में बंधकर न रह सकती थीं। उसका व्यक्ति समाज वायु को धर्म देह की तरह धारण कर विराट हो चुका था। वह इसी सद्भावना का प्रभाव था कि 'क्रांति' का महत्व इस बस्ती के बाहर निकट या दूर के उन सभी स्थानों में प्रति दिन बढ़ रहा था जहां कि शिक्षित जनों का प्रभाव था। स्तुति और सहयोग की भावना रखने वाले पत्रों का तांता ही लगा रहता। पर नर्मदेश्वर के लिए वे उतना महत्व न रखते जितना कि आलोचनात्मक पत्र। उन आलो-

चनाओं के द्वारा उसे अपनी गलतियों का पता चलता, या दूसरों की दृष्टि समझने का मौका मिलता, जो कि 'क्रांति' के परिमार्जित विकास में सहायक होतीं। इस तरह एक दिन स्वयं उसने अनुभव किया कि 'क्रांति' के संकल्प क्षेत्र और विचार प्रसार को बढ़ाना चाहिए। पर अभी तक वह इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा न बना सका था। जबकि वहाँ इसी प्रकार के ऊहा-पोह में कोई भी एक निश्चय न कर पाया था, उसे काशी से एक लेखक का पत्र मिला। इस लेखक का सामयिक विचार-धारा पर एक लेख क्रांति में प्रकाशित भी हो चुका था जिसकी नर्मदेश्वर ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। यद्यपि लेखक अभी तक पर्याप्त ख्याति न प्राप्त कर सका था फिर भी उसकी लेखनी की प्रखरता को देखकर विश्वास होता था कि ख्याति उसके लिए अधिक काल तक दुष्प्राप्य न रह सकेगी। जैसा कि नर्मदेश्वर का अनुमान भी था लेखक वस्तुतः युवक ही था उसका किसी भी प्रकार की उपाधि से शून्य नाम था—श्रीधर। उसने नर्मदेश्वर को अपने पत्र में लिखा था—

'प्रिय महोदय, सादर वन्दे। 'क्रान्ति' में कई मास पूर्व प्रकाशित लेख से आप मेरे विषय में कुछ न कुछ अवश्य जान गये होंगे। मैं भी 'क्रांति' के सभी प्राप्य अङ्कों के द्वारा आपके पत्र के विषय में काफी स्पष्ट धारणा बना सका हूँ। उसी धारणा की प्रेरणा से बाध्य होकर यह पत्र लिख रहा हूँ।

'क्रांति' की नीति और आपके सम्पादन की रीति से मैं बहुत अधिक सहमत हूँ। पत्र पर सभी दृष्टियों से विचार

कर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि यह ऐसे व्यक्ति के ही प्रयत्नों का परिणाम है,जो कि सम्भवतः आप ही हो सकते हैं। कहीं-कहीं पत्र में आपका व्यक्तित्व इतना अधिक स्पष्ट हो जाता है कि मेरे इस अनुमान में कोई सन्देह नहीं रह जाता। मैंने यह भी अनुभव किया है कि आपके पत्र को अधिक व्यापक नीति का प्रयोग करना अधिक श्रेयकर होगा। इस विषय में इस पत्र में अधिक नहीं लिख सकता केवल संकेत भर कर सकता हूं। क्या आप अपने पत्र के द्वारा देश और उसकी अधिकांश जनता का मार्ग-प्रदर्शन करना पसन्द करेंगे।

'इतना लिख चुकने पर मैं यह भी निवेदन करूँगा कि मुझे हर्ष ही होगा यदि आप 'क्रांति' को व्यापकता देने में मेरा सहयोग भी पसन्द करेंगे। पत्र कला का अधिक तो नहीं फिर भी सामान्य अनुभव है और यद्यपि व्यवहार ज्ञान में शिक्षा का महत्व अधिक नहीं, फिर भी स्पष्ट करूंगा कि मैंने एम० ए० तक शिक्षा पाई है और हिन्दी लेकर ही वह कक्षा पास की है। आशा है आप मेरे प्रस्ताव पर अवश्य ही विचार करेंगे।

'इस सम्बन्ध में आपके उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी। सविनय— श्रीधर।'

नर्मदेश्वर को पत्र पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने उसे आने के लिये तत्काल पत्र भी लिख दिया। पत्र में लिखा था कि यदि आप शीघ्र ही आने की व्यवस्था कर सकें तो आपसे साक्षात् परामर्श कर किसी भी सुन्दर निश्चय पर पहुँचने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।

कार्यालय से पत्र भिजवा कर घर आकर केला और नीरजा से मिलकर मुदित मन से नर्मदेश्वर ने कहा—श्रीधर आ रहे हैं।

नीरजा ने पूछा—ये कौन हैं पिताजी।

नर्मदेश्वर ने जवाब दिया—एक बहुत बड़े क्रांतिकारी।

नीरजा आज तक केवल आतंकवादियों को ही क्रांतिकारी समझती आई थी। अतएव नर्मदेश्वर का गम्भीर विनोद वह समझ न सकी। इस श्रीधर नाम ने उसके मनमें विशेष कूतूहल और भयंकर संचार कर दिया। जाने यह क्रांतिकारी यहां आकर कौन सी विपदा लाये। यद्यपि १६४५ का प्रारम्भ था और अंग्रेज हिन्दुस्तान को आजादी देने की योजना पर तत्परता से विचार कर रहे थे और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगी नेताओं के साथ तेजी से विचारों का आदान प्रदान हो रहा था, फिर भी अंग्रेजी राज्य को शक्ति से परास्त करने वाले क्रांतिकारी नौकरशाही या गोराशाही में निरापद न थे। यही सोच सोचकर नीरजा परेशान थी। फिर भी उसने पूछा—वे कब तक आयेंगे पिताजी।

नर्मदेश्वर-जल्दी ही।

नीरजा की व्यग्रता बढ़ी। केला प्रायः ऐसे प्रसंगों में चुप ही रहती थी। और जब कुछ कहती भी तो अत्यावश्यक होने पर ही। बस वह सुनती रही। नीरजा ने अबोध बच्ची की तरह पूछा—ये क्रांतिकारी कैसे होते हैं पिताजी।

नर्मदेश्वर को उसका कुतूहल बनाए रखने में विशेष आनन्द आ रहा था। उसने कहा—बेटी नेताजी सुभाषचन्द्र

बोस भी क्रांतिकारी थे और महात्मा गांधी भी क्रांतिकारी हैं ।

नीरजा की समझ में न आया कि उसके घर आने वाला क्रांतिकारी श्रीधर नेताजी और महात्मा जी में से क्या होगा । पर तभी उसका ध्यान एक दूसरी बात की ओर फिर गया । उसने पूछा तो नेताजी क्या अब जीवित नहीं ।

नर्मदेश्वर—ऐसा कैसे कह सकते हैं बेटी । ऐसे महान पुरुषों का कर्म-देह क्षीण हो जाने पर भी यशः शरीर सदा जीवित रहता है, जो मनुष्यता की प्रथम-सन्धितक कीर्ति लोक में विचरण करता है । यही उस कर्म-देह की अमरता है । फिर भी नेताजी के विषय में कुछ कहते नहीं बनता । वे आज हमारे जीवन को इतना अधिक अपना चुके हैं कि हमें उनकी मृत्यु की कल्पना करते हुए भी मोह होता है । बेटी, हुआ चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर इच्छा तो यही होती है कि उनका कर्म-देह आज भी अमर हो । आज उन्हें जीवित देखने के लिए कोटि-कोटि जन मृत्यु अपना सकते हैं । फिर कैसे कुछ भी कहें ।

अपनी बात पूरी करते न करते नर्मदेश्वर ने देखा कि नीरजा की आंखें डबडबा रही थीं और वह उसी तरह उमड़े आंसुओं में से महायोधेय नेताजी के दीवाल पर टंगे चित्र को देख रही थी । नर्मदेश्वर ने प्यार से बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—इस महावीर को देखकर रोओ मत बेटी । इन पीड़ा के आंसुओं को अभिमान की चमक में बदल दो । ये वेही नेताजी हैं जिन्होंने विदेशी प्रभुओं को अपना शुद्ध पराक्रम दिखा कर एक बार बर्मा को स्वतन्त्र कर दिया था और जिनके लिए भारत के लक्ष लक्ष सपूतों ने अपना खून

बहाया ! स्वतन्त्रता चाहने वाले वीरों के रक्त को चाहने वाले नेताजी तुम्हारे आंसुओं को कभी पसन्द न करेंगे।

नीरजा तब और भी जोरों से रो पड़ी थी।

इसके बाद एक दिन श्रीधर सुबह ही सुबह अपना छोटा-सा सफरी बिस्तर लिये 'क्रांति' सम्पादक को पूछता-पूछता घर तक जा ही पहुँचा। उसने दरवाजे पर से आवाज लगाई। नर्मदेश्वर घर पर ही था। तत्काल बाहर आकर देखा तो समझते देर न लगी कि यही श्रीधर है। फिर भी श्रीधर ने उसकी जिज्ञासा दृष्टि के उत्तर में कहा—मैं श्रीधर हूँ।

नर्मदेश्वर ने उत्तर दिया—और मैं नर्मदेश्वर !

फिर तो दोनों चिरपरिचितों की तरह मिले। दोनों की अवस्था का अन्तर मिटता-सा जान पड़ा। चाहे युवक श्रीधर एक दम से प्रौढ़ हो गया, या नर्मदेश्वर एकदम से युवक। दोनों के चेहरों की मुस्कान एक ही सी थी।

नीरजा ने जब श्रीधर को देखा तो उसका उसके विषय में क्रांतिकारी होने का पक्का विश्वास हो गया। रूखे उलझे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, दुबला-पतला, देखने में चिन्तित-सा रहने वाला युवक। चाहे रेल के जागरण से या वैसे ही सुर्ख सी बड़ी-बड़ी आंखें ? नीरजा का मन श्रीधर के उस व्यक्तित्व को देखकर सुन्दर तो न कह सका, फिर भी वह खद्दर के मैले कपड़ों में भी उसकी ओर आकर्षित हुई। वह आकर्षण कैसा था, नीरजा ने भी न जाना।

नर्मदेश्वर ने नीरजा की उत्सुकता देख कर कहा—नीर,

ये ही हैं—क्रन्तिकारी श्रीधर। और भाई यह मेरी बेटी नीरू या नीरजा।

श्रीधर 'क्रांतिकारी' विशेषण का मजाक तो न समझ सका, फिर भी उसने हंसकर कहा—जान पड़ता है आपने मुझे यहां गिरफ्तार कराने के लिए ही बुलवाया है। तब तो आप अब तक पुलिस को भी खबर दे चुके होंगे ?

हंसकर कही हुई बातों ने भी नीरजा के संदेह को पुष्ट किया। वह एक क्षण भी वहाँ न रुकी। दौड़ी-दौड़ी केला के पास आकर बोली—माँ वह क्रांतिकारी आ गया है।

केला ने पूछा—कौन सा क्रांतिकारी बेटी।

नीरजा—वही श्रीधर। जिसके बारे में पिताजी उस दिन कहते थे न।

केला हंसकर बोली—अरी पगली, तू भी कितनी भोली है। आज तक नहीं समझी कि श्रीधर जैसा क्रान्तिकारी उसे तू समझती है, वैसा नहीं है। वह तो एक लेखक है।

पर इतने पर भी नीरजा को प्रत्यय न हो रहा था। उसने कहा हो जो—पर वह तो कुछ-कुछ गांधी जी जैसा लगता है और कुछ-कुछ नेताजी जैसा भी।

केला ने बताया क्रांतिकारी लेखक ऐसे ही होते हैं।

नीरजा कुछ समझी और कुछ न समझी फिर भी चुप हो गई।

जिस दिन श्रीधर आया उस दिन नर्मदेश्वर के छापेखाने की छुट्टी थी। श्रीधर के नहा-धो चुकने के बाद नीरजा नर्मदेश्वर और श्रीधर के लिए जलपान लेकर आई। दो छोटे-छोटे

गिलासों में दूध था और दोही जगह तश्तरियों में कुछ नमकीन और मिठाई। नीरजा ने वह सब उन दोनों के आगे मेज पर ले जाकर रख दिया। नर्मदेश्वर बोला—अपने लिए भी तो ले आओ बेटी। यह क्या, आज हमारा साथ न दोगी !

नीरजा चुप ही थी कि श्रीधर ने कहा—नहीं, और लाने की आवश्यकता नहीं मैं तो कुछ जलपान करूँगा नहीं।

नर्मदेश्वर ने पूछा—क्यों भला, जलपान में क्या हर्ज है।

श्रीधर ने हँसकर कहा—हर्ज की दृष्टि से ही तो सभी बातें नहीं सोची जातीं। मेरी कुछ आदत ही ऐसी है कि जलपान नहीं करता। और फिर अब तो यही आदत एक नियम-सा होगई है।

नर्मदेश्वर—तो आप भोजन कब करते हैं।

श्रीधर—दिन में कभी भी एक बार ! भोजन में भी खास कुछ नहीं। रोटी और दाल ! हाँ दाल कुछ गाढ़ी हो और उसमें घी भी पड़ा हो तो यही मेरे लिए पकवान हो जाती है।

इसी बीच केला भी उधर ही चली आई थी ! उसे इस पागल से लड़के को देखकर कुछ मोह-सा होगया। मोह भी ऐसा कि वह उसे बेटा कहकर बातें भी करना चाहती थी। नीरजा के यहाँ रुक जाने से कुछ और जरूरत तो नहीं यह जानने के लिए उसे वहाँ आना पड़ा था। नर्मदेश्वर-श्रीधर में बात चल ही रही थी कि उसने भी सुना। श्रीधर ने केला को देखकर उसे नीरजा की मां समझा। इसलिए वह उसके प्रति वैसा ही भाव रखने लगा था। केला ने जब उसकी आखिरी बात सुनी तो बड़े ही कष्ट के साथ बोली—तभी तो तुमने अपनी यह हालत कर रखी

है बेटा। मुझे तो तुम्हारी सूरत देखकर लगता है कि दाल में भी क्या घी खाते होंगे।

श्रीधर ने हँसते हुए कहा—वाह मां, खूब कहती हैं आप भी! अच्छा भला तो हूँ। और अधिक मोटा भी किस काम का। आप जानती नहीं, दस मील पैदल चल कर भी मैं थकता नहीं। धूप, सर्दी और बारिश ने मेरे इन खद्दर के कपड़ों से हार मान रखी है। भूख तो जैसे मुझे लगती ही नहीं। हाँ नींद से जरूर मैंने हार मान रखी है। जागना चाहूँ तो काफी रात तक जाग सकता हूँ और जाग भी लेता हूँ। फिर भी तकलीफ मालूम देती है।

केला—और भूखे रहने में तो आनन्द आता होगा। हमारी नीरजा तुम्हें क्रांतिकारी समझती है। पर मुझे तो तुम क्रान्ति-कारी लगते हो। जाने किस भ्रम में पड़कर अपने आप को इस तरह सुखा रहे हो!

श्रीधर—लो मा आपतो ज्यादती पर उतर आई। यही हालत मेरी अपनी मा की भी थी वे मुझे कभी मोटा मानने को तैयार ही नहीं होती थीं। यह तो याद नहीं कि मैं कब तुला हूँगा और मेरा ठीक-ठीक वजन भी कितना रहा होगा। फिर भी समझता हूँ कि सौ पौंड से तो क्या कम होगा।

उसकी इस सरलता से कही बात पर नर्मदेश्वर ठठाकर हँस पड़ा। बोले भाई खूब हो इससे कहीं ज्यादा वजन तो हमारी बेटी नीर का ही होगा। तुमसे तो लड़कियों ने भी बाजी मारली!

श्रीधर देखने में जितना शुष्क था स्वभाव से उतना ही

मधुर। थोड़ी ही देर में वह नर्मदेश्वर के परिवार का ही जैसे एक व्यक्ति बन गया। नीरजा के बोल तो आज जाने किसने चुरा लिये थे। वह इस व्यक्ति को ठीक से कुछ समझ ही नहीं पारही थी और शायद इसी से चुप भी थी। बोली—तो अब तुम्हारी मा नहीं हैं। बेटा?

श्रीधर—सोतो मैं कैसे कहूँ। मेरे लिये तो जब से आपको जाना आप ही मा हो गईं। हां जननी से अवश्य ही वँचित हो चुका हूँ।

केला—घर में और तो सब होंगे।

श्रीधर—एकदम से अपना कहा जा सकने वाला तो कोई नहीं। इसी से लोगों को समझाने को कहा करता हूँ कि सभी उपसर्ग-प्रत्ययों से विरहित कुछ भी हूँ।

केला—सोतो मेरी समझ में नहीं आया। पर तुमने शादी की बेटा।

श्रीधर इस प्रश्न पर खूब जोरों से हँस पड़ा। उसके बड़े-बड़े दाँत सूखे चेहरे में चमक उठे। नीरजा के लिये वह चमक भी एक सुन्दर आकर्षण थी, पर केला की मातृमूर्ति के लिये कष्ट। अच्छी तरह हँस चुकने पर उसने कहा—मा, हर किसी मा की यह भी एक खास कमजोरी है। सबसे पहले वे शादी पर आती हैं। कभी एक घड़ी के लिये भी नहीं पूछती कि जीने के लिये क्या करते हो। कुछ कमाते भी हो कि नहीं शादी का सवाल पहला।

नर्मदेश्वर—तो भाई तब तो मैं ही कहे देता हूँ कि तुमने शादी नहीं की और शादी करने के विरोधी भी हो।

श्रीधर—हाँ की तो जरूर ही नहीं। पर इसलिए नहीं कि विरोधी हूँ बल्कि इसलिए कि कभी मौका ही नहीं मिला। आपकी हँसी देखकर मुझे लग रहा है कि आप मुझे गलत समझे। मेरा मतलब शादी करने के मौके से नहीं। शादी के बारे में सोचने से है। सोचने तक का मौका न मिला। और भला सोच भी पाऊँ कैसे। मैंने तो जाने क्यों मान लिया है कि मुझे एक बड़ा आदमी बनना है। पैसे वाला नहीं, बल्कि फिक्र-वाला। वे ही फिक्रें मुझे अभी से सता रही हैं। हमें अपने देश की आजादी और उसके बाद उस आजादी को कायम रखने के लिए बहुत कुछ करना है। यह तो पता नहीं कि इन सब कामों में मेरा कितना हिस्सा होगा, फिर भी समझता हूँ कि इतना हिस्सा जरूर ही होगा कि मृत्यु के दिन मिटाने न पड़ें और जब वह दिन आ ही जाये तो अपने हिस्से का कोई काम बाकी भी न रह जाये।

नर्मदेश्वर—तो भाई तुम्हारा विरोध तो इतना जबरदस्त हुआ कि इसकी कोई काट तक नहीं। खैर, फिर बातें होंगी। तुमने तो हमारा दूध तक ठण्डा कर डाला। अच्छा बेटा नीर फिर से तो गरम कर लाओ।

दोपहर को भोजन के पश्चात् नर्मदेश्वर और श्रीधर में 'क्रांति' के सम्बन्ध में बातें प्रारम्भ हुईं। श्रीधर की सरल निष्कपटता से नीरजा के अतिरिक्त सभी कोई मुग्ध था। नर्मदेश्वर के मन में उसके प्रति प्रशंसा का भाव था और केला के मन में दया का। नर्मदेश्वर उसकी बुद्धि, विद्या और ज्ञान से प्रभावित हुए बिना न रह सके। पर वत्सला केला के लिए जैसे ये सब बातें तुच्छ

थीं। वह तो केवल यही सोचती कि श्रीधर जैसा एक उसका भी बावला बेटा होता तो वह उसे कितने प्यार से कृतार्थ कर डालती, कि खुद कृतार्थ हो जाती! और नीरजा वह कुछ स्वाभिमानी थी। इसी स्वाभिमान के कारण उसके अहंकार ममकार का घोष बहुत ऊँचा था। जो कोई भी उसके इस घोष को प्रतिध्वनित कर पाता उसका कृपापात्र हो जाता, पर जिसके हृदय की अतल गहराई में वह घोष गूँज-गूँज कर प्रतिक्षण आगे ही बढ़ता हुआ किसी तल या पार्श्व का स्पर्श न कर पाकर प्रतिध्वनित न हो पाता, वह उसके लिये श्रीधर के समान उपेक्षा का पात्र बन जाता। असुन्दर श्रीधर में भी कुछ ऐसा सौंदर्य था जो कि स्त्री हृदय को बहुत भाता है। नीरजा का मन भी कभी इससे इन्कार न कर सका, पर उसका मान भी स्वीकार करता तब न। फलतः वह उसमें दोष ढूँढ़ने पर लगा। और जब उस निराडम्बर व्यक्ति में उसे कोई संतोषजनक दोष ढूँढ न मिलता तो वह यही सोच कर मन को समझाने की कोशिश करती कि यह श्रीधर बहुत बनता है। आज तो यह साधु लग रहा है, पर जब यह साधुता की नकाब''पर वह इस तरह भी मन का आक्रोश शान्त न कर पाती वह श्रीधर की शरीर परिधि से बाहर रह सकी हो तो रही हो, पर छाया—परिधि से दूर न जा सकी। श्रीधर भी ऐसा था, उसने मितभाषिणी केला को मुखरा कर दिया और मुखरा नीरजा को मूक! यह मूक नीरजा ही श्रीधर के पास बनी रहती। जब नर्मदेश्वर और श्रीधर बातें कर रहे थे तो वह भी वहीं थी। नर्मदेश्वर ने बात छेड़ते हुए कहा—तो भाई श्रीधर, तुम्हें कुछ आराम करना हो तो करलो, फिर थोड़ी-बहुत काम की बात भी करेंगे।

श्रीधर ने हँसकर कहा—पर मेहनत तो ऐसी कोई भी नहीं की जो आराम की जरूरत समझी जाए।

नर्मदेश्वर—वाह, तुम भी खूब कहते हो भाई! मेरा मतलब था खाने के बाद आराम करने से। मुझे खुद तो इसकी आदत नहीं, पर सोचा कहीं तुम···।

श्रीधर ने बात काट दी; बोला—इतना आराम पसन्द होता तो इन हड्डियों पर थोड़ा-सा मांस चढ़ गया होता।

इस पर दोनों मुक्त होकर हँस पड़े और बात खत्म होगई। नीरजा की खीज कुछ और बढ़ी। नर्मदेश्वर ने उसे हँसी में योग न देते देखकर कहा—वाह बेटी, तुम तो बिल्कुल मूर्ति बनी बैठी हो! सुशील तो तुम्हारी बातों से छका रहता था, पर इन बेचारों ने क्या किया जो हँसने तक में योग नहीं देतीं?

नीरजा ने अपने अभिमान को उत्तेजित करते हुए कहा—कोई हँसने की बात हो तो हँसा भी जाए। चिड़ियाघर के बंदरों की उछल-कूद देखकर जो हँस सकते हों वे हँसें। मेरे से तो वैसा किया न जाएगा। फिर पिताजी हर कोई सुशील बाबू तो नहीं बन सकता!

नर्मदेश्वर की समझ में इस अकारण रोष का कारण न आया! श्रीधर के मर्म में भी एक सुई-सी चुभी, पर वह अपने मन के कष्ट को इतनी सफलता से छिपा सकता था कि उसके अभिन्न भी उसका आभास न पा सकते थे। इसी से उसने हँसते हुए कहा—नीरजा बहन, आपने उदाहरण तो ऐसा दिया कि मुझे बन्दर ही बना डाला। मालूम पड़ता है मेरी बातें आपको बन्दर की तरह काटती हैं। पर इसमें कोई शक नहीं

कि आपकी हिम्मत और तेजी गजब की है। इतनी स्पष्टता और निर्भीकता से मेरा आज तक किसी ने नाम नहीं धरा।

नीरजा ने सुना। अपने साहस की स्तुति सुनते-सुनते उसका साहस ही डूबने लगा। वह वहाँ से उठकर चल दी। नर्मदेश्वर जो अभी तक कुछ न समझा था परेशान-सा होकर बोला—अरे, चल क्यों दी नीर! अभी तो हम तुम्हारी 'क्रांति' के बारे में बातें करने वाले हैं।

नीरजा ने जाने क्या समझ कर कहा—जरा भारती मा के पास जाऊँगी पिताजी! सुशील बाबू से मिले भी कई दिन होगए। अभी उसी दिन मुझसे नाराज से होकर गए थे। मिल आऊँ, कहीं अभी तक नाराजी ही न बनी हो!

नीरजा अपने इस व्यवहार के द्वारा श्रीधर को हतप्रभ करना चाहती थी। उसे न तो भारती मा से मिलना था और न रूठे हुए सुशील से—फिर किसी रूठे हुए को मनाने वाली भी वह न थी। श्रीधर के मन में उस सुशील के प्रतिकुतूहल तो जगा, पर किसी खास कारण से नहीं। फिर भी उसे यह विनोद का अवसर न छोड़ा गया। उसने कहा—तब तो जान पड़ता है कि आप प्रायः लोगों को नाराज कर डालती हैं। खैर, यही है कि बाद में उनका ख़्याल भी कर लेती हैं।

नीरजा इस बात से मन ही मन तिलमिला उठी। मन में तो उसके आया कहदे 'आप अपने तईं इस बात की आशा न करें' पर जैसे ही कहने के लिए घूमी तो नर्मदेश्वर पर दृष्टि पड़ते ही रुक गई। क्षणभर उसी अवस्था में वहाँ रुकी रहकर चली गई। नर्मदेश्वर विस्मित था!

यह विस्मय-मौन तोड़ा श्रीधर ने ही । उसने कहा-हाँ तो हम 'क्रांति' की चर्चा करने वाले थे।

नर्मदेश्वर ने चौंकते हुए हाँ-ठीक। तुम्हीं बताओ कि आज 'क्रांति' को किस दिशा में ले जाने की आवश्यकता है। इधर महसूस तो मैंने भी किया है कि हमारी 'क्रांति' का प्रयोजन बहुत कुछ एकांगी है और साथ ही उतना व्यापक भी नहीं कि युग-प्रवाह में कुछ वेग भर सके।

श्रीधर—आपने बिल्कुल ठीक महसूस किया । आज की दुनियाँ मूलतः आर्थिक स्वार्थों की दुनिया है। जाति और सम्प्रदाय को लेकर बने हुए वर्ग या समाज अब चिरायु नहीं हो सकते, कारण कि व्यक्ति के आर्थिक स्वार्थ अब उसकी जाति सम्प्रदाय या वर्ग और समाज से भी बाहर पड़ने लगे हैं। अपने जीवन के हित के लिए वह इन स्वार्थों की उपेक्षा नहीं कर सकता। फिर केवल स्वार्थ कह कर हम इन्हें कुछ छोटा या त्याज्य समझने की भूल भी नहीं कर सकते। आर्थिक हित हमारा सच्चा हित है और इसी में समाज, राष्ट्र और देश का महा हित भी निहित है। व्यक्ति की दृष्टि अभी चाहे राष्ट्र या देश के कल्याण तक न गई हो पर अपने ही हितार्थ उसे किन्हीं भी संकीर्ण दायरों को तोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। इसलिए हमें इन दायरों को प्रायः टूटा ही मानकर किसी वृहत्तर को ध्यान में रखना चाहिए।

नर्मदेश्वर—पर क्या तुम यह मान ही लेते हो कि धर्म और जाति के दायरे टूट कर ही रहेंगे ?

श्रीधर-जरूर ही। मैं तो अब इसमें सन्देह मानता ही नहीं।

आप अपनी ही बस्ती को लें। यहाँ के तीर्थ पुरोहितों और दान लेने वाले ब्राह्मणों में नये विचारों से ज्यादा बेचैनी फैलती है। उतनी बेचैनी अवश्य ही यहाँ के वैश्य समाज में न फैलती होगी जबकि अनेक दृष्टियों से यह दूसरा समाज भी पहले समाज के समान ही पिछड़ा हुआ है। तो बात यह है कि दान देने वाले का सम्बन्ध भले ही दान से धर्मवृत्ति के रूप में हो, पर दान लेने वाले का तो माना नहीं जा सकता। यजमान का कल्याण होता है कि नहीं, परलोक सुधरता है कि नहीं, या पाप घटता है कि नहीं इन सबके लिये पंडा-पुरोहित आज परेशान नहीं। दान आज उनकी जीविका है। जिस तरह वैश्य वाणिज्य के द्वारा या मजदूर मजदूरी करके अपनी जीविका का शोध करते हैं उसी तरह ये ब्राह्मण भी मूर्खता और हठ-पूर्वक युग की प्रगति को पाप पूर्ण घोषित करके धर्मवाद के संकीर्ण दायरे के बल अपनी हित-चिन्ता के कारण ही कायम रखना चाहते हैं। यदि उन्हें अर्थ के स्थान पर धर्म का कुछ भी विचार होता तो वे आज दान लेते वक्त इतना तो अवश्य ही सोचने की कोशिश करते कि उन्हें दान देने वाले स्वयं में कितने धर्माग्रही या श्रद्धापूरित हैं, तथा स्वयं उनके अपने आचरण कितने पवित्र, कितने ब्राह्मणोचित। फिर जबकि ऐसा कुछ नहीं, संकल्प के शुद्ध-अशुद्ध उच्चारण की जगह दक्षिणा के खरे-खोटे रुपये की ही चिन्ता है तब उन्हें परार्थ या परमार्थनिष्ठ मान भी लें तो कैसे?

नर्मदेश्वर—तो फिर इस दायरे के अनायास टूटने की आशा कैसे करें। इतना तो स्पष्ट है कि ब्राह्मण इसे अपनी जीविका समझकर बराबर बनाए रखना चाहेंगे।

श्रीधर—हाँ जाग्रति शून्य ब्राह्मण तो ऐसा ही करेंगे। पर इन्हीं सुषुप्तों में से आप जैसे चेतना-सम्पन्न व्यक्ति भी तो उत्पन्न होते हैं। वे इन जातिवाद की किले-बन्दियों में दरार का काम करेंगे। आप फिर कहेंगे कि यह सब तो प्रयत्न की ही बात हुई। पर इससे भी महत्वपूर्ण एक दूसरी बात है। दानवृत्ति तभी बनी रह सकती है जब तक कि दान-दाता हों। अब शनैः शनैः सभी समझदार मोटे-छोटे और मैले जनेऊ वाले अनपढ़ ब्राह्मणों को दान दे-दे कर उन्हें वैसे ही गत्यवरोधी बनाये रखने के हामी नहीं रह जा रहे हैं। एक दिन ब्राह्मणों की हीनता ही लोगों को दान देना बन्द करने से मजबूर करेगी और तब इन्हें भी इस दायरे को खुद ही तोड़कर जीवित रहने के लिये शेष खुली दुनिया से एक होना होगा। आज भी जो इस तरह अनर्थमूलक दान देने वाले हैं वे सब वे ही तो लोग हैं जिन्होंने अनर्थकारी सम्पदा का अर्जन किया है। पर जब कि दुनिया-भर की अर्थनीति बदल रही है तो हमारे देश की भी बदलेगी और आजाद होने पर और भी तेजी से बदलेगी। न बदली तो उस आजादी का कोई मूल्य ही न रह जाएगा। तब इस तरह की निकृष्टवृत्ति का अस्तित्व धनार्जन के निकृष्ट तरीकों के लुप्त होते ही लुप्त हो जायगा। और फिर जब आप ही की बस्ती का वैश्य अर्थ स्वार्थ के कारण इस पिछड़ी हुई अवस्था में भी सभी कृत्रिम और घातक सीमाओं को तोड़ने के लिये तैयार बैठा है और समय-समय पर वैसा कर भी दिखाता है तब ये ब्राह्मण भी जीविका के लिये दुनिया को सही ढंग से देखने और बरतने के लिये मजबूर हो जायेंगे।

नर्मदेश्वर—तुम्हारी बात मेरी समझ में खूब आती है, और प्रायः मैं भी कुछ ऐसा ही सोचता हूँ फिर भी एक बात तो बतलाओ कि क्या जातीय संस्कार आज इतने दुर्बल हैं कि इन परिवर्तनों को प्रसन्नता पूर्वक सहलेंगे या मान लेंगे।

श्रीधर—प्रसन्नता पूर्वक न सहीं, मजबूरी में मानना पड़ेगा। जब समझ आजायेगी तब यह मजबूरी भी प्रसन्नता हो जायेगी। पर आप जितना अधिक इन जातीय संस्कारों को महत्व देते जान पड़ते हैं वस्तुतः उसके योग्य ये हैं ही नहीं। यह 'जाति-जाति' भी हम एक बहुत छोटी सीमा में ही चिल्लाते हैं। जन्मजात वैश्य गांधी, कायस्थ सुभाष, ब्राह्मण नेहरू और मुसलमान मौलाना आजाद के देश पर पड़े प्रभावों को देखकर मेरी बात स्पष्ट हो जाती है। कौन लोग इन सभी महानात्मओं के आगे अवनत नहीं। विविध जाति-सम्प्रदायों में फैला हुआ धर्म, प्रान्त और भाषा के भेदों में बिखरा हुआ, हिमालय से लेकर कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत अखंड भारत-राष्ट्र क्या इसमें किसी भी प्रकार का भेद-भाव मानता है। समय ने हमें बहुत कुछ सिखा दिया है, यह बात दूसरी है कि हम उस सीख को टालते ही रहें। गांधी वैश्य हो करके भी महात्मा और ऋषि बन सकते हैं, ऋषियों का भी आदर्श बन सकते हैं, सुभाष कायस्थ हो करके भी क्षत्रियों द्वारा गाये जाने योग्य पराक्रम का प्रदर्शन कर सकते हैं, मौलाना आजाद के भाषण पर कोटि-कोटि हिन्दू जनता मुग्ध हो सकती है, नेहरू हिंसक कबाइलियों में जाकर भी अपने प्रभाव का विस्तार कर सकते हैं, फिर मैं कैसे मान लूं कि आज भी ये जाति समुदाय

के सिद्धांत इतने प्रबल हैं कि नए और उपयोगी विचारों को पनपने ही न देंगे।

नर्मदेश्वर—लेकिन भाई जिस जाति-जाति चिल्लाने को तुमने व्यक्ति की दृष्टि से बहुत छोटी सीमा कहा है, वही तो उसका विश्व है जो कि उसके जन्म मृत्यु के बीच के सभी व्यापारों के लिए एक मात्र आश्रय है। जीविका के लिये तो व्यक्ति यह दायरा तोड़ देगा पर जब ब्याह शादी जैसे सवाल आयेंगे तब भी वह कैसे इस दायरे के बाहर रह सकेगा।

श्रीधर—आपकी शंका तो ठीक है, पर आज हमें यह जितनी कठिन बात जान पड़ती है कल उतनी न रह जायगी। इन दायरों को तोड़कर बाहर निकल चुका व्यक्ति एक छोटे विश्व से निकल कर विराट विश्व में जा पहुँचेगा। फिर रस्सी के बन्धन खोल चुकने पर भी अगर हम उसके निशानों से ही जकड़े रहे तो रस्सी का तोड़ डालना महत्वपूर्ण न होगा। हमें तो असल में किसी रूप को नहीं मिटाना, बल्कि उसके दुष्प्रभाव को दूर करना है, फिर इसके लिए चाहे नया रूप ही क्यों न देना पड़े। आप यह भी मान लें कि व्यक्तियों के विकास के साथ-साथ व्यक्तियों से ही बने समाज का विकास भी हुए बिना नहीं रहता। विकसित समाज के लिए ऐसी समस्याएं पैदा ही नहीं होंगी। वह अपनी सम्पूर्णता लेकर बढ़ता रहेगा जिससे आगे बढ़े व्यक्तियों को जीवन के किसी भी सामाजिक साधक के लिए अपने आपको असहाय न अनुभव करना होगा।

नर्मदेश्वर श्रीधर की बातें सुन कर प्रसन्नता से भर उठा उसने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—श्रीधर, आज

मेरी 'क्रांति'का पथ यही निश्चय हो गया। इस पथ का प्रदर्शन तुम्हीं करोगे। जाने क्यों आज तक तुम मुझ से न मिले। फिर भी सोचता हूँ कि शायद ठीक समय यही है। इसी से आज ही यह अवसर आया। अब मैं 'क्रांति'के भविष्य के लिए अधिक निश्चिंत हो सकूंगा।

इतने में नीरजा हाथ में एक छोटा सा प्याला लेकर आई। बोली आपकी दवाई पिताजी। खाना खाए घंटा भर तो हो चुका।

नर्मदेश्वर ने साश्चर्य पूछा—पर तू आ गई। गई नहीं बेटी?

नीरजा इस जवाब के लिए तैयार थी। कह दिया—मुझे यही पता लग गया था कि सुशील आज कल घर नहीं हैं।

नीरजा फिर जाने लगी। नर्मदेश्वर ने कहा—तो बैठो न बेटी। आज तो तुम्हारे पीछे श्रीधर ने ऐसी बातें बताईं जो तुम्हारे सुनने लायक थीं।

पर नीरजा ने ये सब बातें सुनी थीं। उस कमरे के बाहर बैठी-बैठी वह यह सब सुन ही नहीं रही बल्कि सोच भी रही थी कि इस श्रीधर की बुद्धि कैसी है और वह खुद ही कैसा है जो एक ही क्षण में उसे अच्छा भी लगता है और बुरा भी। अभी केला ने उसे नर्मदेश्वर की दवाई के लिए बुला भेजा था जिससे उसे विवश होकर फिर से श्रीधर के सामने जाना पड़ा। जब कि वह उसकी बातों के लिए वहीं रुक जाना चाहती थी तो नर्मदेश्वर का उसे रोक लेना अच्छा लगा। वह दवाई देकर बैठ गई।

श्रीधर ने पूछा—यह दवाई आप क्यों पीते हैं पंडितजी।

नर्मदेश्वर ने एक घूंट में दवाई पीकर कहा—पीछे मुझे ऐसे ही कुछ चोट लग गई थी। उसका दर्द अभी तक हड्डियों से नहीं गया। बूढ़ा तो हो चला हूँ, अब जाएगा भी कि नहीं? पर केला की जिद है इसी से दिन में चार बार यह काढ़ा पीना ही पड़ता है।

श्रीधर—पर यह चोट कैसे लग गई?

नर्मदेश्वर—तुम तो भाई सभी कुछ एकदम जान लेना चाहते हो। तुम्हें तो वैसे भी सब कुछ बताना पड़ेगा, पर अभी नहीं। मेरे पास बताने लायक तुम्हारी जैसी बातें तो नहीं, फिर ये कुछ घटनाएं ही रहने दो।

श्रीधर अपनी स्तुति के संकोच से भर गया। नीरजा जो इस बार भी अपने पिता की इस विनम्रता को पसन्द न कर सकी थी श्रीधर के इस संकोच को देखकर ही कुछ कोमल पड़ सकी। नर्मदेश्वर फिर भी मुसकराता रहा। श्रीधर को चुप देख कर बोला—अच्छा तो भाई बताओ न कि तुम्हारे इस 'क्रांति' पथ की अब भावी नीति क्या होगी?

तुम्हारे शब्द पर नर्मदेश्वर का इतना मार्मिक जोर था कि श्रीधर उसके हृदय की विशालता के आगे नत होकर बोला—इस 'क्रांति' का आप मुझे सिर्फ एक सिपाही समझें। फिर जो इसके सम्बन्ध में मैं चाहता हूँ वह इतना ही कि अब आप अपने इस पत्र की नीति का निर्धारण जाति-समाज की दृष्टि से ही नहीं राष्ट्र और देश तथा उन्हें भी विश्व में संस्थापित कर निर्धारण करें।

नर्मदेश्वर ने स्वीकारात्मक प्रसन्नता से कहा—ऐसा ही होगा। श्रीधर सम्पादक के रहने पर अवश्य ही ऐसा होगा।

इतना कह कर नर्मदेश्वर ने अपने आगे मूक और नत श्रीधर को गाढआलिंगन में बांध लिया। नीरजा तक इस दृश्य के प्रभाव से पुलक-कम्पों से मुक्त न रह सकी।

अब नर्मदेश्वर के साथ-साथ श्रीधर का नाम भी सम्पादक रूप में लिखा जाने लगा। विषय-विस्तार के अतिरिक्त 'क्रांति' के आकार-प्रकार में कुछ वृद्धि हुई। विरोधियों का विरोध भी बढ़ता गया। फिर जो विरोध समझ के दोष से होते हैं वे तो तब तक सुधर नहीं पाते जब तक कि समझ का सुधार ही न हो जाये। प्रगति को पाप समझने वाले लोग भूतकाल की अनेक बुराइयों तक से बुरी तरह जकड़े हुये थे और उन्हें वे इसीलिये नहीं छोड़ना चाहते थे क्योंकि उनसे उनके पूर्वज भी कभी मुक्त न हुए थे। इस तरह बुराइयों को कायम रखने के लिए हठ के रूप में एक प्रकार का परम्परावाद जोर पकड़ता गया। श्रीधर की नीति थी कि इस परंपरावाद से साक्षात रूप में न लड़कर इस तरह लड़ा जाय कि जिससे इसके आधार ही भग्न हो जाएँ। नर्मदेश्वर विचारों की क्रांति करके धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न करना चाहता था। पर श्रीधर ने उसे आर्थिक क्रांति के द्वारा सभी प्रकार की क्रान्तियों को प्रोत्साहित करने की सलाह दी। श्रीधर से एक बार नर्मदेश्वर ने कहा—लेकिन भाई श्रीधर तुम्हारी इस आर्थिक क्रांति में एक तो बहुत ही बड़ा दोष है और वह यह कि आज का अर्थवादी युग शनैः शनैः अनैतिक भी होता चला जा-रहा है। उसने जीवन के कतिपय साधनों को साध्य समझकर अपने भावात्मक विकास का तो अवरोध ही कर डाला।

श्रीधर ने उत्तर दिया—हाँ आर्थिक क्रान्ति पर यह लांछन अवश्य लगाया जाता है, पर मैं तो समझता हूँ कि यह निरी भूल है। आज हम मनुष्य को अर्थवादी कहकर मान लेते हैं कि वह केवल अर्थ या धन के लिये ही संघर्ष कर रहा है। पर बात ऐसी नहीं। क्योंकि जीवन का दृश्यमान सुख—साधन किसी भी देश की अर्थनीति पर ही सबसे अधिक निर्भर करता है। इसलिये सबसे पहले उसी के परिष्कार की आवश्यकता पड़ती है। अर्थ की असुविधा हट जाने, सम्पत्ति के विषम वितरण मिट जाने और महलों तथा झोंपड़ियों के, सेठों तथा कङ्गालों के, दान देने वालों और दान लेने वालों के न रहने पर प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से विकास और उन्नति के अवसर मिलने की गुंजाइश हो जाती है, इससे किसी भी एक राष्ट्र का भविष्य अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में पड़ जाने से भय से मुक्त हो जाता है। दलील दी जाती है कि जिन्हें महान बनना होता है वे प्रत्येक परिस्थिति में संघर्ष से बल पाकर महान बनकर ही रहते हैं। इसके अनेक उदाहरण हर देश के इतिहास में मिलते भी हैं। पर मैं इसी बात पर दो तरह से अपनी राय जाहिर करता हूँ। एक तो यही कि योग्य और योग्यताओं के अभाव में उन महान-आत्माओं को जिनसे संघर्ष करना पड़ता है, वे स्वयं इतने योग्य नहीं होते जो कि उनकी महत्ता की कसौटी बन सकें। वे तो केवल अवरोध करते हैं और मैं नहीं जानता कि एक मात्र अंध अवरोध में ही बढ़ते रहना कैसे योग्यता का परिचायक है। पर जब वे ही तथाभूत महान समान योग्यों से विचार संघर्ष में आयेंगे तब सचमुच उनकी महत्ता निखरेगी और विचारवान

विरोधी भी उनके संकल्पों को चरितार्थ करने में सहायक होंगे। दूसरे यह कि यदि जंगलों में पशु सेवित और अरक्षित बनस्पति भी बढ़ सकती है तो नगरों में ही क्यों सेवा-रक्षा के प्रश्न किये जाते हैं इस तरह की दृष्टियों का इसलिये विरोध करना पड़ता है, क्योंकि वे भविष्य को अपनी योग्यता और प्रतिभा-शक्ति का लाभ उठाने देना नहीं चाहतीं। यदि हम किसी सुन्दर व्यवस्था के द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तियों की परम्परा को ही जन्म दे सकें तो क्या बुरा।

श्रीधर की बातें सुन-सुनकर नर्मदेश्वर यही अनुभव करता कि उसके मन की-सी ही बातें उसके सामने आरही हैं। और इस तरह वह बड़ी ही प्रसन्नता और प्रशंसापूर्वक श्रीधर के सिद्धांतों को मान लेता। बातों ही बातों में श्रीधर उसके परिवार का-सा ही व्यक्ति हो गया था। जब बहुत कुछ बातचीत के बाद 'क्रांति' के नीति-परिवर्तन का प्रश्न तय होगया तो दूसरी समस्या आई श्रीधर को 'क्रान्ति' के लिये वहीं बनाये रखने की। इसके लिये तो श्रीधर अवश्य ही प्रस्तुत था और अपनी कुछ अनुपेक्षणीय आवश्यकताओं के कारण साधारण वेतन लेकर भी काम करने के लिये तैयार था। पर वह नर्मदेश्वर के परिवार में रहना नहीं चाहता था। जबकि नर्मदेश्वर से भी अधिक जोर था केला का उसे अपने ही साथ रखने का। श्रीधर ने कहा भी था-आप लोगों के बीच में रहने में मुझे तो खुशी ही होगी, पर मैं जीवन की बहुत-सी बातों में इतना अधिक अनियमित या नियम विहीन हूँ कि मेरा यहाँ रहना आप लोगों के लिये भार हो जायेगा।

केला ने पूछा—जैसे? मैं भी तो जानूँ।

श्रीधर संकोच-पूर्वक बोला—यही कि मेरे सोने-जागने, नहाने-धोने यहाँ तक कि खाने-पीने तक का कोई समय नहीं होता। जब जिस बात के लिये मन करता है तब वही बात कर लेता हूँ। पर गृहस्थी में तो ये सब बातें ठीक से नहीं चल पातीं!

केला—अपने घर भी तो किसी तरह निभाते ही होंगे?

श्रीधर—घर की तो मुझे ठीक से याद भी नहीं। पिताजी तो बचपने में ही गुजर गये थे, मां का भी देहान्त हुए कई बरस हो गये। तब से घर तो जैसे मेरे लिये रहा ही नहीं। अपने कई भाइयों में मैं सबसे छोटा हूँ। वे सब घर-गिरस्ती वाले हैं। कमाते-धमाते हैं और सुख से रहते हैं। बहनें भी जो हैं, अपने-अपने घर की हो चुकीं और अब उस काफी बड़े परिवार में भी मेरी परवाह करने वाला कोई नहीं। मां के स्वर्गवास के बाद से इसी तरह भटकता फिरा हूँ। हिन्दुस्तान के जङ्गल-पहाड़ों, शहर-बस्तियों में काफी अर्से और दूर-दूर तक घूमा हूँ। इस तरह कुछ जङ्गलीपन भी बढ़ चला है।

श्रीधर ने आखिरी बात हँसते हुए कही थी। पर केला उसकी इस जीवन कथा को इतने कष्टपूर्वक सुन रही थी कि हँसने के अवसर पर भी बिना आँसुओं का रोना रो-पड़ी। श्रीधर ने उसकी वेदना को समझ कर सरलता-पूर्वक हँसते हुए ही कहा—वाहजी, तुम तो रोया चाहती हो। यह भी खूब। मेरे लिए तो रोना ही बेकार है। मुझे तो खुद याद नहीं कि मैं कब रोया हूँ। मा को खोकर भी तो रो न पाया। रोना जरूर चाहता था, पर रो न सका। तब मेरे बहुत से छोटे-छोटे अनाथ साथी थे जो कि मेरे ऊपर ही निर्भर करते थे। जब मैंने देखा कि वे

भी तो मा-बाप के बिना असहाय और अनाथ हैं और फिर भी मेरे साथ हँस-बोल सकते हैं तब मैं ही क्यों रो पड़ूं। बस यही सोचकर मैं रोया नहीं। बताओ न मा, कि मैं कितना कठोर पत्थर हूँ। फिर ऐसे पत्थर के लिये भी रोना, हुं,बड़ी बेकार की-सी बात है।

नर्मदेश्वर जो अभी तक ये सब बातें चुपचाप ही सुन रहा था, गंभीर होकर बोला—तब तो भाई श्रीधर, हमने आज तक तुम्हारे बारे में कुछ जाना ही नहीं और जानने की कोशिश भी नहीं की। मुझे बताओगे कि तुमने अपनी पढ़ाई कैसे पूरी की और ये अनाथ बच्चे कौन हैं!

श्रीधर को अब अपने बारे में अधिक बोलते हुए संकोच होने लगा था। कहा—जाने भी दीजिये, वे कोई खास बातें नहीं। मेरे जैसे तो आज के दरिद्र गुलाम भारत में एक नहीं लाखों होंगे। फिर करियेगा ही क्या जानकर।

नर्मदेश्वर—उन लाखों को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता इसी से उनके बारे में जानने से विवश हूँ। पर भाई तुम अब इतने पराये नहीं रह गये कि तुम्हारे बारे में जानना भी लाखों में एक गिनती और बढ़ाना भर हो। हम तुम्हारे बारे में अधिक से अधिक जानकर तुम्हारे उतने ही निकट आ सकेंगे।

श्रीधर ने उन सब की वाणी का आग्रह सुना और आँखों का आग्रह देखा। वह कुछ विवश-सा होकर कहने लगा—तो आप सुनेंगे ही। दसवां दर्जा तो घर रहते-रहते कब कैसे पास कर लिया, पता भी न चला। पर जब इसके बाद भाइयों ने असमर्थता और अनिच्छा प्रकट की तो मुझे अपने भविष्य के

लिये अपना आश्रय भी छोड़ देना पड़ा। पर बनारस में ही रहा, मां के जोर देने पर भी भाइयों की रोटियाँ खाकर अपनी पढ़ाई पूरी करना न चाहता था, जबकि वे मुझे किसी काम-धन्धे में लगाकर मेरी कमाई का लाभ उठाना चाहते थे। मजबूर होकर घर छोड़ा और फिर तो मुसीबतें और कठिनाइयाँ दिलचस्प कहानियों की तरह आईं। बच्चों को पढ़ाया, भूखा रहा, इधर-उधर मेहनत मजदूरी की और इस तरह बी० ए० तो हो ही गया। बी० ए० के बाद तो मुझे सुबह-शाम के लिये ऐसे काम मिल गये थे, जिससे एम० ए० में उतनी कठिनाइयाँ न हुईं, पर अब मेरी और ढंग की जिम्मेदारियाँ बढ़ गईं, जिससे पैसे की समस्या तो बनी ही रही।

नर्मदेश्वर—पर भाई तुम्हें कुछ न कुछ वजीफा भी तो मिलता ही रहा होगा।

श्रीधर—सो तो अव्वल आने वालों को मिलता है। मैं तो सिर्फ पास होना जानता था और पास भी इसलिए हो जाता था कि कम से कम एक महीना तो पूरा पढ़ने के लिए निकाल ही लेता था। फीस पुस्तकों और खाने-पहनने, रहने के लिए पैसों की फिक्र करते-करते पढ़ने का मौका भी कब मिलता था। वैसे भी मुझे कोर्स की किताबों में कभी खास दिलचस्पी न रही। फिर भी पढ़ते और आगे बढ़ते रहने का मोह जरूर था। एम० ए० के बाद यह मोह भी न रहा।

श्रीधर चुप हो गया। नर्मदेश्वर और केला सुनते-सुनते कुछ भर-से उठे थे। पर नीरजा सदा यही दिखाने की कोशिश

करती थी कि मुझे श्रीधर की किसी बात में दिलचस्पी नहीं। जाने हृदय की कौन सी प्रेरणा से पूछ ही तो बैठी—पर आपने उन अनाथ बच्चों के बारे में तो कुछ बताया ही नहीं।

श्रीधर ने हँस कर कहा—वाह नीरजा बहन! आपके हाथों में खुली पुस्तक देखकर मैं तो समझ रहा था कि मेरी बातें मा और पंडितजी के सिवाय कोई और सुन ही नहीं रहा! शायद आपको मेरी कहानी पसंद आई!

श्रीधर का मजाक आवश्यकता से अधिक कठोर हो चला था। कह कर उसने भी अनुभव किया था, और नीरजा, वह तो सिर्फ अपनी वेदना को छिपाने में व्यस्त थी। आज भी यदि वह अन्य दिनों की तरह चिढ और उपेक्षा दिखा सकती तो श्रीधर को तसल्ली होती। पर ऐसा कुछ न हुआ। तब उसने बोलते ही रहना पसन्द किया—संयोग था कि मुझे एक बार एक इतना नन्हा और कोमल बच्चा मिला जिसे मां की सरस और प्यार भरी गोद, छाती के दूध और पूरी-पूरी देख भाल की सख्त जरूरत थी। जाने कौन निर्मम मां उसे एक चिथड़े में लपेट कर सड़क पर फेंक गई थी। उस बच्चे को जिन्दा रहना था और मेरी उलझनों में एक उलझन और बढ़नी थी जिससे वह मुझे ही मिला। जिस मुहल्ले में मैं रहता था उसमें प्रायः छोटी जात के ही लोग रहते हैं। अपनी पड़ोसिन बुढ़िया इमरती की सहायता से मैंने उस बच्चे को पाला। मैं बुढ़िया को कुछ रुपये हर मास देता रहता था जिससे वह मेरा यह काम खुशी-खुशी करती रही। फिर जब बच्चा इतना बड़ा हो गया कि उसे बुढ़िया इमरती की जरूरत न रही, तो

मैं खुद ही उसके सब काम अधिक से अधिक करने लगा। यह सब बी० ए० की बात है और आज तो वह बच्चा कोई सात आठ बरस का हो गया है। तभी से मुझे बच्चों का कुछ ऐसा मोह हुआ कि मैंने जाने कहां-कहां से कई और छोटे बड़े अनाथ बच्चों को भी ढूंढ निकाला। मैं उन सब को अपने ही पास रखता और उनकी हर जरूरत को पूरा करने की कोशिश भी करता। मेरी इच्छा थी और आज भी है कि वे सब लोग पढ़ लिखकर अच्छे आदमी साबित हों और अपने जीवन से सबक लेकर अन्य दुःखी जीवनों को सम्हालने और सहायता देने की कोशिश करें।

नर्मदेश्वर—तो क्या अभी तक वे अनाथ बच्चे तुम पर निर्भर हैं।

श्रीधर—मैं अपने ऊपर ही कैसे कहूँ। उनमें से एक दो तो इतने बड़े हो गये हैं कि इस काम में वे मेरी सहायता भी करते हैं। वे मैट्रिक और एफ० ए० में पढ़ते भी हैं।

केला—और उनकी पढ़ाई का खर्च।

श्रीधर—सब चलता है। मैंने तो यह अनुभव किया है कि जरूरतें कभी रुकती नहीं। जिस तरह स्वयं जरूरतें एक स्वाभाविकता हैं उसी तरह उनकी पूर्ति भी। यही मेरा विश्वास है जो मेरे लिए सही भी साबित हो रहा है।

केला—तो तुमने शादी भी इसी फेर में नहीं की। मैं आज समझी। उस दिन की तुम्हारी बड़ी-बड़ी बातें जो कुछ न बता सकीं वह आज की इन सच्ची और सीधी-सादी बातों ने बतला दिया!

श्रीधर ने वातावरण की गम्भीरता कम करते हुए हंस कर कहा—मा फिर वही बात ! अच्छा यह तो बताओ कि शादी किस लिए की जाती है। बिना शादी के ही जब मेरे इतने बच्चे हैं तो और फिर जिम्मेदारी कैसे बढ़ाऊं।

केला—शायद तू यही कहकर अपने आपको बहका लेता है। पर बेटा, मैंने तुझ से अधिक जीवन देखा है, इसी से जानती हूँ कि शादी सिर्फ बच्चों के लिये ही नहीं की जाती। यह न केवल एक उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य है बल्कि एक अनिवार्य आवश्यकता भी है। तुम कितना भी निषेद करो पर मैं मान नहीं सकती। और तुम्हारी यह दलील भी कैसी अजीब है कि पत्नी एक बाधा है। तुम सारे देश की जिम्मेदारियाँ अपने ऊपर ले सकते हो, पर खुद अपनी बीबी की नहीं। इससे तो मुझे तुम गैर जिम्मेदार ही मालूम देते हो। सोचते होंगे कि देश राष्ट्र की जिम्मेदारियां तो कभी भी टाली जा सकती है पर बीबी बच्चों की मरते दम तक नहीं। इसी से तुम्हारे जैसे लोग बंधना नहीं चाहते। दूर-दूर से ऊपर-ऊपर की जिम्मेदारियों को दिखाकर वाह वाही भर लूटना चाहते हैं। लोगों की ही तारीफें सुनने के लिये तुम्हारे जैसे लोग अपनी हत्या तक कर डालते हैं।

केला की वाणी में क्षोभ था, पर श्रीधर हंस पड़ा। पेट भर कर हंस लेने पर बोला—मा, तुम्हारी जैसी दलील तो आज पहली ही बार सुनी। खूब, तुमने तो मुंह ही बन्द कर दिया। पर मां मैं तो प्रायः यही सोचा करता हूँ कि अगर व्यक्ति को बिराट हितों का सम्पादन करना है तो उसे अपने निजी

स्वार्थों को पैदा होने के कम से कम मौके देने चाहियें। शादी भी एक ऐसा ही निजी स्वार्थ है जो व्यक्ति को अपनी उस परिधि से बाहर कुछ करने का मौका जल्दी से नहीं देता। न प्रेरणा मिलती है और न फुर्सत ही।

नर्मदेश्वर—ना भाई यहां तो मेरा भी विरोध है। सहधर्मिणी यदि योग्य मिलजाए तो व्यक्ति के स्वप्न भी उसकी सहायता से सत्य हो सकते हैं। यहीं तुम यह भी तो मानोगे कि सभी बड़े आदमी इसी तरह अविवाहित रह कर दुनियां के लिये इतना नहीं कर गए हैं।

श्रीधर—आपकी पहली बात से मेरा खास विरोध नहीं। डर इतनाहीं है कि चुनाव गलत न हो जाए। और रहा बड़े आदमियों का उदाहरण। इसके बारे में तो मैं यही कहूँगा कि हमें उनके जीवन को अच्छी तरह समझते हुए इस बात पर भी पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए कि वे विवाह के पश्चात् अपने वैवाहिक कर्त्तव्यों का निर्वाह भी कितना अधिक कर सके? मैं तो समझता हूँ कि बहुत कम ऐसे भाग्यशाली रहे होंगे जिनका वैवाहिक जीवन भी उतना ही सुखद और सफल रहा हो जितना कि सामाजिक या राष्ट्रीय!

केला—बेटा, सभी समाधान इसी तरह कोरी बुद्धि से कर लिए जा सकते तो जीवन के प्राकृतिक क्रम और उपन्यास के बौद्धिक या कि भावात्मक क्रम में कोई अन्तर ही न रह जाता? अभी तुम शायद मेरी बातें न समझो; पर समय आने पर आपही समझने लगोगे।

यह चर्चा उस दिन यहीं समाप्त होगई। केला वहाँ से उठ-

कर घर के काम-धाम में लग गईं और नीरजा भी अनमनी-सी उसी के पीछे-पीछे बाहर होली।

फिर धीरे-धीरे अपनी चाल से दिन बीता। प्राची अरुण को अङ्क में ले पुलकित होने लगी! प्राची में संध्या का आँचल उड़ता-उड़ता विश्व-भर पर छाने लगा! नीरजा उदास थी! उसे गुम-सुम देखकर केला भी कुछ अस्त-व्यस्त-सी हो उठी! केला ने उससे उसकी उदासी का कारण भी पूछा! पर क्या बताए नीरजा! केला की ओर से दृष्टि हटाकर शून्य में देखती हुई वह शून्य ही बनी रही!

इधर सुशील बहुत दिनों से नहीं आरहा था! केला को सहसा उसका ध्यान हो आया। उसका मन जाने क्यों नीरजा की उदासीनता का सम्बन्ध चुपके-चुपके सुशील से जोड़ने लगा? उसने पुनः पूछा—बेटी, सुशील आजकल नहीं आता! तुझे उसकी कुछ खबर है कि नहीं!

नीरजा ने अन्यमनस्कता दिखाते हुये उत्तर दिया—मैं क्या जानूँ मा! हर कोई मुझसे पूछ कर ही तो कुछ नहीं किया करता!

केला ने इस पर कुछ विशेष कहने की आवश्यकता न समझी। वह उठकर अपने कमरे के भीतर गई और कपड़े बदलकर नीरजा के पास आकर बोली—बेटी जरा मैं भारती मा से ही मिल आऊँ! वे हमारे यहाँ एक बार आही चुकी हैं? मैं न जाऊँगी तो जाने क्या सोचेंगी।

नीरजा को इस बात से आश्चर्य ही हुआ। वह कभी किसी के यहाँ आया-जाया नहीं करती थी। उसके आश्चर्य को समझते

हुए भी केला ने कहा—मुझे लौटने में देर हो जाए तो बेटी, खाना-वाना तैयार करके सबको खिला भी देना ! वैसे समय से ही लौटने की कोशिश करूँगी !

केला से भारती मा बड़ी आत्मीयता के साथ मिली ? इधर-उधर की सामान्य चर्चा के उपरान्त केला ने पूछा—बहन बहुत दिनों से सुशील को नहीं देखा ! आजकल जाने क्यों इधर भी नहीं आता। अच्छा तो है।

भारती—वैसे तो अच्छा ही है, पर जाने क्यों कुछ दिनों से बराबर उदास रहता है। पूछती हूँ तो चुप रहता है, जोर देती हूँ तो झल्ला उठता है। ऐसा तो वह कभी न था !

केला का मन नीरजा और सुशील के इस स्वभाव परिवर्त्तन का रहस्य दोनों को साथ-साथ रखकर खोजने लगा ! उसे यही लगता कि आजकल अवश्य ही इन दोनों में मनमुटाव होगया है ! पर भारती से वैसा कुछ न कहकर पूछा—अब रात तो होने को आई ! घर पर कब तक लौट आता है।

भारती आजकल तो वह घर पर ही नहीं है। पंजाब के उसके कुछ साथी आए थे। यू० पी० घूमने निकले हैं उसे भी हठ करके अपने साथ-साथ लेते गए। अभी तो देहरादून, मंसूरी गए हैं, फिर और जगह भी जाएँगे !

केला—तुम भी कैसी हो बहन जो उसे इस मौसम में वहाँ जाने दिया ! गंगा कितनी बढ़चली हैं। जरूर ही पहाड़ों पर जोर-शोर की बारिश हो रही होगी ! वहाँ ठंड में भीगकर और कहीं जाड़ा-जुखाम न करले !

भारती ने उसकी इस ममता पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए

कहा—लड़के भी भला ऐसी बातों से मानते हैं ! मुसीबत के नाम से थोड़े ही उनके इरादे बदले जा सकते हैं। मैं ने भी सोचा कि आजकल अनमना होरहा है। बाहर घूम आएगा तो जी भी बदल जाएगा।

केला—अबतो बहन, ऐसी व्यवस्था करदो जिससे उसका मन घर पर ही बहलता रहे। बीबी आकर·····

भारती—बीबी··राम का नाम लो ! पहले तो शादी के नाम पर मजाक भी कर लेता था। पर आजकल तो लड़ने लगता है !

केला—और तुम मा होकर भी उसके इस लड़ने से डर जाती हो !

केला की बातों ने भारती के मन को फिर से मनोहर आशाओं से भर दिया ! फिर भी उसका मन शंका करता रहा कि कहीं वह सुशील को उस दृष्टि से न देखती हो, जिससे मैं नीरजा को देखती हूँ ! फिर दोनों में ब्राह्मपद होते हुए भी जाति का सामान्य अन्तर था ! इसीसे इतनी आशा बतलाकर भी वह अपनी कामना मुक्त होकर प्रकट न कर सकी। बोली—संयोग बली है बहन ! जब ईश्वर की इच्छा होगी तो सब काम बन जाएंगे !

केला ने प्रसंग बदल कर पूछा – सुशील लौट कब रहा है।

भारती—अभी तो जाने कितने दिन लगेंगे ! आजही मंसूरी से चिट्ठी आई है। एक-दो रोज में लखनऊ, बनारस की तरफ जाने वाले हैं !

इसके उपरांत केला कुछ और समय तक वहाँ बैठी और फिर विदा लेकर चली आई ! घर पर सब लोग भोजन के लिए

उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे! रात्रि के आठ बज चुके थे। नर्मदेश्वर ने उसके आने पर पूछा—भारती बहन के यहाँ गई थीं!

केला ने साश्चर्य पूछा—आपने कैसे जाना!

नर्मदेश्वर-वाह, यह भी खूब? तुम घर में ही घरके आदमी से कहकर जाओ और तब भी किसी को पता न चले!

केला—ओ हाँ याद आया! भूल गई थी! नीरू से ही तो कहकर गई थी! क्यों बेटी सबने भोजन कर लिया!

नीरजा—नहीं मा! तुम्हारा ही इन्तजार होरहा था!

नर्मदेश्वर—अच्छा भारती बहन तो प्रसन्न हैं? सुशील को भी बहुत दिनों से नहीं देखा! कैसा है।

केला—बहन तो ठीक हैं, पर सुशील आजकल यहाँ नहीं। मंसूरी गया हुआ है!

नर्मदेश्वर 'मंसूरी' के नाम से चौंक उठा! पूछा—तुमने यही कहा न कि सुशील मंसूरी गया है।

केला—हाँ? पर इसमें चौंकने की बात क्या!

नर्मदेश्वर—बात ऐसी ही है! लो भाई श्रीधर मैंने तुम्हारे "प्रवासी" जी को पकड़ लिया! मेरा दिमाग भी कितना कमजोर होगया है कि अपने सुशील के अक्षर तक जल्दी से न पहचान सका! पर अब मैं दावे से कह सकता हूँ कि सुशील के सिवाय यह प्रवासी और कोई हो ही नहीं सकता। देखो न केला, यह सुशील मुझे ठगने चला था! पर कैसा पकड़ा?

केला ने हँसकर कहा—क्या पकड़ा! अनुमान ही तो लगाए जारहे हैं।

नर्मदेश्वर—नहीं, अब अनुमान नहीं। मैं कल्पना भी न कर पारहा था कि सुशील बाबू आजकल "प्रवासी" बन रहे हैं। इसी से हजरत इतनी देर के लिए धोखा देगए।

श्रीधर ने पूछा—ये सुशील बाबू हैं कौन पंडितजी!

नर्मदेश्वर—अजी हमारे लिए तो वह सिर्फ सुशील है! बाबू तो उसे इस नीर ने बना रखा है! बड़े मधुर स्वभाव और प्रगतिशील विचारों का युवक है। इस बस्ती में बस वही एक ग्रेजुएट भी रहा!

सुशील नीरजा को बिना बताए कहीं बाहर भी चला जा सकता है, इसकी कल्पना नीरजा का मान भरा मन कभी नहीं कर सकता था। इसीसे जब उसने यह समाचार सुना तो उसका मान पीड़ा के आँसुओं में रो-पड़ा, पर उन आँसुओं को नीरजा के आर्तमन के अतिरिक्त किसी ने न जाना! सुशील की चर्चा अब और अधिक न बढ़े इसी से प्रकरण बदलकर बोली—मा भूख लगी है? अब तुम्हीं जल्दी से खिलादो!

श्रीधर ने सरल स्वभाव से कहा—मा मुझे तो अभी नहीं लगी!

नर्मदेश्वर ने हँस कर कहा—खूब! जान पड़ता है कि जनाब घर भर को अपने ही जैसा फाकेमस्त समझते हैं! तुम्हें तो अब भूख लगेगी कल दुपहर को, और वह भी किसी के याद दिलाने पर! हाँ तो केला, हमें तो भोजन कराओ और इन हजरत का दुग्धाहार भी भिजवादो!

श्रीधर—दूध! नहीं दूध इतनी जल्दी नहीं! रात को सोते वक्त देखा जाएगा!

केला—बेटा, क्यों इस तरह भूखे रह-रहकर तुम सुखा रहे हो। जब दो वक्त मिल सकता है, तब खाने में क्या एतराज !

श्रीधर—इस भूख को अधिक रिश्वतें न दो मा! बड़ी मुश्किलों से साधा है। कहीं इसी तरह तुम्हारे टुकड़ों से यह मान गई तो मुझे तुम्हारे घर की चौखट का कुत्ता बनकर पड़े रहना पड़ेगा। मेरे नाम की तो दो रोटियाँ हैं जो शायद सब जगह मिल सकती हैं।

नर्मदेश्वर—देखो श्रीधर तुम बहुत बेकार की बातें किया करते हो ? दुनिया के बारे में तुम्हारी बातें मानली जा सकती हैं पर तुम्हारे अपने बारे में नहीं ! हम खाया करें और तुम मुँह ताका करो, किताबों में आखें गढ़ाया करो ? तुम इस चौखट को छोड़ने की सोचते भी क्यों हो ? अब तो 'क्रांति' और 'क्रांति-परिवार' सभी-कुछ तो तुम्हारा हो चुका है। बिना 'क्रांति' को सफल किये तुम अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो भी कैसे सकते हो।

श्रीधर—किसी भी 'क्रांति' की सफलता के लिए कोई भी जीवन बहुत छोटा है। मैं यदि इसे सफल न भी बना सका तो समर्थ हाथों में तो अवश्य सौंप जाऊँगा।

नर्मदेश्वर—पर इनसे योग्य हाथ कहाँ मिलेंगे ?

श्रीधर—सो सब समय के लिये छोड़ दीजिए ! मा, अब तुम जल्दी करो ! नीरजा बहन भड़क जाने वाली हैं। इनकी भूख हमारी बातों से शांत नहीं हो सकती।

केला—अच्छा बेटा तुम्हारे लिए एक पराँवठा तो ले आऊँ ?

आज खाना नीर ने बनाया है। इसे आलू के परांवठों का शौक है। जरूर वे ही बनाए होंगे! क्यों न बेटी नीर!

नीरजा ने विमन होकर कहा—आप इनके पीछे क्यों पड़ी हैं मा! जब एक ही बार खाते हैं तो कहना भी क्या? मेरे बनाए खाने में तो कोई खास बात पैदा नहीं हो जाती!

श्रीधर हँसकर बोला—लो मा, सबूत भी मिल गया! मैंने कहा न था कि नीरजा बहन......

अपना नाम आते ही नीरजा धैर्य खो उठी! क्रोध से अभिभूत-सी बात काटकर बोल उठी—आप मेरी बात इस तरह क्यों पकड़ लिया करते हैं? आपके न खाने पर मैं तो जोर नहीं देती! फिर आप......

इससे आगे वह स्वयं कुछ न कह सकी। आवेश से गला फँस गया। सब चकित थे! किसी को नीरजा का व्यवहार अच्छा न लगा। फिर भी बिगड़ी बात बनाने का श्रम करता हुआ श्रीधर बोला—बहन आप भी किस पर बिगड़ीं! बिगड़ कर व्यर्थ ही मेरा महत्व बढ़ाया। मैं तो स्वयं को किसी की भी प्रसन्नता या प्रेम के परे समझता आया हूँ। दिन भर मूर्खता की ही बातें तो करता हूँ। सबसे करता हूँ। आपसे भी करली मेरे मजाक में सिर्फ मजाक की ही सचाई होती है। आपको भ्रम होगया कि मैंने आपको अधिक खाने वाली समझ लिया! अरे आप जितना चार बार में खाती होंगी उतना तो मैं अकेला एक जगह बैठकर जलपान की तरह चढ़ा जाता हूँ! अच्छा तो अब आप सब लोग भोजन करें! मैं उधर चलकर कुछ काम ही किये लेता हूँ!

पर श्रीधर कहकर भी न जा सका। केला उदास मन से वहाँ से चली गई थी! नीरजा मन ही मन पछता रही थी! अब वह एकान्त में जाकर दिल खोलकर रो लेना चाहती थी! पर जैसे ही उठना चाहा, नर्मदेश्वर ने रोककर पूछा—अरे, अब तुम कहाँ चलीं बेटी! खाना तो यहीं आएगा!

नीरजा बैठ तो गई पर रोना न थाम सकी! मोती की लड़ियों से आँसू टूट-टूट कर गिरने लगे? उन्हें देखकर श्रीधर सचमुच ही आहत हुआ। विगलित स्वर में बोला—मेरी मूर्खता के लिए आप रो रही हैं। जान पड़ता है अभी तक आपने मुझे माफ नहीं किया। आपके इस तरह रोने से तो मेरा अनुमान पक्का हो जाएगा!

इतना कहकर श्रीधर वहाँ से चला ही गया। उसके चले जाने पर नर्मदेश्वर ने कहा—देखो बेटी नीर, श्रीधर एक बहुत ही अच्छा लड़का है। उसमें यदि कोई बुराई हो सकती है तो यही कि कभी मन में कुछ नहीं रखता और जो कहता है अच्छे ही भाव से! तुम उसे व्यर्थ ही ग़लत समझने की कोशिश मत करो।

नीरजा ने चुप रहकर ही मानों अपनी भूल स्वीकार करली!

❀ ❀ ❀

अगले दिन नर्मदेश्वर ने श्रीधर से पूछा—तो भाई सुशील के लेख पर क्या लिखने का निश्चय किया!

नीरजा भी वहीं थी! श्रीधर ने पूछा—आपको उसका प्रतिवाद प्रिय होगा!

नर्मदेश्वर—तुम्हीं बताओ अनुचित तो नहीं?

श्रीधर-मेरे अपने विचार से तो सर्वप्रकार उचित है। विचारों के भेद प्रकट करने और उनके विमर्श में तो कभी हिचकना ही नहीं चाहिए। यहाँ प्रश्न सुशील बाबू का नहीं अपितु 'क्रांति' के उस स्तम्भ का है जिसके अन्तर्गत वह लेख प्रकाशित हुआ। जनता के समक्ष विषय की एक दृष्टि तो रख चुके आप अब दूसरी भी प्रस्तुत करना हमारा कर्तव्य ही है।

नर्मदेश्वर-ठीक है भाई! मैंने मान लिया! तुम क्या कहती हो नीरा!

नीरजा—श्रीधर भाई, आप क्या लिखेंगे। कुछ सोचा!

श्रीधर—यह सोचने की बात नहीं! सुशील बाबू की शंका निराधार नहीं। इसलिए हम तर्क न करके एक दूसरी दृष्टि प्रस्तुत करेंगे!

नीरजा—वह क्या?

श्रीधर ने उत्साहित होकर कहा—यही कि हम मनुष्य की बौद्धिकता में विश्वास रखते हैं और उसे जीवों में परम बौद्धिक भी मानते हैं। ऐसा मनुष्य जाग्रत विवेक से जो कुछ भी करेगा वह अनुचित न होगा। आज हम आर्थिक क्रान्ति किसी दुरभि-संधि से नहीं बल्कि विशाल जन-समुदाय के हित की दृष्टि से ही चाहते हैं। इस क्रांति में कोई लाभ नहीं। मनुष्य को स्वभावतः स्वार्थी मानने वाले उसके परमार्थ के कार्यों में भी उसी की शंका पाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का वर्ग विशेषरूप से इसका समर्थक भी है। पर आज के क्रांतिकारी विचारक मनुष्य को अनिवार्यतः बौद्धिक मानते हैं और इसीलिए नैतिकता सम्पन्न भी। अन्तर को ऐसे आदर्श बौद्धिकजीव के बुद्धिमत्तों से भयभीत रहना उचित नहीं!

नर्मदेश्वर ने प्रसन्न होकर कहा तो तुम अवश्य ही दुनिया के सामने एक नई दृष्टि रखोगे! आज जीव जगत् इसीलिए अधिक मस्त हैं क्योंकि 'सर्व' का अर्थ 'स्व' की परिधि में सिमटा जारहा है। किन्तु जब हम व्यक्ति की बौद्धिकता को आदर्श मान लेंगे तो अवश्य ही नैतिकता को बल मिलेगा।

नीरजा के मन में श्रीधर की एक नई आकृति बन रही थी। वह कठोर होकर भी कोमल थी, असुन्दर होकर भी रमणीय थी और सीमित होकर भी थी विशाल। सुशील जो सहज ही कोमल और सहज ही सुन्दर था आज उसे इतना विशाल न लगा। उसका मन कह रहा था कि सुशील का यह लेख विचार प्रसार के लिए नहीं अपितु श्रीधर के विरोध के लिए हो। "पर क्यों?" इस बात की कोई साक्षी न थी— फिर भी उसका विश्वास था! "आः अपने को ही बेवकूफ समझने वाले निरीह श्रीधर का विरोध!" श्रीधर के प्रति सहृदय हो उठी नीरजा को सुशील भी छोटा जान पड़ने लगा।

नर्मदेश्वर कुछ देर तक चुप रह कर पुनः बोला—हमारा सुशील बहुत चंचल लड़का है। तुम्हारे विचार जान कर प्रसन्न ही होगा। मिलकर तो और भी अधिक! ठहरो उसके फोटो से तो तुम्हारा परिचय करा ही दूँ! 'क्रांति' में छापना चाहता था, पर छपा नहीं!

नर्मदेश्वर ने उठकर एक फाइल निकाली और सुशील का फोटो निकाल कर श्रीधर के हाथ में दे दिया। श्रीधर उसे देखते ही साश्चार्य बोल उठा—अरे तब तो मैं सुशील बाबू से मिल भी चुका हूँ!

नर्मदेश्वर—कब ?

श्रीधर-यहीं, 'क्रांति' कार्यालय में ? आपको पूछने आए थे। अपना तो परिचय न दिया, पर मेरा परिचय अवश्य लेते गए थे।

नर्मदेश्वर हँसते हुए बोला—संकोची है, इसीसे कुछ न बताया होगा !

श्रीधर—पर मेरे बारे में पूछने में तो कोई कसर नहीं छोड़ी। अब मिलेंगे तो खूब दबाऊँगा। भला मुझसे गैर बने रहने की क्या जरूरत थी !

नर्मदेश्वर मुक्त स्वर में अट्टहास करने लगा। पर नीरजा सोचती रही—उस दिन सुशील कार्यालय पिताजी से नहीं श्रीधर से ही मिलने गया था ! पर क्यों ?

इस "क्यों" का भी उत्तर उसके पास न था। संदेह बना ही रहा !

पर संदेह रूप था ! नीरजा की दीर्घकालीन उपेक्षा के बाद भी जब सुशील का मन न माना तो वह उससे मिलने चल पड़ा ! पैर उसके नीरजा के घर की ओर पड़ रहे थे और आहत-पौरुष अभिमान के कोड़े लगा लगाकर मन के घोड़े को उस दिशा से विमुख कर देने के प्रयत्न में था ! इसी दुविधा में नीरजा का घर भी आ गया ? अब उसके खुले दरवाजे पर से बिना मिले लौट पड़ना उसके लिए कठिन था ! नीरजा से मिलने की इच्छा से जब वह आँगन में पहुँचा तो घर के नौकर को छोड़ कर और किसी को वहाँ न पाया। उसने साश्चर्य पूछा—सब लोग कहाँ गए कालू !

कालू—श्रीधर बाबू को घुमाने हरद्वार ले गए हैं !

सुशील—कौन हैं ये श्रीधर !

कालू—अपनी 'क्रांति' के नए सम्पादक ! तुम्हारी ही उमर के होंगे बाबू। पर हैं बड़े विद्वान् ! सब कोई उनकी तारीफ ही तारीफ किया करता है ।

तब सुशील की कमजोरी ने धीरे से उसके कान में कहा—तभी तो नीरजा को उसकी परवाह नहीं !

और इसके बाद वह उस श्रीधर से मिलने 'क्रांति'-कार्यालय जा ही तो पहुँचा था !

५।

जिस समय की यह बात है उस समय देश एक बड़े भारी संकट से गुजर रहा था। अन्तरिम-सरकार की स्थापना हो चुकी थी और अब स्वराज्य का घोषित दिन भी अधिक दूर न था। १५ अगस्थ १९४७ का हर कोई बेकली से इन्तजार कर रहा था। यह निश्चिय होते हुए भी कि १४ अगस्त की रात्रि के बारह बजे के बाद जो पहला क्षण आएगा उसी में सत्ता-हस्तान्तरित करदी जाएगी, अपढ़ और भोली जनता के मन में स्वराज्य के प्रति सन्देह था। हर कोई सोचता कि 'भला कहीं इसी तरह कोई अपनी हुकूमत छोड़ देता है। राज्य दे डालता है। वह भी हिन्दुस्तान का जैसा बड़ा राज्य।' पढ़े-लिखे जन भी जिनमें राजनीतिक चेतना का अभाव था अथवा विश्व के महत्वपूर्ण परिवर्तनों और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को समझ न पाते थे, संदिग्ध भाव से १५ अगस्त के रहस्यमय दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रायः लोगों को यह कहते सुना जाता कि 'अंग्रेज इतने बुद्धू नहीं ? ऐन वक्त

पर ऐसी चालाकी खेलेंगे कि सारे के सारे नेता फिर से जेल के सीखचों में बंद नजर आयेंगे ?'

इसके विपरीत एक ऐसा आशावादी दल भी था जो पूरे उत्साह में भर कर कहता—इस बार सरदार पटेल ने फैसला कर लिया है और पण्डित नेहरू ने भी उनकी बात मान ली है कि अगर वायसराय और दूसरे गवर्नरों ने अन्तरिम—सरकार के कामों में अड़चन डाली तो वे उन सभी वायसराय-गवर्नरों को गिरफ्तार कर पूरी-पूरी हुकूमत अपने हाथों में ले लेंगे।

समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण आज चिल्ला-चिल्ला कर कहते—हिन्दू-मुसलमानो तुम एक हो जाओ ? यह शर्म की बात है कि आज हिन्दुओं के मुहल्लों में मुसलमान जाते डरते हैं और मुसलमानों के मुहल्लों में हिन्दू जब कि अंग्रेज छाती निकालकर दोनों के मुहल्लों में आता जाता है। आपस की लड़ाई छोड़ कर तुम दोनों मिलकर आजादी के लिए क्रांति कर दो। क्रांति की आग हिन्दुस्तान के सात लाख गाँवों में फैल जाए। हिन्दुस्तान में मौजूद साढ़े तीन लाख अंग्रेज उसे दबाने की कोशिश करें भी तो तुम्हीं बताओ कि हर गाँव के हिसाब से हर अंग्रेज के कितने टुकड़े करने पड़ेंगे !

और तब कायरों तक की बातों में बिजलियाँ कड़कने लगतीं।

आपस की लड़ाइ हमारे लिए शर्म की बात थी। मगर अंग्रेज इतना होशियार था कि अपनी जान अच्छी तरह बचाना जानता था। पाकिस्तान के मान लिए जाने पर ही आजादी देने की घोषणा की गई। कांग्रेस सोचती थी कि

पाकिस्तान के बन जाने पर नफरत का विचार दूर हो जाएगा। मुसलमान अपनी मनचीती हो जाने पर संतोष प्रकट करेंगे और हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान पड़ोसी राष्ट्रों की तरह एक दूसरे के सुख-दुःख को समझते हुए खुश-हाल रहेंगे। देश की आबादी का एक काफी बड़ा हिस्सा जब अपनी व्यवस्था खुद अलग से करना चाहता हो तो यह उचित भी नहीं समझा गया कि उस पर जबरदस्ती अनचाही हुकूमत लादी जाए! जनता अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र समझी गई। यही पाकिस्तान के मान लेने का आधार था।

पर यह वही जनता थी जो अंग्रेजों के जुल्मों को एक दिन के लिए भी न भूलकर भी उनकी चालाकियों की गिरफ्त में आती जा रही थी। बंगाल का अकाल इतना पुराना न पड़ गया था कि भुलाया जा सकता। न सूखा पड़ा, न पाला। न कहीं बाढ़ ही आई न और कुछ। फिर भी बंगाल की हरी-भरी भूमि बञ्जर हो गई। धान के खेत आग पैदा करने लगे। अनाज के नाम पर पत्थर बरसने लगे और चंद दिनों में ही तीस लाख मासूम जिन्दगियाँ मौत में बदल गईं, बिना किसी जलजले और कहर के फना हो गईं। न चेचक फैली न महामारी, फिर भी जिन्दे आदमियों की बतियाँ या तो कब्रों का शहर हो गई या श्मशान जहाँ कि चिताएँ ठंडी हो ही न पातीं। एक ओर भूखा आदमी दम तोड़ रहा था दूसरी ओर हजारों लाखों टन धान फौजी स्टोरों में सड़ाया जा रहा था और गोदामों की जगह न रहने पर दलदलों में भरा जा रहा था। बस जो बंद घरों में न मर सके बाहर सड़कों पर आकर

मरने लगे। जब तक उनके प्राण उनके मांस खा खाकर शरीर का मोह दिखाते रहे तब तक वे दीनों की शक्ल में भीख माँगते या दीन होकर टोलियों में सड़कों के किनारे पड़े रहते।

यह गरीब इंसान की हालत थी; पर जो अमीर अभी तक मोटरों में पेट्रोल फूंक सकते थे, सोने से तौल कर अनाज खरीद सकते थे और अंग्रेज की इमदाद के लिए चोरबाजार को जिन्दा रख सकते थे बड़े ही बेगैरत होकर बेदर्दी के साथ अपनी मोटरों को भूखे इन्सानों के शरीरों पर दौड़ाते ले जाते। गरीब आदमी जब अपने पेट की आग को बर्दाश्त न कर सका था अपने बीबी बच्चों को अपने ही सामने बिना किसी रोग के भूखों दमतोड़ते देख न सका तो इन्हीं रुपये के बादशाहों की मोटरों के नीचे आ-आकर चैन से जान देने लगा!

सड़क पर पड़ी ठठरियों के ढेर को देखकर भूखे कुत्ते भी मुँह फेर लेते। उन्हें उनमें खाने चिंचोड़ने के लिए सूखी खाल और बेजान हड्डी से ज्यादा कुछ न मिलता। मरी हुई मा की खुली छाती पर जिन्दा बच्चा पड़ा रहता जिसके चारों ओर पड़े जाने कितने बेजान लोग उस फूल के मुरझाने की राह ही ताका करते!

अंग्रेज की फैलाई इस भुखमरी से न हिन्दू बचे न मुसलमान और शायद ज्यादा तादाद मुसलमानों की ही थी। आज तक तो हर हिन्दुस्तानी सोचता आया था कि आदमी भूखा कभी नहीं मरता। परवरदिगार हर घड़ी उसकी फिक्र रखता है, तभी तो पत्थर के कीड़े को पत्थर में ही खुराक देता है। पर आज उन सबके देखते न देखते वह परवरदिगार भी अंग्रेज

की घूँस खा बैठा था और इस पर भी ये इन्सान न खुदा के झूठ को समझते और न अंग्रेज की माया से जागते।

ये ही हिन्दू-मुसलमान जो उस समय भूखों मरने से बच गए थे अब एक दूसरे को मारने को तैयार थे। आदमी कब जाहिल और शैतान हो जाता है और किस हद तक गिर सकता है इसका नमूना नोआखली ने पेश किया! वहाँ मुसलमान बुलन्दी पर थे इसलिए उन्होंने अपने हमसाया भाई हिन्दुओं का खूब कत्लेआम किया। उनके बच्चों के सिरों से चौगान खेली। उनकी औरतों की इज्जत का तमाशा किया। यह सब करता हुआ पागल इन्सान चिल्लाता 'अल्ला हो अकबर।' ईश्वर महान है। धन्य री महानता! आदमी खुद छोटा होकर ईश्वर की महानता पर फख्र करने का रोग कर रहा था।

मुसलमान की ज्यादतियों और जुल्मों का बदला लेने के लिए वे सब हिन्दू जो कभी अंग्रेजों की किसी भी ज्यादती और जुल्म के खिलाफ चैन कर सके थे, उसके भूखे मारने पर भी जिन्होंने रोटी और जिन्दगी के लिए हक का हथियार नहीं सम्हाला, अब अपने ही भाइयों पर जुल्म और ज्यादती करने पर उतर आए थे! रात को सोते वक्त जो मुसलमान उनका दोस्त था वही सुबह उनका दुश्मन हो गया और जिसने जिन्दगी भर उनकी खैर मनाई, दुआएँ माँगी वही उनके हाथों रहम न पा सका!

यह देश का खूनी इतिहास था। हमारे नेताओं की अग्नि परीक्षा का अवसर था। जनता के सहयोग का समय था। पर

जो जनता अच्छाई का साथ न दे सकी बुराई के लिए कुर्बान हो गई। तब जनता के ही एक महान प्रतीक ने इन बेवकूफियों के खिलाफ आवाज उठाई। दुनिया भर ने बार-बार जाना कि गांधी नफरत की जमीन पर प्रेम की वर्षा करता चल रहा है। गांधी के पुण्य से नोआखाली का अमिट कलंक भी मिट गया! नतीजा यह हुआ कि उस सच्चे महात्मा के प्रताप से नफरत के बीज से भी प्यार के फूल खिलने लगे। गांधी ने नंगे पैरों, बेला कुबेला में, धान के कटे हुए खेतों को नंगे पैरों चल चलकर पार करते हुए नोआ खाली में एक छोर से दूसरी छोर तक ऐसी रामधुन छेड़ी कि रहीम के मानने वाले भी प्रेममय राम के पुजारी हो गए।

पर गांधी ख़ुद जितने अधिक जनता के हो चुके थे उतनी जनता उनकी न हो सकी थी। जनता पर उन्होंने ईश्वर की तरह श्रद्धा की, विश्वास रखा और प्रेम प्रगट किया। जनता ने उसे देवता की तरह पूजा तो, पर बात कभी न मानी। बराबर मनमानी की और यही कहा कि तू देवता है, पर हम आदमी हैं। तेरा हमारा रास्ता एक कैसे ?

देवता ने फिर समझाया कि आदमी ही तो देवता है और जब देवता बनकर भी एक आदर्श आदमी के सुख-दुख को समझता है और उसकी हर मुस्कान में प्रसन्न तथा हर आँसू में असह्य कष्ट महसूस करते हुये उसी की सुख-दुःख की राह पर चल सकता है तो फिर आदमी ही क्यों उस देवता की खुशियों और सदा बहार की दुनिया में प्रेम का दीवाना होकर, उसी प्रेम का जाप करता हुआ फूलों की राह पर ईश्वर के मन्दिर के लिए यात्रा नहीं कर सकता !

पर गांधी को देवताओं से भी महान सिद्ध करने के लिये हिन्दुस्तान के इन्सान बराबर अपनी असलियत से गिरते रहे! बङ्गाल का जो बदला हिन्दू बंगाल में न ले सके वह बिहार में लिया जाने लगा। तब भी नेता चिल्लाए—बेवकूफी मत करो। स्वयं अपना दुर्भाग्य न बनो। आजादी की सुगम हो चली राह को कांटों से न भरो। विदेशियों की पैदा की इस नफरत को इस तरह प्यार न करो!

मगर कौन सुनता! जिस तरह एक बार अंग्रेज की अफीम से बेहोश होकर चीन ने जल्दी ही अपने को न पहचाना, ठीक इसी तरह नफरत से, कायम हिन्दुस्तान अपने देश की संस्कृति और परम्परा को भूलकर देश के सौभाग्य पर लात मारने लगा! नेताओं ने फिर-फिर समझाया—इस बदले की बेवकूफी को छोड़ो। बंगाल का बदला बिहार लेगा तो बिहार का बदला पंजाब! पंजाब का बदला यू० पी० में लिया जाएगा और यू०पी० का बदला सीमाप्रान्त में। इसी तरह एक जगह का बदला दूसरी जगह, एक प्रांत का बदला दूसरे प्रांत में, एक रियासत का बदला दूसरी रियासत में लेते-लेते देश में बदले के जहर के अलावा रह ही क्या जाएगा! देश को बचाना हो तो इस बदले की भावना को दफना डालो?

लेकिन तब कोई नसीहत सुनने के लिये तैयार न था। लीग का मीर जिन्ना हिन्दू मुसलमानों की इसी बदले की आग के द्वारा अपने दो राष्ट्रों के सिद्धांत को चरितार्थ किया चाहता था। उसकी बला से चाहे मुसलमान ही क्यों न फना हो जाएँ, पर उसकी हठ जरूर ही कायम रहे। खेदकि दो राष्ट्रों के सिद्धांत

को सही साबित करने में कोई हिन्दू किसी मुसलमान से पीछे न रहा।

तब जिन्ना को किसी ने बुरा न कहा, बल्कि गांधी को गालियाँ दी जाने लगीं। नफरत से किसी ने नफरत न की, प्यार को ही सब कोसने लगे। बुराई को किसी ने बुरा न समझा, अच्छाई को ही अग्राह्य ठहराया।

पण्डित नेहरू इस आग को दबाने खुद बिहार में जा पहुँचे। पर जिस हिन्दुस्तान के जवाहर को खूँखार कबाइली भी निहत्था अपने मुल्क में पाकर मार न सके उसी जवाहर को राज्य-शक्ति से मण्डित होने पर भी हिन्दुस्तान के हिन्दुओं ने बिहार में मारने से कम कोई कोशिश नहीं की। नफरत के गले से बुरी बुरी आवाजें आईं, घृणा के हाथों ने बुरे से बुरे हमले किये, पर जवाहर ने उन सबको फूल की तरह अंगीकार करके सिर्फ अपने लोगों की बेवकूफी के लिए दुःख ही प्रकट किया!

फिर बिहार का बदला पंजाब और सीमाप्रांत में जा पहुँचा! वहाँ के निर्दोष हिन्दू इस बदले का शिकार होने लगे! यह सब देख-देखकर भी नफरत परस्त चेत न रहे थे बल्कि गलती से गलती को सुधारने की दर मुमकिन कोशिश करते रहे!

❀ ❀ ❀

श्रीधर ने जब 'क्रांति' के सम्पादन को अपने हाथ में लिया तो उसके देश की ठीक यही हालत थी। किसी भी हालत में वह इन गलत बातों से बेखबर नहीं रह सकता था। उसने इस नफरत के खिलाफ 'क्रांति' की सबसे अधिक जरूरत समझी। सीमा प्रान्त और पंजाब से असहाय पीड़ित हिन्दू शरणार्थी

हरद्वार-कनखल की ओर दौड़े आ रहे थे। कुछ ही दिनों में उनकी तादाद इतनी बढ़ गई कि खास वहाँ के रहने वाले लोग इन शरणार्थियों का एक बहुत ही छोटा हिस्सा बन गए। इन शरणार्थियों के आने पर आस पास के मुसलमान भयभीत रहने लगे और उनका त्रास इतना बढ़ चला कि प्रतिक्षण उन्हें सरहदी शरणार्थियों के हमले का ही वहम सताया करता। इन सरहदियों में भी बदले की भावना पूरी-पूरी थी। वे ऐसे हर मुमकिन मौके की इन्तजार में थे जब कि यहाँ सदियों से रहते आए मुसलमानों को तबाह कर उसी तरह निकाल सकते जिस तरह कि कभी वे अपने पूर्वजों की जन्म-मृत्यु की जगह से निकाले गए थे। अभी तक नर्मदेश्वर और उसकी क्रांति को सिर्फ सामाजिक संकीर्णताओं और रूढ़ियों का विरोध करना था पर अब क्रांति और श्रीधर के सामने इस नफरत की बाढ़ को रोकने का मुश्किल सवाल था। सरहदियों के बल-बले देखकर लगता कि केवल मुसलमान ही उसके दुश्मन हैं बल्कि वे हिन्दू भी जो कि मुसलमानों से कुछ भी हमदर्दी रखते हैं। ऐसी हालत में 'क्रांति' और 'क्रांति-परिवार' भी खतरे से खाली न था। श्रीधर का तो यह निश्चय था कि वह और उसका यत्न किसी भूठ का समर्थन न करेंगे; किसी गलत बात के कायल न होंगे और उन सब तबाहियों का सामना करेंगे जो देश को ही तबाह कर डालना चाहती है। इसके पहले कि 'क्रांति' को भी खतरे में डाला जाए नर्मदेश्वर की सम्मति भी आवश्यक थी! इधर नर्मदेश्वर बहुत कुछ चिन्तित रहता था। इस जातीय संकट ने उसे इतना अस्थिर कर डाला कि वह

अब खुद सोच समझकर सही रास्ते की तमीज न कर पा रहा था।

इसी बीच में एक संयोग से सुशील और श्रीधर दो विरोधियों के रूप में एक दूसरे के सम्पर्क में आए। जब सुशील पूर्वी यू० पी० के शहरों से घूम फिर कर लौटा तो एकदम से नए रूप में ही। साम्प्रदायिकता की बढ़ती हुई लहर के साथ साथ राष्ट्रीय-स्वयं सेवक-संघ भी जोर पकड़ रहा था। इस संघ के विधाताओं को अंग्रेजों की हुकूमत तो एक क्षण के लिए भी न खली थी किन्तु मुसलमानों का साथ भाई के रूप तक में हरास हो रहा था। जिस तरह इस्लाम को संकट में बतला-बतला कर मुस्लिम लीग के झंडे के नीचे जाहिल और चालाक लोगों की भीड़ इकट्ठी की गई थी—उसी तरह भगवे ध्वज के नीचे हिन्दुओं की हिन्दू धर्म और संस्कृति का भयावह संकट बताकर एकत्र किया जा रहा था। दक्षिण में महाराष्ट्र के समान ही उत्तर में पंजाब में संघ का जोर था। सुशील अपने जिन साथियों के साथ घूमने निकला था वे सब संघ के प्रचारक थे। उन्होंने उसे ऐसी-ऐसी बातों से भरा और ऐसे उत्तेजक दृष्टान्त सामने रखे कि उसे हिन्दू धर्म और संस्कृति खतरे में ही जान पड़ने लगे। जब घर आकर उसे 'क्रांति' की परिवर्तित नीति और नए संपादक के प्रकरण का पता चला तो वह संघ के संघठन में और भी तत्परता से जुट गया। वह अपने 'प्रवासी' नाम से प्रकाशित लेख और उस पर सम्पादक की ओर से की गई टिप्पणी को पढ़ ही चुका था। उसे आशा थी कि इस लेख पर काफी विवाद चलेगा, पर सम्पादक के कौशल

से वैसा कुछ न हो सका; इससे वह श्रीधर के प्रति असंतोष से भर उठा। यद्यपि आज भी उसे श्रीधर की स्तुति में कहे गए नर्मदेश्वर के नौकर के वे शब्द याद थे, फिर भी वह उस स्तुति को उसी रूप में मान लेने को तैयार न था। किसी अव्यक्त असंतोष से भर कर वह मन ही मन कहता—'अगर खद्दर के कपड़े पहन लेने और दाढ़ी बढ़ालेने या बालों में तेल न डालने से ही कोई देवता बन जाया करता तो इस धरती पर धूर्त्त-बदमाश तो क्या आदमी भी न रह जाते। सभी देवता हो जाते!' पर इस तरह सोचकर भी उसे जो संतोष हो सका हो।

जब उसने संघ का संगठन करना प्रारम्भ किया तो उसे इन सब कामों में विशेप आनन्द आने लगा। ऐसा कुछ भी जिसके द्वारा कि 'क्रांति' का विरोध हो सकता करना उसे अच्छा ही लगता। इस तरह वह मन ही मन 'क्रांति' का विरोध करके मान लेता कि श्रीधर ही नहीं नीरजा का भी विरोध कर रहा है। वस्तुतः देखा जाए तो नीरजा की उदासीनता की यह प्रतिक्रिया थी कि सुशील प्रत्येक ऐसी वस्तु का डटकर विरोध करना चाहता था जिसका कि नीरजा से कुछ भी सम्बन्ध हो। वह जानता था कि 'क्रांति' नीरजा के जीवन का बहुत बड़ा मोह है और उसने यह भी मान लिया था कि श्रीधर उसके लिए भी देवता है। बस वह उसके इस मोह और देवता पर प्रहार करने के लिए तुल गया।

गंगा की बाढ़ का भय अभी तक दूर न हुआ था। बस्ती के सभी लोग भयभीत थे। जिन्हें बाढ़ के प्रति कुछ कुतूहल था

और जो इसे एक चमत्कार पूर्ण आनन्द समझते थे वे सब छोटे-छोटे बच्चे ही थे जो सन् २४ और उससे भी पहले आई बाढ़ों की कहानियाँ सुन सुनकर या गंगा पर बाढ़ के निशान के लगे पत्थरों को देख-देख कर कल्पना कर ही न पाते थे कि इतना पानी बढ़ जाने पर कैसा लगता होगा। जब वे यह सोच पाते कि बाढ़ आने पर सड़कों और घरों में भी गंगा बहने लगती है तथा कुँए मुँह तक लबालब भर आते हैं तो वे उस अवसर की कामना ही करने लगते। बाढ़ आने पर वे जो घर के आँगन में ही तैर सकेंगे और कुँए से बिना डोल रस्सी के ही पानी ले सकेंगे। उनका छोटा-सा मस्तिष्क इस खण्ड-प्रलय का जितना अनुमान कर पाता वह उन्हें प्रिय ही लगता है। बाढ़ आने पर किस तरह गांव के गांव डूब जाते हैं, तैयार खेतियाँ नष्ट हो जाती हैं सैंकड़ों हजारों मनुष्य और पशु डूब जाते और बह जाते हैं, इससे भी बड़ी संख्या बेघरबार की होकर मोहताज हो जाती है और फिर से खुशहाली लाने के लिए कितनी कोशिशें करनी पड़ती हैं, यह सब उनके उस दिमाग में आता ही न था।

कुतूहली और डरे घबड़ाए लोगों के झुँड के झुँड गंगा के ऊँचे-ऊँचे तटों या तट के पास के मकानों की छतों पर एकत्र हो रहे थे। स्त्रियाँ घरों से दीये ले जाकर गंगा मा की धारा को उनसे प्रज्ज्वलित करतीं, दूध-बताशे चढ़ाकर या फूलों की अञ्जलि भेंट कर अपने कोप को शान्त करने की प्रार्थना करतीं। पर गंगा की वेगवती धारा में अथवा तट पर ही बनते-बिगड़ते रहने वाले भीषण आवर्त्तों में पड़कर वे दीप क्षणभर में ही

आशाओं की तरह बुझ जाते ! जब गंगा माता से एक ओर अपने धारावेग को शान्त करने के लिये मन्दिरों में भी आरतियाँ उतारी जा रही थीं और यत्र-तत्र संत्रस्त लोगों में हाहाकार फैला हुआ था मिथ्या और निराधार बातों के प्रचारक भी गप्पें हाँकने और झूठ के तूफान खड़े करने से बाज न आरहे थे। बातें होतीं—'चंडी घाट के सामने का बाँध टूट गया है। मेरा अपना भाई खुद देखकर आया है, कहता था कि बाँध में कई जगह दरारें होगई हैं जिनसे पानी आ-आकर लालजी वाले और मायापुर की तरफ फैलता जारहा है !'

'अजी सुनते हैं, रास्ते के सैकड़ों, हजारों गांव भी साफ हो गए हैं। हरद्वार में और दूधिया बंध के पास बहुत-सी लाशें पकड़ी गई हैं।'

'लेकिन भाई ऊपर की तरफ ऐसे गांव हैं कहाँ ?'

'तुम्हें क्या मालूम ! मैं बद्रीनाथ तक गया हूँ ! सब अच्छी तरह जानता हूँ ! पहाड़ियों और जंगलियों के काफी गाँव हैं।'

'तब तो जरूर ही बड़ा नुक्सान हुआ होगा ? आदमी तो आदमी, ढोर भी कम न बहे होंगे ?'

तभी दूसरी जगह बातें होतीं—'यह इस गांधी और कांग्रेस का पाप है जो यह सब होरहा है। जात-पाँत इनके लिए कुछ है नहीं; गऊ का मास खाने वाले मुसलमान इनके भाई हैं। वे तो इनकी नोआखली और सरहद में तबाहियाँ कर रहे हैं, मा-बहनों की बेइज्जती, गोकशी और मन्दिर-गुरुद्वारों को भ्रष्ट करने से बाज नहीं आरहे हैं, इधर ये कहते हैं कि नहीं वे तुम्हारे भाई हैं बदला मत लो। वेद झूँठे हैं। कुरान पढ़ो ! मन्दिर-मस्जिद में

कोइ फर्क नहीं। अछूतों और मुसलमानों को भी मन्दिरों में आने दो। अपनी बेटियाँ उन्हें दो। उनके लड़कों को अपना दामाद बनाओ! भला पाप की भी हद होती है। मा से देखा नहीं जारहा है। बस कोप कर उठीं। अब देखना कितने पापी बचते हैं।'

ऐसा कहने वाले इतना भी न सोच पाते कि जो गांधी इनकी दृष्टि में घोर पापी है वह गंगा की बेरहम लहरों से कहीं दूर और सुरक्षित है और जो ये धर्म धुरीण खड़े अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं वे ही सब बाढ़ के शिकार हैं?

इसी तरह भली-बुरी बातें करने वालों और उदास होकर चढ़ती गंगा को देखने वालों की भीड़ लगी हुई थी! नर्मदेश्वर भी नीरजा और श्रीधर के साथ पढ़ाव देखने आया था। श्रीधर बनारस का रहने वाला था उसने गंगा का पर्वत तक फैला पाट और यह वेग कभी न देखा था। थोड़ी देर के लिये वह जैसे बच्चा होगया और सोचने लगा कि इस वेग की टक्कर ये किनारे के घाट और मकान कैसे सह ले रहे हैं। सबसे अधिक कुतूहल तो उसे बड़े-बड़े पेड़ों और हजारों की तादाद में बहते आरहे लकड़ी के सलीपटों को देखकर होरहा था। उसने नर्मदेश्वर से पूछा—पंडितजी ये इतने सलीपट और पेड़ कहाँ से बहे चले आरहे हैं।

नीरजा से उसके अज्ञान-पर हँसे बिना न रहा गया। वह यह सब जानती जो थी। नर्मदेश्वर के बोलने से पहले ही कह उठी रास्ते में जो जंगल पड़ते हैं उनसे पेड़ बह-बह कर आते हैं। यह तो हर साल होता है!

श्रीधर ने उतनी ही उत्सुकता से पूछा—और ये सलीपट !

नीरजा—ये भी वहीं से। ऊपर पहाड़ों पर और तराई में चीढ़ और देवदारु के जंगल होते हैं? उन्हीं जंगलों में पेड़ काट-काटकर ये सलीपट तैयार किए जाते हैं। सैंकड़ों आदमी एक इसी काम में लगे रहते हैं। सरकार को इससे काफी लाभ होता है। यह सब काम ठेकेदार करते हैं। हर साल सलीपट नीचे की ओर भेजने के लिए खुद ही ठेकेदारों के द्वारा गंगा में बहाए जाते हैं।

श्रीधर—फिर इन्हें यहाँ पकड़ता कौन है !

नीरजा ने हँसकर कहा—आदमी !

श्रीधर मुसकुराकर बोला—सो तो मैं भी समझता हूँ। पर कोई व्यवस्था तो होगी !

तभी नर्मदेश्वर ने श्रीधर का ध्यान आकृष्ट करके कहा—उधर देखो श्रीधर !

श्रीधर ने नर्मदेश्वर की अंगुली के संकेत की ओर देखते हुए कहा—क्या, मुझे तो कुछ नहीं दिखाई देरहा !

नर्मदेश्वर—अरे दीखा नहीं। एक आदमी है। तुंबों पर तैर रहा है !

नीरजा उत्साह से बोली—हाँ मैंने देख लिया पिताजी ! वही न जो सलीपट पकड़ रहा है !

तब तक श्रीधर की भी दृष्टि उस पर पड़ गई। आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला—अरे यह भी कैसा आदमी है। इतनी बड़ी गङ्गा में तैर रहा है। चारों ओर से बड़े-बड़े पेड़, झाड़ और सलीपट बहे चले आरहे हैं। यह इनसे टकरा गया तो क्या होगा !

नर्मदेश्वर—यह यहाँ के लोगों के लिए मामूली बात है। यहाँ के तैराक भँवरों तक से तो डरते नहीं। बड़ी-बड़ी झालों में भी अगर पत्थर उभड़े हुए न हों तो निर्द्वन्द्व होकर कूद पड़ते हैं। गङ्गा से उनका इतना अपनापन बढ़ चुका है कि उसका भयङ्कर रूप भी उन्हें भयङ्कर नहीं लगता !

श्रीधर—पर इस भले आदमी को यह जोखिम उठाने की जरूरत ही क्या।

नर्मदेश्वर—जोखिम नहीं, जीविका पैदा कर रहा है। यह सलीपट पकड़ कर गुजर करने वालों में से है। हर सलीपट को पटक कर घाट पर खास जगह लगा देने वालों को फी सलीपट दो आना मिलता है। कभी-कभी यह दर बढ़ा भी दी जाती है। आज कल तो जरूर ही चार आना होगी !

श्रीधर—इसी चार आने के लिए यह प्राण-संकट में डाल रहा है।

नर्मदेश्वर—तुम्हें भी क्या बताना होगा कि प्राण तो हर समय संकट में रहते हैं। जीविका न रहे तो यह संकट और बढ़ जाता है। उसी संकट को कम करने के लिए खतरा उठाया जाए भी तो क्या ! यह इसी तरह चार-चार आने करके आठ दस रुपये रोज कमा लेता होगा। और तो और बहुत सी गैर सरकारी लकड़ी पकड़ कर अपने इस्तेमाल के लिए भी जमा कर लेता होगा। ये लोग साल भर बाढ़ की लकड़ी पर ही काम चलाते हैं। किसी तरह ज्यादा पकड़ पाते हैं तो बेच भी डालते हैं।

श्रीधर—पर ठेकेदारों को चाहिए कि बाढ़ के समय इन्हें ऐसा प्रलोभन न दिया करें।

नर्मदेश्वर—सो ठीक है। आजकल कोई समझदार ठेकेदार इस तरह सलीपट नहीं कटाता, फिर भी आजकल ही ये अधिक आते हैं। इसका कारण यह है कि गंगा किनारे जगह-जगह सलीपटों के बड़े-बड़े चट्टे लगे रहते हैं। जब पानी एकदम बढ़ता है तो वे चट्टे भी बह जाते हैं।

श्रीधर फिर कुछ चुप रह कर बोला—पर पानी एकदम कैसे बढ़ जाता है। बारिश से कि बर्फ के गलने से।

नीरजा—अरे आप तो इतना भी नहीं जानते। मैं बताऊँ। एकदम वर्षा से इतना पानी कभी नहीं बढ़ा करता। असल में यह पानी पहाड़ों में ही कहीं-कहीं रुक जाता है। पहाड़ों के घेर में कभी-कभी पानी भर जाने से झील सी बन जाती है जिसका किसी दूसरे पहाड़ के टूट कर आगिरने से बहाव का रास्ता बंद हो जाता है या पहले से ही कोई ऐसा रास्ता नहीं होता। फिर जब पानी जोर करके अचानक रास्ता बना लेता है तो बाढ़ आती है। जब यह पानी की लहर उस झील से चलती है तो शुरू-शुरू में बड़ी ऊँची होती है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो ५०-५० फुट पानी का अनुमान किया जाता है। इतना ही नहीं इससे ज्यादा भी। यह पानी चारों ओर को बढ़ता चलता है। गंगा का पाट एकदम चौड़ा हो जाता है और किनारे के जंगल बाढ़ के पानी से भर उठते हैं। उसी वेग में पेड़ जड़ें छोड़ने और बहने लगते हैं। ज्यों-ज्यों यह लहर आगे की ओर बढ़ती है त्यों-त्यों इसकी ऊँचाई कम होने लगती है।

नीरजा ने उसे चाव से ये सब बातें इस तरह बताईं मानों वह

खुद इन सब को आँखों से देख चुकी हो। जो श्रीधर नित्य उसे ज्ञान के शिखर पर बैठा हुआ अपने से कुछ ही ऊँचा जान पड़ता था आज उसे अपने सामने अबोध शिशु के रूप में पाकर वह प्रसन्न थी। सुशील उसे प्रिय इसी से था कि वह प्रायः उसके सामने बुद्धू बना रहता। आज श्रीधर ने भी उसे वैसी ही प्रसन्नता प्रदान की !

श्रीधर अचरज में भरा ये सब बाते सुन और बाढ़ की भयानकता देख रहा था। लोगों का अनुमान था कि एक फुट पानी और आ गया तो बस्ती में जा पहुँचेगा। सब इसी एक फुट पानी से घबड़ाए से जान पड़त थे। नर्मदेश्वर ने श्रीधर से कहा—और देखो भाई तुम्हें यह सुनकर तो शायद और भी आश्चर्य हो कि पहाड़ों में रुके पानी को धीरे-धीरे निकालने के लिए पहाड़ों में छेद करने के काम में चूहों की सहायता ली जाती है ?

श्रीधर को लगा कि उससे मजाक की जा रही है। हँसता हुआ बोला—अब तो आप शायद कोई कहानी ही सुनाएँगे।

नर्मदेश्वर—नहीं भाई, मजाक मत समझो। सही बात है। चूहों को ले जाकर वहाँ इस लिए छोड़ते हैं जिससे वे बिल बनाते-बनाते पहाड़ों में छेद कर डालें। अनाज के दानों का उन चूहों को प्रलोभन दिया जाता है। इस तरह जब चूहे दाने चुगते चुगते बराबर बिल बढ़ाते जाते हैं तो आप ही पानी के बहाव को रोकने वाली बड़ी से बड़ी चट्टान में छेद हो जाते हैं। इससे पानी धीरे-धीरे निकल कर बाढ़ के भय को कम कर देता है।

एक ही जगह खड़े नीरजा का मन न लग रहा था। बोली—

पिताजी हवा की तरफ भी चलो न। सुनते हैं यहाँ तो बाहर वाले मैदान को जिसमें दशहरे के दिन रावण फुंकता है गंगा ने जामुन के उस पेड़ तक काट डाला है जहाँ कि सीताजी के लिए अशोक वाटिका बनती थी।

नर्मदेश्वर—आज रहने भी दो बेटी। काफी घूम कर जाना पड़ेगा। हुआ तो कल उधर ही चलेंगे।

नीरजा ने हठ पकड़ी—कहाँ देर हुई। अभी तो शाम का पाँच भी न बजा होगा। आप इन बादलों को देखकर सोच रहे होंगे कि रात उठ आई!

नर्मदेश्वर—बात तो कुछ ऐसी ही थी बेटी! देखो बादल भी कितने घनघोर हैं। कहीं बाढ़ के साथ-साथ ये भी बरस पड़े तो आफत हो जायगी। अच्छा तो बोलो भाई श्रीधर, तुम्हारी क्या राय है।

श्रीधर के सामने तो आज प्रकृति का वह रूप खुला हुआ था जिसकी कल्पना भी वह बनारस में रहते कर न सका था। वह उसे हर ओर और हर तौर से देखना चाहता था। उसने चलने के लिए सहर्ष सम्पति दे डाली।

❀ ❀ ❀

दक्ष की तरफ बढ़ते हुए रास्ते में भी श्रीधर के दिमाग में बाढ़ के भीषण परिणाम के दारुण दृश्य घूम रहे थे। नर्मदेश्वर ने पूछा—इस तरह तुम क्या सोचने लगे हो भाई!

श्रीधर—बाढ़ कैसे आती है यह तो न जानता था पर अमेरिका जैसे देशों में बाढ़ कैसे रोक दी जाती है यह अवश्य ही कभी कहीं पढ़ा था। आज मैं यही सोच रहा हूँ कि हमारा देश

भी कब इस तरह अपने हित-अनहित के लिए अपनी बुद्धि, शक्ति और सम्पदा का प्रयोग करेगा।

नीरजा बाढ़ कैसे रोक दी जाती है यह न जानती थी। कुतूहल-वश पूछ ही तो बैठी—अमेरिका वाले कैसे रोक लेते हैं बाढ़। बताइए न!

श्रीधर—पहली बात तो यही कि वे आज़ाद हैं और दूसरे वे अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने वाले हैं। जिस तरह आज बाढ़ के कारण बहुत से मूढ़ अंग्रेजों को न कोसकर गांधी-जवाहर को कोसने लगते हैं उस तरह वे जाग्रत अमरीकी, वाशिंगटन और अब्राहम लिंकन को नहीं कोसते। और न प्रार्थनाओं के बलपर ही प्रकृति की प्रवृत्ति को बदल डालने में विश्वास रखते हैं।

नीरजा आज श्रीधर के प्रति अत्यन्त ही उदार होरही थी। प्रसन्नतापूर्वक बोली—देखिए मैं आपसे बहस न करूँगी! बिना कुछ कहे ही आपकी बातें मान लेती हूं। इसलिए आप बताइये तो सही कि अमरीका में बाढ़ रोकने के ऐसे कौन से उपाय काम में लाए जाते हैं।

श्रीधर—सुनते हैं कि उन्होंने उन नदियों के पानी को जिनमें प्रायः बाढ़ आने का अंदेशा रहता था बड़ी-बड़ी कृत्रिम झीलों में भर लेने की व्यवस्था कर रखी है। इसलिए जब कभी नदियाँ अधिक उफनने लगती हैं तो उनका बाढ़ का पानी उन्हीं झीलों में ले लिया जाता है जिनसे बाद में न केवल सिंचाई की जाती है बल्कि बिजली भी पैदा करते हैं। इस तरह उन्होंने पुरुषार्थ के द्वारा प्रकृति के विनाश और विपर्यय के प्रयत्नों को भी निर्माण में लगा दिया है!

इसी तरह जब बातें करते-करते दह के मैदान में पहुँचे तो वहाँ गंगा का उन्माद देखकर सभी सहम गए। मैदान का एक काफी बड़ा टुकड़ा तेजधारा ने काट डाला था। उस हिस्से में जो पेड़ थे उनका अब कोई निशान बाकी न था। कटा हुआ किनारा देखने में काफी ऊँचा और भयानक लगता था जिसकी ओर बढ़ते हुए पैर काँपते थे। जाने किस ओर की जमीन कब नीचे को धँस जाए या कट कर जल में समा जाए। इस हिस्से के कट जाने से पानी काफी अन्दर तक चला आया था जिससे उस हिस्से में भँवर और भी जोर करने लगे थे। सामने पार की तरफ दो धाराओं के बीच में अभी भी भामड़ का रेतीला जंगल सिर उठाए था। और कुछ आगे दो-एक धाराओं और उनके बीच में पड़ने वाले खैर-बेरी के जङ्गलों के टुकड़ों के परे नील-पर्वत की श्रेणियाँ अपनी हरी-भरी ढालों में मगन खड़ी थीं। जाने इन श्रेणियों ने कितने जल-प्लावन देखे होंगे और कितनी बार नूतनतम वनस्पतियों के वस्त्र धारण कर पुराने पड़ जाने पर नयों की आशा में उतार फेंके होंगे और कितनी ही बार धाराओं के बीच में पड़ने वाले छोटे-छोटे जंगल के टुकड़ों को शायद समाज सहित ऊँची जल-धाराओं में निमग्न होते देखा होगा। श्रीधर यह सब देख-सोचकर विचित्र भावनाओं से भर उठा। नर्मदेश्वर के मन में भी कुछ वैसी ही भावनाएँ जाग्रत थीं जिन के प्रभाव स्वरूप अनायास दोनों के लीलामयी पावन प्रकृति के प्रति हाथ जुड़ गए और सिर झुक गया। बादलों की ओर से सरकता हुआ सूर्य अस्तायर्थ की ओर बढ़ते-बढ़ते अपनी तिरछी लाल किरणों से कहीं प्रतीची को रागारुण करता हुआ इन सबकी ओर से मानों उदासीन ही था।

ये लोग गंगा का दृश्य देख ही रहे थे कि तभी किसी ने पीछे से आकर कहा—पंडितजी नमस्कार !

नर्मदेश्वर ने चौंककर देखा—अरे कौन सुशील !

नीरजा और श्रीधर ने भी चौंक कर देखा। सुशील मुसकुरा रहा था। उसने नीरजा को भी हँसते हुए नमस्ते की, पर उत्तर में उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया। श्रीधर की ओर अब तक उसने कोई ध्यान न दिया था। अब तक श्रीधर उसे अच्छी तरह पहचान चुका था। नर्मदेश्वर के नाम लेने ने तो सारी शंका ही दूर करदी। उसे उसे उसकी कार्यालय की भेंट की याद होआई। तभी उसने खुद अभिवादन करते हुए कहा—आपने मुझे नहीं पहचाना 'प्रवासी' जी !

सुशील चकित होकर रह गया। अपने अचरज को छिपाता हुआ बोला—आपको शायद भ्रम हुआ। मैं प्रवासी नहीं सुशील हूँ।

श्रीधर ने हँसकर कहा—अरे अब मत छिपो भाई, नहीं तो मुझे कहना पड़ेगा कि सुशीलचन्द्र ही 'प्रवासी' हैं।

सुशील चुप रहा। नर्मदेश्वर ने कहा—तुम सोचते कि बेटा हम तुम्हारे लेख से केवल नाम बदल जाने से ही तुम्हें न पहचान सकेंगे। भला ऐसी भी कोई बात है। जिस नर्मदेश्वर को तुमने लाठियों के प्रहार सहकर मरते-मरते बचा लिया हो, वही तुम्हें कैसे भूल सकता है।

सुशील को और अधिक संकोच की अवस्था में न रखने के विचार से बात बदलते हुए पुनः नर्मदेश्वर ने कहा—सुशील, अच्छा अब इनसे भी खुलकर परिचय करलो। ये ही हमारे

श्रीधर हैं जिनके हाथ में 'क्रांति' सौंपकर मैं निश्चिन्त होगया हूँ।

श्रीधर—पंडितजी की बात को ज्यों का त्यों सही मत मान लेना सुशील भैया। सुना है बहन नीरजा तो आपको सुशीलबाबू कहतीं हैं, पर मुझे तो भैया ही कहने देना। हाँ, तो कह रहा था कि पंडितजी अपनी बुराई और दूसरे की बड़ाई करने में अपना कोई सानी नहीं रखते!

सुशील को भी क्षणभर के लिए लगा कि श्रीधर जरूर ही आदमी के रूप में देवता है। तभी न कितना कोमल, कितना निरभिमान और आडम्बर शून्य! बातें क्या करता है आदमी को अपना लेता है। इसी से उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—सच ही आपके दर्शन करके मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता हुई!

नीरजा जो अब तक चुप थी अचानक बोल उठी—पर यह क्या सुशील बाबू! आज तक तो आपको इस काली टोपी में न देखा था, फिर यह एक दम से कैसे बदल गए। सच ही बिल्कुल स्वयं सेवक से जान पड़ने लगे!

सुशील ने झेंपते हुए कहा—हाँ अब तो मैं सचमुच ही स्वयं सेवक होगया हूँ। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि आजकल *राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रसार की जातीय आवश्यकता है।* हिन्दू और हिन्दुत्व इतना संकटापन्न हो चुका है कि यदि शीघ्र ही सारे हिन्दू इस भगवे झंडे के नीचे एकत्र न होगए तो जल्दी ही हिन्दुस्तान से हिन्दू संस्कृति का लोप हो जाएगा! आज तो कांग्रेस ने सिर्फ पाकिस्तान माना है और आगे चलकर तो हिन्दुस्तान का धर्म ही इस्लाम मान ले तो कोई अचरज नहीं। गांधीजी के रहते ये सब बड़ी बातें नहीं।

श्रीधर ने देखा कि ये सब उग्र बातें करते-करते सुशील का सुन्दर चेहरा भी विकृत-सा हो चला है। उसे यह सोचकर कष्ट हुआ कि क्या इस तरह की असामयिक प्रेरणाओं से हमारे सभी नवयुवक पथभ्रष्ट हो जाएँगे। सुशील को पूर्ण आवेश ग्रस्त होने से रोकते न रोकते उसने कुछ मुसकुरा कर कहा—आपकी बातों से मैं सहमत नहीं। पर अभी विरोध न करूँगा। सिर्फ एक बात पूछूँगा, जो मेरी नजर में जरूरी है। आपसे दूसरों के दोष जानने से पहले मैं यह जानना चाहूँगा कि आप खुद हैं क्या ?

सुशील श्रीधर की बात को ठीक-ठीक समझ न सका। फिरभी कुछ सकपकाते हुये उसने कहा–हम अखण्ड हिन्दुस्तान चाहते हैं, हिन्दुओं के देश में हिन्दुओं का राज्य चाहते हैं और हिन्दुओं की संस्कृति की रक्षा चाहते हैं। और जैसे आप लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा चाहते हैं वैसे ही हम भी उसे चाहते हैं।

श्रीधर—आपकी दूसरी बातों के जबाब तो फिर दूँगा। पर यहाँ यह कहने के साथ-साथ कि आपने मेरी बातों को नहीं समझा यह भी बतादूँ कि हमारी और आपकी हिन्दी की राष्ट्र-भाषा की माँग में अन्तर है। आप हिन्दू बनकर हिन्दी चाहते हैं, फिर चाहे हिन्दी में कोई उपयोगिता और वैज्ञानिकता हो भी कि नहीं। पर हम हिन्दी को सर्व-सुबोध और उसकी लिपि को पूर्ण वैज्ञानिक मानते हुए उसे उसका गौरव दिलाना चाहते हैं। खैर, मैं तो यह जानना चाहता था कि इन नारों के अतिरिक्त आपका स्वरूप है क्या। आखिर ऐसा कोई विधान और कार्य-

क्रम तो हमारे सामने रखिये जिससे जनता स्वतः आपकी ओर आकृष्ट होकर संघ को शक्ति दे।

सुशील—हमारी यही विशेषता है कि हमारा एक निश्चित स्वरूप, प्रण या उद्देश्य होते हुए भी कोई लिखित विधान नहीं। हम लोग लिखकर कागज नहीं खराब करना चाहते, बल्कि ठोस काम करने के पक्षपाती हैं। आपको हमारे काम को देखना ही हो तो चलकर उन शाखाओं को देखिए जो मैंने यहाँ थोड़े ही दिनों के प्रयत्न से आस-पास के गाँवों तक में संगठित कर डाली हैं। यह दक्ष हमारी कनखल वाली शाखा का स्थान है। हम लोग यहीं पर सुबह-शाम संगठन के लिए एकत्र हुआ करते हैं।

श्रीधर—ठीक है, सो तो मैं अन्यत्र भी देख चुका हूँ, पर आपके संगठन के नमूनों में कहीं भी हिन्दू संस्कृति का रूप नहीं देख पाया। हिन्दू संस्कृति मूलतः ऋषियों, दार्शनिकों और विचारकों की रही है। अपने स्थूल रूप में भी यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का समास है। इसमें बुद्धि, बल, वाणिज्य और सेना को समान महत्ता दी गई है और चतुर्मुखी संस्कृति के पोषण के लिए कभी भी केवल बल को ही पर्याप्त नहीं समझा गया है। प्रत्येक संकटकाल में बुद्धि अग्रणी रही है और वणिक्, धर्म तथा सेवाकार्य की उपेक्षा नहीं की गई और जब कभी की भी गई तभी तब हमारा सांस्कृतिक ह्रास हुआ है जिससे आज हिन्दुत्व केवल कवायद और लाठी पर उतर आया है।

सुशील ने तेज होकर कहा—आप आक्षेप कर रहे हैं! शायद आप भूलते हैं कि······

मुझे गलत मत समझो भाई। मैं आक्षेपों के पास भी नहीं। और न यही भूलता हूँ कि आपके पास इस समय ऐसी शक्ति है जो मेरे शरीर बल से कहीं महत्तर है। पर अपने विशाल शरीर बल से मेरे तुच्छ शरीर बल को कुचलकर ही आप हिंदुत्व की रक्षा नहीं कर सकते। मैं कहता न था कि प्रत्येक संकटकाल में विचार की आवश्यकता है। आपसे भी मैं वही आशा करता हूँ। आज का युग केवल बातें सुनकर मान जाने का नहीं रहा। वह प्रत्येक कदम निश्चय करके उठाता है। मैं भी आपके साथ हो ले सकता हूँ यदि आप अपने विधान और प्रथा को प्रकाशित कर डालें और स्पष्ट करदें कि आपका संगठन छल-द्वन्द्व का नहीं विचार-विमर्ष का है। आप सत्य के हिमायती हैं। सत्य के विचार ही एक मात्र शक्ति है! फिर जिस सत्य की रक्षा के लिये सर्वदा बल की आवश्यकता पड़े वह झूँठ से अधिक कुछ नहीं।

सुशील—तो इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक झूठ बात लिखकर प्रकाशित करने पर सत्य हो जाती है!

श्रीधर—कदापि नहीं! इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक झूठ सार्वजनिक बन कर, सबके सामने अपने निश्चित रूप में आजाने पर अधिक काल तक लोगों को धोखे में नहीं रख सकता। जनता और समय सत्यासत्य की सबसे खरी कसौटी हैं। हमें अपनी परीक्षा देने से घबड़ाना नहीं चाहिए।

सुशील—हम घबड़ाते नहीं, पर अपना मर्म सब पर प्रकट नहीं कर सकते!

श्रीधर—पर सत्य के तो कोई मर्म होता ही नहीं। मर्म तो

एक कमजोरी है जो झूठ में ही मिलेगी। सत्य तो परमायु की तरह अविभाज्य, विकार और आकार से परे परम शक्तिमान है, जो व्यक्ति के विचारों और आचरणों से ही प्रकट होता है और समझ जिसका सच्चा पारखी है। इसी परख के लिए आप अपने विचारों को सुसंबद्ध कर ऐसा रूप दे डालें जिससे अन्य जनों को भी उन पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिले। इसके साथ-साथ आपको अपकी गलतियों को मानने और सुधारने के लिए तैयार भी रहना चाहिए। आपके इस गोप्य-भाव से तो लगता है कि आप अपने संगठन को शाबर मन्त्रों की तरह अर्थहीन किन्तु अंध विश्वासियों के के लिए फिर भी सारगर्भित बनाए रखना चाहते हैं। मैं तो कहूँगा कि यदि आप सचमुच ही हिंदू संस्कृति के रक्षक और कल्याण चाहने वाले हैं तो उन तमाम बातों को नष्ट कर डालिए जो कि बुद्धि का बहिष्कार करती है।

नीरजा इन बातों में दिलचस्पी ले रही थी। नर्मदेश्वर ने कगार से काफी दूर हट कर खुद बैठकर और दूसरों को बैठाते हुए कहा—पर श्रीधर यहाँ मेरी भी एक शंका है। मुझे तुम इस बात का जवाब दो कि दुराग्रहियों के कारण जब अपनी संस्कृति पर संकट आता हो तब अपना संगठन न करें, बल प्रयोग भी न करें तो आत्म-हत्या और-नाश से बचें भी किस तरह!

श्रीधर ने स्वागत करते हुए कहा—लो सुशील भाई इस पर हम सब लोग मिलकर विचार कर ही लें। आज कल मैं 'क्रांति' की नीति में कुछ और स्पष्टता लाना चाहता था जिसके लिए

पंडितजी की सहर्ष अनुमति आवश्यक थी! प्रसंग कुछ ऐसा ही है; इस लिए मेरे दोनों ही काम हल हो जाएँगे।

सुशील सन्नद्ध होकर बैठ गया। श्रीधर ने आगे कहा—फिर मैं यही कहूँगा कि आत्म-रक्षा के प्रश्न से पूर्व आत्म-विवेक कर लेना चाहिए। आखिर वह स्वरूप है क्या और कैसा जिसकी कि रक्षा के लिए हम इतने बेचैन हैं। संस्कृति क्या केवल इतिहास है कि निरी कुछ घटनाएँ और व्यक्तियों के कुछ चरित्र अथवा कोई पूर्व निश्चित गति हीन और परिवर्त्तन शून्य तत्व जो कि जड़ भी कहा जा सकता है।

नर्मदेश्वर ने कहा—नहीं संस्कृति को इस तरह बाँधा नहीं जा सकता। मैं तो सोचता हूँ कि यह एक सदा विकसित होने वाला प्रवाह है जिसमें नित नई घटनाएँ और व्यक्ति जुड़ते रहते हैं तथा अपने अपने प्रभावों को छोड़ते जाते हैं। हलके प्रभाव मिट जाते हैं, महत्वपूर्ण स्थापित होकर इतिहास का अविभाज्य अंग बन जाते हैं। इसी तरह प्रत्येक देश का एक विशिष्ट इतिहास प्रवाह होता है जिसे बाँध कर रखा नहीं जा सकता; जिसकी सीमा व्यक्ति, घटना और स्थल में नहीं अपितु समय की अनन्तता के साथ अनन्त बने रहने वाले व्यक्तियों घटना-योगों और परिस्थितियों में है। यही इतिहास-प्रवाह संस्कृति है।

सुशील—पर मैं यह नहीं मानता! यदि मात्र ऐसे प्रवाह को ही संस्कृति मान लिया जाएगा तो संस्कृतियों का भेद ही नष्ट हो जायगा। जब कि कुछ निश्चित ही नहीं तो केवल नित्य परिवर्त्तनों में आप कैसे कह सकेंगे कि यह है।

श्रीधर—जरूर कह सकेंगे। आप की जिस गुठली के बोने से आपका इतना बड़ा पेड़ तैयार हो जाता है और फिर उस पर सुस्वाद और रस भरे फल लगने लगते हैं उस गुठली और फल में कोई साम्य नहीं; फिर भी बीज अवस्था से फल अवस्था तक एक प्रवाह या विद्या सदुप अवश्य है। उसी विद्या सदुप को देखकर बिना बीज और फल को देखे ही हम कह सकते हैं कि यह है आप और यह नहीं है आप। इसके अतिरिक्त पत्तों के आकार प्रकार, वृक्ष के स्वरूप और फल के रंग-रूप शंक और स्वाय से भी हम पहचान लिया करते हैं कि इस पेड़ों के जंगल में यह कौन सा पेड़ हैं। इस फलों के ढेर में यह कौन सा फल है।

सुशील—उदाहरण से तो आप कुछ और भी समझा सकते हैं। मुझे तो संस्कृति का स्वरूप संस्कृति को ही लेकर समझाइए?

श्रीधर—मैं इसके लिए भी तैयार हूँ। अधिक स्पष्ट करने के लिए कह सकता हूँ कि जीवित संस्कृति विकासशील जातीय गुणों का समृद्ध प्रवाह है। अब मैं इन जातीय गुणों की ओर आता हूँ। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि हिन्दू संस्कृति कैसे बुद्धि बल इत्यादि का सुन्दर समाज है। हमें देखना है कि यही समाज तो कहीं टूट नहीं रहा। जहाँ यह टूटता जान पड़ेगा वहीं संस्कृति का स्वरूप लोप भी समझो। किन्तु जहाँ यह लोग वहाँ संस्कृति अवश्य ही स्पष्ट होगी! उसीसे उसे समझ लिया जा सकता है। प्रभाव के आधार पर भी हम विभिन्न संस्कृतियों की समीक्षा करके उनका स्वरूप बोध कर

सकते हैं। सुशील भाई, परिवर्त्तन से ही आपका सबसे अधिक विरोध है और मैं आपको उसी को समझाऊँगा। बाह्य परिवर्त्तन संस्कृति के स्वरूप में कोई परिवर्त्तन नहीं लाते। फिर से उदाहरण देकर कहना पड़ रहा है कि आप नित्य ही देखते हैं कि आज जो व्यक्ति बच्चा है, वही शनैः शनैः परिवर्तित होता हुआ कैसे एक दिन वृद्ध हो जाता है। फिर भी व्यक्ति रूप से उस शिशु और वृद्ध में कोई भेद नहीं; कारण कि आत्मा उनकी एक ही रही। प्राण एक ही हैं। सतत परिवर्त्तनशील संस्कृतियों की आत्मा इसी तरह एक-रस रहा करता है। प्राण नहीं बदलते प्राणाधार बदल जाता है। एक बहुत ही मोटी सी बात लो न। यह नेकर और इस तरह की काली टोपी ही कब हिन्दुओं का बाना रहा। पर आज घोर हिन्दू वादी होते हुए भी तुमने इसे अपनाया है। मुझे तुम्हीं बताओ कि अपने इस विदेशी बेष में भी तुम अपने को कैसे यह मान लेते हो कि तुम हिन्दू हो।

सुशील गिरफ्तार सा हो गया था। उस पकड़ से भागने की कोशिश करते हुए उसने कहा—कुछ भी हो हममें अपनत्व है और हम उस पर होते हुए प्रहारों को देखकर प्रतिक्रिया से बच नहीं सकते।

श्रीधर—मैंने तुम्हारी बात समझी। पर भाई प्रतिक्रिया को तुम बुरा ही क्यों मानते हो। बुरी सी बात की प्रतिक्रिया भी अच्छी हो सकती है। प्रश्न उसके व्यक्तित्व का है जो कि प्रतिक्रिया का क्षेत्र बन रहा हो। आज तुम मुसलमानों के अत्याचारों को देख सुन कर प्रतिक्रिया ग्रस्त होकर वैसा ही

करना चाहते हो। बुराई देख कर तुम भी बुरे होने लगते हो। पर यह कैसे ठीक है। शिवाजी का हिंदू संगठन भी औरंगजेब के जुल्मों की प्रतिक्रिया थी, पर वह कितने सुन्दर रूप में प्रकट हुई हिन्दू इतिहास का स्वर्णपृष्ठ लिखा। विदेशी इतिहासकार जिस शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहकर तुच्छ सिद्ध करना चाहते हैं वही शिवाजी कितना महान था जिसने कि कभी किसी मस्जिद को अपवित्र न किया, किसी मुसलमान स्त्री को धर्म-भ्रष्ट न किया, एक भी कुरान या धार्मिक ग्रन्थ का अपमान न किया, निर्बलों पर अत्याचार न किया और सबलों से सदा लोहा लिया। यही शिवाजी की संस्कृति थी। नहीं तो वह भी मन्दिर का बदला मस्जिद से, वेद का बदला कुरान से, ब्राह्मण के चोटी-जनेऊ का बदला मुल्ला की दाढ़ी से और हिन्दू रमणी के सतीत्व का बदला मुसलमान रमणी के सतीत्व से ले सकता था। पर क्या इससे हिन्दुत्व का मुख उज्ज्वल होता!

लोगों के घरों में दीपक जल चुके थे। दत्त का मैदान भी सुनसान हो गया था। केवल एक ओर शाखा में आए लड़के अपने शिक्षक के आदेश की प्रतीक्षा में जमा थे। गंगा के गर्जन और उन बालकों के कोलाहल के अतिरिक्त सभी कुछ शान्त था। बादलों से भारी हवा भी शान्त थी! नर्मदेश्वर ने विवाद का विराम करते हुए कहा—अच्छा अब बस करो श्रीधर! मैंने तुम्हारी बात मानली! 'क्रान्ति' की नीति के तुम डिक्टेटर हुए। और सुशील देखो वे लड़के कदाचित् तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें जाकर छुट्टी तो दो!

सुशील नमस्कार करके जाने लगा तो नर्मदेश्वर ने हंसकर

कहा—अरे यह क्या, अब हमारे साथ न चलोगे! हमें तो खुशी हुई कि तुमने संघ के तर्क न करने के आदेश या नीति के विरुद्ध भी हमसे कुछ बातें कीं।

सुशील—नहीं, पंडितजी मुझे एक और जगह जाना है!

इतना कहकर वह हारा सा फिर भी अकड़ा हुआ चला गया। श्रीधर ने भी उठते-उठते कहा—देखो यह भी विचित्र बात है कि इनके यहाँ सदस्यों को संघ की रीति-नीति पर बहस तक करने की आज्ञा नहीं। यह तो एक तरह के अंधेर और दिमागी गुलामी को कायम रखने के लिए जबरदस्ती की तानाशाही है। प्रकाश और प्राणवायु के द्वार रुद्ध कर देने पर भी क्या कोई संगठन जीवित समझा जा सकता है।

अब वे तीनों चलने लगे थे। नीरजा आज मन ही मन श्रीधर के समक्ष गल चुकी थी। उसे इस बात का खेद था कि उसने इस बुद्धि-प्राण लघु-जीव को आज तक व्यर्थ ही कष्ट दिया। पर उसमें अपने व्यक्तित्व के प्रति जो मोह था उसे कैसे समाप्त कर डालती। वही उसे कुछ बल देता था पर वही श्रीधर के प्रति अनुदार भी कर डालता था। फिर बल छोड़ती कि अनुदारता!

रास्ते में नर्मदेश्वर ने कहा—कुछ भी हो श्रीधर तुम्हें इनके अनुशासन की तो प्रशंसा करनी ही होगी!

श्रीधर—हाँ लोगों का अक्सर यही ख्याल है। पर मैं नहीं मानता। अनुशासन तभी गुण है जब कि उसका प्रयोजन भी वैसा ही हो। भले आदमियों से अधिक अनुशासन तो चोर-डाकुओं में ही मिलेगा! पर इसीसे वे अनुकरणीय नहीं हो जाते!

श्रीधर की इस बात पर नर्मदेश्वर खूब हंसा। हंसते-हंसते ही कहा—ठीक है भाई जो मुझसे ही यह कहा। ऐसी मिसाल दूसरों के सामने मत देना। नहीं तो······

नीरजा ने बात पूरी की—विचार पर बल का भैंसा हमला बोल देगा।

इस बार तीनों जने मिलकर हंसने लगे!

घर पहुंचने पर केला ने पूछा—आज बड़ी देर लगाई!

नीरजा ने हँसते हुए जवाब दिया—ब्राह्मण को क्षत्रिय मिल गया था। एक दूसरे को समझने में लगी होने कलम तलवार की लड़ाई बस इसी से देर हो गई।

श्रीधर—यों कहो न नीरजा बहन कि विचार को अपने से भागता हुआ हिन्दू मिल गया था, जिससे उसे इतना मोह था कि दौड़ चला उसी के पीछे!

केला कुछ समझ न सकी। इसी से उसे छोड़कर सब ठठाकर हँस पड़े। वह केवल मुसकुराई ही। नर्मदेश्वर ने कहा—पर भाई तुम्हें ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मण की उपमा से इतनी चिढ़ क्यों है।

श्रीधर—चोटी जनेऊ जो नहीं। फिर पूर्वजों की कमाई पर पेट नहीं भरना चाहता!

नीरजा—चलो ब्राह्मणों की एक और जात बढ़ी जिसे चोटी-जनेऊ की भी जरूरत नहीं।

इस पर सबके सब मिलकर कितनी ही देर तक हँसते रहे।

दस

गंगा की बाढ़ का भय अभी तक कम न हुआ था। गंगा के तट पर रहने वालों को ज्यादा चिन्ता थी जिनमें भारती भी थी। उसका मकान भी एक खंड का था जिससे ऐसा भी न था कि नीचे के हिस्से में पानी भर जाने पर ऊपर का हिस्सा रहने में बरता जा सकता। ऊपर तो खुली छत थी बादल और बारिश की वजह से जिसका कोई उपयोग ही नहीं हो सकता था। जब कि भारती इसी तरह मस्त थी केला ने उससे आकर कहा—देखो न बहन हमारी भी मति कैसी मारी गई कि बाढ़ का खतरा यहाँ तक बढ़ आया पर तुम्हारी चिन्ता तक न की! और तुम भी कितनी बुरी हो कि खुद ही न चली आईं। अच्छा अब बहुत हुआ, सुशील कहाँ हैं? जल्दी से हमारे यहाँ चलने की तैयारी करो!

भारती मा की छाती पर से बड़ा भारी बोझ-सा उतर गया। फिर भी उसने लौकिकता दिखाते हुए कहा—पर क्या इस तरह तुम लोगों के ऊपर भार बन कर रहना ठीक होगा। तुमने पंडित जी से भी पूछ लिया है न!

केला—क्या बेकार की सी बातें करती हो। भार किस बात का। पंडितजी ने मुझे खुद ही तुम्हारे पास भेजा है। फिर घर में मेरा इतना हक है कि ऐसे मामलों में मेरी ही राय पहली समझी जाती है।

आखिरी वाक्य कहते न कहते केला का मुख आह्लाद से खिल उठा था। भारती उसके उस आह्लाद पर प्रसन्नता का अनुभव करती हुई बोली—अच्छा तो फिर सुशील को आ जाने देतीं।

केला—कहाँ गया है सुशील। कब तक आ जाएगा वह ?

भारती—उसके आने का आज कल कुछ ठीक नहीं। लगता है कि उसे घर से कोई मोह नहीं रह गया। मैंने उसका अब तक व्याह न करके शायद गलती ही की ! पर करती भी क्या, मजबूर थी ! लड़की भी पसन्द की न मिली ! फिर पसन्द की मिलने पर लड़की वालों की पसन्द का भी सवाल !

भारती ने गंभीर आशय से आखिरी बात कही थी, पर केला का ध्यान उस ओर गया ही नहीं। बोली—आजकल तो उसे कम से कम घर की फिक्र करनी चाहिए। चढ़ती गंगा है, जाने कब क्या हो जाए। इस तरह उसका बाहर ही बाहर रहना ठीक नहीं !

भारती—ठीक क्या नहीं ? आजकल तो उसने इस संघ को ही ठीक समझ रखा है। रात-दिन उसी के राग-अलापता है। जब घर भी आता है तो वही संघ की बात करता और संघ वालों को साथ लिए-लिए ?

केला—तुम उसे समझाती नहीं बहन ! यह संघ इसी तरह

बढ़ता रहा तो किसी दिन देश के लिए मुस्लिम लीग से भी खतरनाक साबित होगा !

भारती—यह सब तो मैं नहीं समझती, फिर भी समझाया है और समझा-समझाकर थक गई हूँ। मैं तो एक बात जानती हूँ कि कांग्रेस ने स्वराज्य के लिए कितनी तपस्या की है। कितने घोर-कष्ट और अत्याचार सहे हैं। फिर अब जबकि स्वराज्य का दरवाजा दो-एक रोज के फेर से खुलने ही वाला है तो ये सब उन्हें गालियाँ देते हैं। जिस तिरंगे झंडे के नीचे हजारों माई के लाल शहीद हुए उसी का अपमान करते हैं ?

केला सहमतीसी बोली—तिरंग का अपमान ? राम, राम ! क्या कहती हो बहन ! मैं नहीं जानती थी ! क्या यह संघ इस हद से भी गुजर गया है। अरे आज दिन तो यही तिरंगा हमारे लिए त्रिदेवों के समान है ! इसके नीचे आज भी बलिदान के लिए कोटि-कोटि जन इकट्ठे होते हैं और होते रहे हैं। तिरंगे से ऐसी उन्हें चिढ़ क्या है ?

भारती—सो तो मैं कुछ जानती नहीं। कहते हैं कॉंग्रेस मुसलमानों की हिमायती है। यह झंडा भी मुसलमानों का है। कॉंग्रेस ने पाकिस्तान मानकर हमें अपनी जन्मभूमि पंजाब से ही नहीं वंचित किया बल्कि भारतमाता के भी टुकड़े किये ? यह तो मैं भी सोचती हूँ कि कॉंग्रेस ने भूलकी बहन !

केला—हो सकता है कि भूल की हो ? कॉंग्रेस के नेता भी आदमी हैं; उनसे भूल हो सकती है। पर इसी से उनकी सचाई और ईमानदारी में शक नहीं किया जा सकता। मैं तो इतना समझती हूँ कि कभी-कभी बड़ी बुराई को दूर करने के लिए

छोटी बुराई मंजूर करली जाती है और दीर्घव्यापी संकट को मिटाने के लिए क्षणिक संकट सह लिया जाता है। खैर, अभी इन बातों को छोड़ो। मेरे साथ चलने की तैयारी करो !

भारती—सुशील के आए बिना कैसे जा सकूँगी।

केला—क्यों ? क्या उसकी राय जरूरी है !

भारती—राय की बात नहीं ? सामान को ठीक-ठिकाने रखवाना था और कुछ अपने साथ भी ले चलना था !

केला—अच्छा तो तुम सिर्फ साथ के लिये पहनने के कपड़े चुन लो, अपने भी और सुशील के भी। बाकी सब वहाँ हो जाएगा। घर जाकर मैं पंडितजी से कह दूँगी; वे यहाँ बचे सामान की भी ऐसी व्यवस्था करा देंगे जिससे पानी चढ़ आने पर भी कोई नुकसान न हो !

अब भारती टाल न सकी ! उसने एक सन्दूक में अपने और सुशील के कपड़े भर लिए ! नौकर के हाथों वह सन्दूक नर्मदेश्वर के घर पहुँचा दिया और खुद भी पैसे-जेवर की सम्हाल करके केला के साथ चल दी !

कितनी ही देर बाद जब सुशील घर लौटा तो वहाँ श्रीधर को बहुत कुछ उलट-पुलट करवाते देखकर बड़ा हैरान हुआ ! पूछा—अरे आप कैसे ? मा कहाँ हैं ? यह सब क्या होरहा है !

श्रीधर ने मुसकुरा कर कहा—सुना है कि आपने घर को ही संघ का दफ्तर बना रखा है। भारती मा को इस तरह रहने में तकलीफ होती थी। वे हमारे घर चली गई हैं। सामान ठीक से ऊँची जगहों पर जमवाने की आज्ञा मुझे दे दी गई है। अब आपके काम में कोई विघ्न न होगा !

सुशील उस मजाक से और भी परेशान हो उठा। परेशानी जाहिर करता हुआ बोला—अब सच बतादो भाई, बात क्या है!

श्रीधर—खूब! आपके घर की बात मुझे बतानी होगी? अच्छा अब अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं! थोड़ा-सा ख्याल घर का भी रखिए! आप जानते हैं कि बाढ़ आरही है!

इस परेशानी में सुशील को लगा कि बाढ़ घरके दरवाजे पर ही खड़ी है। घबड़ाया-सा बोला—तो क्या सचमुच बाढ़ आगई!

श्रीधर खूब जोर से हँसकर बोला—सो तो आपको रास्ते में मिली ही होगी। मेरा मतलब कहने का यह था कि बाढ़ कभी भी आसकती है। ऐसी हालत में कानों में तेल डालकर घर की तरफ से लापरवाह हो जाना ठीक नहीं। तुम्हारे संघ की ऐसी कोई जायदाद नहीं जिसके बह जाने पर डूब जाने का खतरा हो। इसलिये कुछ घर की ही फिक्र की होती।

श्रीधर को हँसते और बेवकूफ बनाते देखकर सुशील तेज होगया। गुस्से के साथ बोला—देखिये आप बात-बात में संघ को न घसीटा करें। मुझे इस तरह की तानाजनी पसन्द नहीं। मैं नहीं चाहता कि आपको भी कुछ वैसा ही कहूँ!

श्रीधर—अरे भाई शौक से कहो! मैं तो संघ को आपकी ताकत समझता था। इसीसे उसका जिक्र कर देता था। आदमी घबड़ाता तो है अपनी कमजोरी और उससे कही गई बातों से!

सुशील—कुछ भी हो मुझे यह सब पसन्द नहीं!

श्रीधर—अपनी ही पसन्द को सब-कुछ न समझो, नहीं तो वह तानाशाही हो जायेगी। मेरे अच्छे भाई जब तुम''क्या मैं आपको तुम कह सकता हूँ?—मेरे विचारों के साथ-साथ आगे

भी नफरत करने लगते हो तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है ! जाने मुझे आप क्यों भाए ! मैं खुद संघ को अच्छा नहीं समझता, पर इसी से आपको भी बुरा नहीं समझले सकता ! आप अपने और मेरे बीच में ऐसी तो कोई सूरत रखें ही जबकि हम लोग विचारों के विरोध से पृथक् आत्मीयता का अनुभव कर सकें।

सुशील ने इस बात का कोई जवाब न दिया ? वह चुपचाप वहाँ से जाने लगा। श्रीधर ने रोककर कहा—अरे चल कहाँ दिये भाई ! पहले इस काम में मेरी मदद करो और फिर मेरे ही साथ घर चलना ! जब तक बाढ़ का अन्देशा बना है हम सब लोग एक साथ ही रहेंगे।

सुशील ने चुप रहकर ही बात मानली।

❀ ❀ ❀

भारती और सुशील के चले आने से नर्मदेश्वर के घर की चहल-पहल कुछ अधिक हो गई। कहीं अब से कुछ दिन पूर्व भारती ने नर्मदेश्व के यहाँ आकर रहने का निश्चय किया होता तो बस्ती भर में कुहराम मच जाता और तरह-तरह की बातें उड़ने लगतीं। पर इधर शरणार्थियों की बाढ़ ने उनके खाली दिमागों को सैकड़ों तरह की परेशानियों से भर दिया था। कनखल, हरद्वार, ज्वालापुर की तीनों छोटी-छोटी बस्तियों में कोई ६०-७० हजार के करीब सरहदी और पंजाबी शरणार्थी भर गए थे जब कि इन तीनों बस्तियों की आबादी मिलाकर भी इसकी आधी न थी। ये सब सरहदी और पंजाबी मेहनती और काम पसन्द थे। अपने-अपने घरों में चाहे वे कभी कितनी भी शान की जिन्दगी क्यों न गुजारते रहे हों, पर यहाँ आकर

उन्हें मेहनत करके पेट भरने में कोई गिला न थी। बस्ती में जितने भी अच्छे बुरे और मुलेह या टूटे-फूटे बेकार मकान थे वे सब इन लोगों से आबाद हो चुके थे। उन मकान वालों ने यह जानते हुए भी कि ये बेघरबार और असहाय लोग हैं उनसे कस कर किराये वसूल किये और उन गरजमन्दों ने भी अपनी बची खुची पूँजी उन्हें पूजने में आनाकानी न की। वे और उनके बीबी बच्चे जबकि आसमान की छत के नीचे धूप, बारिश और रात की ठंठ गुजारने को मजबूर हो रहे हों तब वे गरजके कुत्तों के आगे झुकते भी न तो क्या? सबसे अधिक विभिन्नता तो इस बात की थी कि ये शरणार्थियों से लम्बे-चौड़े किराये वसूल करने वाले लोग भी वे ही हिन्दू या हिन्दूवादी थे जो कि उस अन्तरिम सरकार को जिसमें कि कांग्रेस की ही प्रधानता थी, या प्रान्त की कांग्रेसी सरकार को शरणार्थियों की पूरी-पूरी सहायता न करने के लिए कोसते थे? शरणार्थियों का कोसना किसी हद तक ठीक भी था। वे लोग बेजार और सताए हुए थे। बाल-बच्चों की मुसीबतों और तरह-तरह की तबाहियों ने उन्हें पागल बना रखा था। पर इन्हीं शरणार्थियों का हिमायत करने वाले हिन्दुओं की बातों में तो कोई तुक न थी। वे हर तरह से अपना उल्लू सीधा करने वालों में से थे।

बस्ती में इतने मकान तो न थे जो यह सारी की सारी तादाद मकानों में समा जाती! इन्हीं शरणार्थियों के दान से जो बड़े-बड़े अखाड़े चल रहे थे उन्होंने अपने बेकार से दो चार मकान खाली करके समझ लिया था कि अपना कर्त्तव्य पूरा कर डाला। वे अपने खुले और बड़े-बड़े मठों में अभी तक चैन

कर रहे थे, बल्कि अगर कोई शरणार्थी किसी तरह काफी पैसा बचाकर यहाँ तक आ सका था तो उसकी दौलत को जल्दी ही राह दिखाने के लिए बड़े-बड़े भंडारे करवा रहे थे। ये सब सताए हुए और परेशान लोग अपनी परेशानियों से दूसरों को भी परेशान करने की कोशिश करते। इनका एक अच्छा खासा हिस्सा धर्मशालाओं और कैम्पों में समाया हुआ था। बड़े-बड़े मारवाड़ियों ने दूर-दूर से आकर कैम्प खोल डाले थे जिनमें हजारों की तादाद में ये शरणार्थी रहते और जीवन निर्वाह की सब सामग्री पाते। देश की गरीब जनता का खून चूँस-चूँस कर कमाये हुए बहुत बड़े धन का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा इस तरह अपना कलंक मिटाने की कोशिश में था!

इसके अलावा सरकारी कैम्प भी थे। शिवालक की तराई में बस्ती से कई मील हट कर खिड़की नाम की जगह पर फौजों की बारकें थीं जो अभी पिछली लड़ाई में बनाई गईं थीं। वहाँ जगह काफी थी, और तम्बू से अधिक आराम देह भी! सरकार शरणार्थियों को उधर ही ले जाने की कोशिश करती, पर कम ही लोग उस वीरान को आबाद करना पसन्द करते। उनका यह असहयोग कुछ हद तक ठीक भी था। बस्ती से इतनी दूर रह कर वे अपनी जरूरत की चीजों या रोजी के लिए रोज पैदल मीलों नहीं नाप सकते थे! फिर भी सरकार की तरफ से वहाँ हर तरह की सहूलियतें दी गईं थीं जिससे जिन्हें कहीं आसरा न मिला वे वहीं गए। रात को वहाँ भयानक शीत पड़ता। हवा न चलने पर मच्छरों की आफत भी खड़ी हो जाती। रात को गुलदार और भगेरे जैसे जंगली जानवरों का भी खतरा रहता।

कौम-बिन्दुओं की तो कोई बात ही नहीं थी। पर सरकार भी मजबूर थी और वहाँ जाने वाले भी मजबूर जिससे दोनों की मजबूरियों ने मिलकर एक दूसरे के काम में मदद पहुँचाई। सारी बस्ती और सभी कैम्पों या शरणार्थियों के केन्द्रों का वातावरण गहरे असंतोष से भरा रहता। यह असंतोष न केवल सरकार की सहायता पर लगाई गई बड़ी-बड़ी आशाओं की विफलता के कारण थी बल्कि परस्पर की थी। शरणार्थी यहाँ के रहने वालों से असन्तुष्ट थे और यहाँ के रहने वाले शरणार्थियों से। यह असंतोष प्रायः छुरेबाजी, या मारपीट की शक्ल में बदल जाता। यहाँ का रहने वाला बात ही कहता रह जाता कि सरहदी का चाकू काम कर जाता। रोज पुलिस केस होने लगे और अस्पतालों में ऐसे हिन्दू घायलों की संख्या बढ़ने लगी जिन्हें कि परेशान हिन्दुओं ने ही घायल किया था। बस्ती के सभी लोग यह देख देखकर परेशान थे। यह परेशानी यहाँ तक बढ़ी कि बहुत से लोग जो आज से पहले नर्मदेश्वर से नफरत करते थे और उसे विधर्मी और पापी तक कहने से बाज न आते थे, नेक सलाह के लिए उसी के पास दौड़ने लगे!

एक दिन रात के वक्त खा पी चुकने के बाद नर्मदेश्वर ने सुशील और श्रीधर की ओर देखकर कहा—अच्छा भाई अब तुम्हीं लोग बताओ कि क्या किया जाए। इस तरह चाकू छुरे चलते रहना तो ठीक नहीं। लोग मेरे पास सलाह के लिए दौड़ते हैं पर मैं क्या मशविरा दूँ। सुशील तुम ही कुछ सोचो भाई। आजकल तुम्हारे संघ का काफी जोर है। शरणार्थी तुम लोगों के पक्ष में भी हैं। क्या तुम्हीं उन्हें समझाने और ठंडे

दिमाग से काम लेने की बात बतलाने की कोशिश नहीं कर सकते।

नीरज आज कल पुनः सुशील से अधिक प्रसन्न रहने लगी थी। वह जिस ढंग से पाली गई थी और जो कुछ देखते-देखते बड़ी हुई थी उससे उसके दिमाग में अपने आपको महत्वपूर्ण समझने का संस्कार बैठ गया था। इसलिए जब कोई भी उसे अपने इस महत्व को समझने का अवसर देता तो वह उसे अच्छा ही लगता। सुशील यह न जानते हुए भी उससे बराबर हार खाता रहता था जो कि नीरजा को निहायत पसन्द थी। इसके विपरीत श्रीधर उसे तेज बुद्धि और तेज जबान की तेज बात कहने वाली लड़की समझते हुए भी उसकी बातों को साधारण बच्ची से अधिक महत्व न देता था। वह उसे बात-बात में जो कड़ुवी बात कह भी जाती उसे उसकी प्रकृति पाप समझकर सह लेता और क्षमा कर देता। पर उसने उसे बड़प्पन कभी न दिया। फलतः जो नीरजा प्रत्येक बात में श्रीधर की विद्या-बुद्धि और सचाई-सादगी की तारीफ करने को तैयार रहती अपने प्रति उसे वैसा आग्रहपूर्ण न पाकर कुछ खिन्न और कुछ असन्तुष्ट हो उठती। इसी असंतोष में वह उसे कड़ी से कड़ी बात तक कह जाती। इधर सुशील के दूर-दूर रहने पर एक बार उसने अपनी इस प्रकृति को रोकी थी और बहुत कुछ ऐसी बातें करने लगी थी जिससे साफ पता चलता था कि श्रीधर उसकी तुलना में कहीं श्रेष्ठ है। पर जैसे ही सुशील जैसा पर उससे कहीं अधिक सुन्दर स्वस्थ युवक आकर फिर से उसके महत्व के आगे झुकने लगा तो वह भी उसका लोभ न छोड़

छोड़ सकी। कोई भी प्रसंग उपस्थित होने पर वह मन ही मन सुशील की ओर हो जाती। आज जब नर्मदेश्वर ने इस मामले में सुशील की सलाह पहले मांगी तो उसे खुशी हुई। उसकी आँखों की चमक देख कर सुशील भी उत्साहित हुआ। उसने कहा—मैं आपकी मदद जरूर कर सकता हूँ, पर असल में कसूर यहाँ के लोगों का है!

नर्मदेश्वर—वह क्या?

सुशील—यही कि ये लोग इनकी मुसीबतों को समझने की कोशिश नहीं करते। सरकार तो इनकी ओर से लापरवाह है ही, पर ये खुद जो कुछ कर सकते हैं उतना भी करना पसन्द नहीं करते।

नर्मदेश्वर—खैर भाई सरकार की बात तो अभी यहाँ आती नहीं। सवाल आपस का ही है। पर मैं भी एक बात महसूस करता हूँ, जिससे साफ पता लगता है कि कसूरवार शरणार्थी भी हैं। भाई उनकी मुसीबतों और परेशानियों से तो कोई इन्कार कर नहीं सकता, पर देखने में आता है कि ये लोग चाहते हैं कि यहाँ के लोग भी ठीक उन्हीं की तरह होकर उनकी तकलीफों को भोगें और महसूस करें। भला यह कैसे ठीक और मुमकिन है। यहाँ जो रहते हैं उनके पास घर है, रोजी का साधन है। वे इन सब पर चाकू नहीं चला सकते! इन्सान हैं, हमदर्दी भर कर सकते हैं।

श्रीधर—पर मैं तो देखता हूँ कि आज स्थिति हमदर्दी की भी नहीं रही! मामले ने एक नई शक्ल ले ली है। समय ही

इसका इलाज करेगा ! सुशील भैया यह संघ के बूते की बात नहीं ।

सुशील तो चुप ही था कि नीरजा विरोध कर उठी—यह आप कैसे कह सकते हैं । मुझे तो बात मामूली लगती है । फिर जब सुशील बाबू यहाँ संघ के सबसे बड़े अधिकारी हैं तो वे इनकी बात क्यों न मानेंगे ।

श्रीधर ने हँसकर कहा यह मत समझो बहन कि मैं सुशील का विरोध कर रहा हूँ, जहाँ संघ का प्रश्न आएगा वे जरूर ही इनकी बात मानेंगे । पर यहाँ जीवन का प्रश्न है । आप लोग देखते ही हैं कि बस्ती भर के लोगों के सभी छोटे-मोटे व्यापार शरणार्थियों के कब्जे में चले गए हैं । पहले यहाँ मुसलमान सब्जी बेचने आते थे, दूध भी वे लाते थे और बहुत से अनाज भी । पर आज कल वे इन शरणार्थियों से इतने भयभीत हैं कि इधर आँख तक करने की हिम्मत नहीं करते । उन सबके धन्धे इन्हीं लोगों ने सम्हाल लिए हैं । यही नहीं मुसलमान कुलियों और तांगे वालों की भी काफी तादाद थी ! प्रायः अब छोटे काम तो उन्हीं के हाथों में थे । लुहार, बढ़ई, मजूर मिस्तरी सभी में वे लोग आगे थे । यहाँ तक कि अच्छे नाई भी वे ही रहे । पर आज उन सब की जगह शरणार्थी ही बने हुए हैं ।......

सुशील उसे और आगे कहने का मौका न देते हुए बोला—आपकी इस भूमिका का इस मसले से कोई सम्बन्ध नहीं । लगता है कि आप इन शरणार्थियों का इतना भी सुख नहीं देख सकते । आप तभी प्रसन्न होते जब कि वे मुसलमान यहीं बने रहते और शरणार्थी भूखों मरते ।

श्रीधर—ऐसा तो मैं कभी न चाहूँगा। मुसलमान भी रहते और शरणार्थी भी अपने धन्धे बढ़ाते, यही सबसे अच्छा होता। इतनी बड़ी आबादी के बाहर से आ जाने पर काम-धन्धे की कमी ही नहीं होती, बढ़ती भी होती है। जीने के लिए जरूरी चीजें ले आदमियों के साथ-साथ बढ़ती हैं और आदमी ही उनकी पूर्ति करते हैं। ऐसी हालत में किसी को हटाकर जमने की जरूरत न थी। पहले जमे लोगों को हटा देने से यहाँ के रहने वालों को नुकसान ही पहुँचा!

नीरजा—कैसे?

श्रीधर—तो इसका मतलब है कि नीरजा बहन भी मेरी बात की कायल नहीं। ठीक। बताता हूँ। पहले इस बस्ती में सब्जी किस भाव बिकती थी, दूध की ही क्या दर थी, तांगे वाले भी कितने पैसे लेते थे और दूसरे धन्धे वाले भी कितनी मजदूरी या दामों पर तैयार हो जाते थे यह सब आप से छिपा नहीं। बस्ती के रहने वालों के लिए महंगाई का बढ़ना हितकर न हुआ! एक ओर तो उनकी रोजी में हिस्सेदार पैदा हो गया, दूसरी ओर महंगाई बढ़ चली।

सुशील—पर आप यह भूलते क्यों हैं कि चीनी और गेहूँ तो इन शरणार्थियों की ही वजह से सस्ता है। आज ये सब इन चीजों के लिए बिजनौर और चंदौसी तक की दौड़ लगाते हैं। ये हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते तो न केवल चीनी ही दुश्वार होती भूखों मरने की भी नौबत आ जाती!

श्रीधर—बिल्कुल ठीक! सही बात से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता! पर इसका भी दूसरा पहलू देखिए। अब

जो बनिए मनमानी कर के चीनी और गेहूँ से सोना बना रहे थे उनके स्वार्थ इनसे टकराने लगे। फलतः उनमें इनके प्रति असंतोष भर गया! आप खुद ही जानते हैं कि यहाँ के सभी लाला लोग संघ में हैं या उससे सहानुभूति रखते हैं; फिर भी जब जीविका का प्रश्न आता है तो उतनी ही सहानुभूति इन शरणार्थियों से नहीं रख सकते। अब बताओ न कि हिन्दूवाद कहाँ गया ?

नीरजा - यह आपने कौन सी तुक जोड़ी। हिन्दूवाद का सवाल ही यहाँ कहाँ आया !

श्रीधर — जरूर आया। बताऊँगा तो आप भी मान लेंगी। पहले आप कुछ और खुलासा करने दें। मैं कहता था कि छोटे काम-धन्धे वालों के साथ-साथ इन बड़े व्यापार चलाने वाले बनियों में असन्तोष फैला। रहे ब्राह्मण। सरहद-पंजाब के दंगों ने उन्हें तो पहले से ही तबाह कर रखा था। हरिद्वार-कनखल के तीर्थ पुरोहित इसी पंजाब और सरहद के दान पर तो जीते थे? पर अब जब दान देने वाले ही भिखारी हो गए हैं तो इन्हें कैसे कुछ देते? आज तो वे सब इन्हीं से मदद की आशा करते हैं। वे सोचते हैं कि उनके पण्डे उन्हें रहने की जगह और दूसरी जरूरी इमदाद करने में उसी तरह बाध्य हैं जिस तरह कभी दान पाने की आशा में रहा करते थे। साफ जाहिर है कि तीर्थ-पुरोहित-समाज वैसा नहीं कर रहा है, कर भी नहीं सकता। इससे शरणार्थी उनसे चिढ़े हैं। और अब ये पण्डे भी क्या करें? मुफ्त की खाने की आदत थी, काम करने का न कभी चाव रहा न तमीज! दूसरे अब रोजी के लिए

जिधर नजर दौड़ाते हैं उधर ही शरणार्थी काबिज हैं। उनके सामने जीवन-मरण का प्रश्न है। इसी से तो पुराने बैर-विरोध भुलाकर सलाह के लिए हमारे पंडितजी के पास दौड़े आते हैं। यहाँ भी उनका हिन्दुत्व पिछड़ जाता है और जीव-जीविका आगे आ जाते हैं। मुसलमान का साथ उन्हें पसन्द था। इस लिए कि तब ये अपनी रोटी के मालिक थे और वे अपनी रोटी के लिए इनके गुलाम! पर अब बात वैसी नहीं रही।

नर्मदेश्वर—तुम ठीक कहते हो श्रीधर। मैंने तुम्हारी बात मान ली! कभी तुम आर्थिक क्रांति की चर्चा करते थे और कहते थे कि हमें अपनी 'क्रांति' का लक्ष्य यहाँ के समाज की बुराइयों का सुधार भर नहीं समझ लेना चाहिए। ये तो ऐसे धब्बे हैं जो समय की आँच में उड़ते जाएँगे। वैसा ही हुआ! अब दान पर गुजर करने का जमाना भाग रहा है। पर यह सब हुआ ही भयानक तौर पर।

श्रीधर—भयानक तो अवश्य है! जैसे कभी-कभी बुरी बात से भी कोई न कोई अच्छाई हो जाती है उसी तरह इन आपस के लोम-हर्षक दंगों की बुराई से यह एक भलाई पनपी। पर मैं इसे भी महत्व नहीं देता। यह तो होना था। आज नहीं तो कुछ देर से होता। जिस बात पर मेरा जोर है वह है अपने-अपने दृष्टिकोणों की परख। साम्प्रदायिक दृष्टि रखने वालों को कुछ भी हो इन सब बातों से सबक लेना चाहिए और उन्हें मान लेना चाहिए कि धर्म का प्रश्न आज सामूहिक जीवन का प्रश्न नहीं रहा। अब तो केवल व्यक्तिगत विश्वास श्रद्धा और भावना का रह गया है और वैसा ही इसका बना रहना शुभ है। फिर

भी जब लोग एक सच बात को न मान कर साम्प्रदायिक नारे लगाते ही रहते हैं तो मुझे दुःख होता है !

सुशील चुप था। विरोध के आधार ही उसे न मिल रहे थे। नीरजा को उसकी चुप्पी पर गुस्सा आ रहा था। पर बेबस थी। श्रीधर की इस विजय को खुद भी तर्क-कुंठित न कर पा रही थी। तब नर्मदेश्वर ने पूछा—तो फिर मैं इन मशविरा लेने आए लोगों को क्या समझाऊँ !

श्रीधर—यही कि बेकार के विरोधों से कार्य न चलेगा। ये चक्कू छुरे ज्यादा दिन नहीं चलने के। जैसे ही उखड़े हुए लोग बस जाएँगे या तन छिपाने की जगह पा जाएँगे यह सब गर्मी भी कम हो जाएगी। फिर यहाँ के लोग भी तो कम-जोर नहीं। तादाद में कम हैं तो क्या ? ये भी तो चाकू की खुरच का जवाब लाठी से सिर फोड़ कर देते हैं। मेरी राय में इन झगड़ों के लिए परेशान न होकर उन्हें समझाना चाहिए कि अब वे पुरुषार्थी बनें। अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दें और हुनर सिखाएँ जिससे वे दूसरों के आसरे पर ही न रह जाएँ। ब्राह्मणत्व का अब वह अर्थ बदल देना होगा जो कि इस पिछड़े हुए जमाने में रहा ! अब कोई ब्राह्मण दान लेकर या पूजा पाठ करता हुआ निमन्त्रण से पेट भर कर ही ब्राह्मण नहीं बना रह सकता। इसके लिए वह पुरुषार्थ और बुद्धि का समान विकास करे। साथ ही यह भी समझ ले कि जब कि बड़े-बड़े विश्व व्यापी युद्ध भी आर्थिक स्तरों से उठकर उसी पर आकर हार मान लेते हैं तो व्यर्थ के संकीर्ण जातिवाद या साम्प्रदायवाद से भी कल्याण नहीं हो सकता। व्यक्ति को साम्प्रदायिक नहीं

सामाजिक बनने की आवश्यकता है। वह भी इस अर्थ में कि खुद जिए और दूसरे को जीने दे। अपनी रोटी आप पैदा करे और दूसरे की रोटी पर आँख न गड़ाए। न ऐसे तरीकों को अपनाए जिससे दूसरों की रोटी पर संकट आए। अपनी रोटी की तरह ही दूसरों की भी रोटी को प्यारी समझे और परस्पर की सहायता से काम करे। परस्परता में पहला और आखिरी असूल आदमियत का हो न कि साम्प्रदायिकता का।

बात चल रही थी कि केला और भारती भी यहाँ आ पहुँची। केला ने श्रीधर को बोलते हुए देख कर कहा—देखो तो बहन भारती, यह लड़का भी कैसा पागल हुआ है। दिन में एक बार तो रोटी खाएगा। जलपान का नाम नहीं। दूध का गिलास जरा बड़ा हुआ तो पेट चल जाता है। इस पर भी रात दिन काम। पढ़ना नहीं तो लिखना और लिखना नहीं तो पढ़ना ? जब यह भी नहीं तो बहस करना और जब बहस करने को भी कोई नहीं तो सोचना।

श्रीधर केला की बात सुनते ही उठकर हंस पड़ा। बोला—वाह मा, खूब कहा तुमने भी। सच ही बोलते-बोलते थक चला था। पर अब फिर ताजा हो गया। कहो तो आप लोगों से भी बहस कर देखूँ।

केला—तुझ से तो वह बहस करे जिसकी हड्डियाँ भी दिमाग का काम दें।

भारती—सच ही इसके दिमाग और शरीर को देख कर तो यही लगता है कि यह समूचा ही अक्ल नाम के किसी सूक्ष्म तत्व का बना हुआ है।

इस बार सभी हँसे। नीरजा भी हँसे बिना न रही। श्रीधर ने उसे हँसते हुए देख कर कहा—भारती मा आपकी एक बात ने बहुत बड़ा काम किया। नीरजा बहन मेरी बातें सुन-सुन कर गुस्सा ही बढ़ाया करती हैं। आपने कम से कम इन्हें भी हँसाया।

नीरजा फिर से गुस्सा न कर सकी। नर्मदेश्वर ने सबके शान्त हो जाने पर कहा—अरे तो भारती बहन आप खड़ी क्यों हैं? बैठिए न।

केला—देखा बहन! मुझे तो बैठने को पूछा नहीं। जैसे घर के आदमी थकते ही नहीं कभी।

नर्मदेश्वर ने मुसकुरा कर कहा—जब तुम्हीं मेरे उठने बैठने, सोने जागने की फिक्र करती हो तो मैं कैसे तुम्हारे प्रति चिन्ता दिखा कर अपने को जरूरत से ज्यादा बड़ा कर डालूं। तुमसे तो आज्ञाएँ पाता हूँ, फिर आज्ञा करूँ कैसे।

केला कृतार्थ हो गई। भारती ने बैठते हुए कहा—तो अब आप हमें कब बिदा करेंगे!

नर्मदेश्वर जो अब शायद गंभीरतापूर्वक सोच ही न सकता था, फिर से मजाक कर उठे—अब हम पर से बिदा तो सिर्फ नीरजा होगी? आप भला कैसी बातें करती हैं।

नीरजा का मुँह लाल हो गया। भारती ने उचित अवसर समझ कर कहा—तो इसे मेरे साथ ही बिदा कर दो न।

केला—बड़ी स्वार्थिन हो बहन! कुछ मेरा भी तो ख्याल करो। ऐसा अभी न होने दूँगी मैं। सुशील से कहो न कि किसी को बिदा करा लाए।

भारती के मन की बात रह गई। उसे किसी ने न समझा। केला की बात पर सुशील के झेंपने की बारी थी। वह चुप ही रहा। श्रीधर बोला—अब तो आप लोग सिर्फ बिदा ही बिदा की बातें करने लगे। मुझे इस तरह की चर्चा से उतना ही परहेज है जितना कि दुबारा खाने से। आप लोग या तो कोई और बात करें नहीं तो मैं ही अपने कमरे के लिए बिदा लूँ।

नीरजा ने श्रीधर को शह देते हुए जैसे कहा—आखिर बिदा से हो गई न आपकी भी मात! आपने मान ही लिया आखिर बिदा को?

श्रीधर—लो सुन लो मा! नीरजा बहन बिदा से सहमत हुई बैठी हैं। अब आप इसकी जल्दी ही फिक्र करें।

नीरजा इस पर कुछ न कह सकी। सभी हँस रहे थे जिससे किसी ने उसकी लजाहट पर ध्यान तक न दिया! सुशील ने जाने की बात उठाते हुए कहा—ठीक तो कह रही हैं मा, पंडित जी! अब आप हमें जल्दी ही जाने की आज्ञा दे दें।

नर्मदेश्वर—भाई कह तो दिया कि आज्ञा का काम हमारी केला का। हम तो आज्ञा मानने पर हैं। पर यह तो पूछ आते कि गंगा फिर से बढ़ तो न आवेंगी!

श्रीधर—यह पूछने के लिए तो हिमालय जाना पड़ेगा। और मैं समझता हूँ कि इस काम के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति मैं ही हूँ!

केला की मा का मर्म जैसे इस विनोद से दुःख गया।

बोली—शायद इसी से कि तू जो सब का बड़ा बूढ़ा हो गया। वैराग्य का समय आ गया।

श्रीधर ने केला को सजीव मातृत्व के रूप में देखा और अपने सौभाग्य पर मन ही मन हर्षित होकर चुप चाप सिर झुका लिया। भारती को अगले दिन अपने घर के लिए प्रस्थान करने की स्वीकृति भी मिल गई।

ग्यारह

आजादी अंगारों का फूल है। चिन्गारियाँ इसकी केसरें हैं और लहकती शिखाएँ पंखुड़ियाँ। इसके ताप और जलन का वही सुख है जो गन्ध और रस का। मामूली फूल मिट्टी से पैदा होता है और भँवरों की खुशी के लिए आसमान में किसी नन्हें से वृक्ष पर झूलता, झूमता, मुसकुराता, हँसता फिर मिट्टी में ही जा मिलता है। जिस थाँवले में उसने जन्म लिया था उसी में उसकी कब्र बन जाती है। जिस गोद में वह खिलकर मुसकुराया था उसी में उसकी चिता सज जाती है। पर आजादी का फूल इन्सान के स्वाभिमान की धरती पर उसी के खून से सींचा जाकर पनपता है। इसके लोभी भँवरे इसका रस-पान कर उड़ जाने वाले स्वार्थ-साधक नहीं होते। ये भँवरे भी कुछ निराले ही होते हैं, जो इस फूल की गन्ध तक पर इस तरह कुर्बान होते हैं जिस तरह शमा पर परवाने। हम अपनी भाषा में इन भँवरों को आजादी के दीवाने या मतवाले शहीद कहा करते हैं। सच ही जहाँ-जहाँ इनका खून गिरता है वहाँ-वहाँ आजादी मुसकुराने लगती है। इनकी मौत से गुशनुमा

जिन्दगी बहार का मजा लूटती है। जिस तरह् चाँद की चाँदनी, सूरज की धूप, पानी की शीतलता, हवा के प्राण, फूलों की सुवास, अन्न का जीवन सदा दूसरों के लिए होता है इसी तरह इनकी जिन्दगी, जिन्दगी की हलचलें और किसी नायाब असूल के लिए निसार हो जाना सभी-कुछ तो दूसरों के लिए होता है। इनकी तो सिर्फ एक टेक होती है कि स्वदेश जीवित है तो कब कौन मरता है! युवक की जिन्दगी इनकी जिन्दगी है। स्वदेश की खुशियाँ इनकी खुशियाँ हैं। इसीलिए ये अपनी जिन्दगी, अपनी खुशियाँ, देश की जिन्दगी और खुशियों के लिए ही निछावर करते रहते हैं।

हिन्दुस्तान की आजादी का फूल भी इसी तरह शहीदों के खून से खिला। बन्दिनी भारतमाता स्वतन्त्र होकर भी उन खून के धब्बों को सुहागचिन्ह की तरह धारण करती रही। पर उसके सुहाग की खुशियाँ एक बारगी जहालत के बहाए खून के दरिया में शराबोर होगईं। यह भी खून आदमियों का ही था, देश के लालों का था। पर यह आजादी के लिए नहीं, प्रेम और कुर्बानी के लिए भी नहीं बल्कि नफरत की तुष्टि के लिए जहालत की फरियाद पर बहाया गया था जो सूखते ही काला पड़ गया। तब दुनियाभर के लोगों ने ताज्जुब से देखा कि हिन्दुस्तान की लाल धरती काली पड़नी जारही है, जैसे धर्म पर पाप की छाया पड़ चुकी हो। फिर भी जो आजादी की लाली बरकरार रह सकी सो उन्हीं लोगों के सबब जिन्होंने खुशी-खुशी अपने सर्वस्व की पूर्णाहुति देख ली !

आजादी के त्योहार को खूब धूम-धाम से मनाने के लिए

आग्रह करता हुआ जब श्रीधर अपनी बस्ती के हर मुहल्ले, आस-पास के हर गाँव और टीबड़ी भामापुर तक फैले हर शरणार्थी शिविर में घूम रहा था तब भी उसने पूर्णाहुति की यही एक बात कही। शरणार्थी और उनसे छलभरी सहानुभूति रखने वाले संघी आज़ादी के दिन किसी भी तरह की खुशी का इज़हार करने के पक्षपाती न थे। बौखलाए हुए शरणार्थी श्रीधर को घेर लेते। कोई-कोई उसे उठाकर पटक देना चाहते तो कोई गालियों और फजीहत की बातों में अपने दिल की आग को प्रगट करने से बाज न आते! वे उससे चिल्ला-चिल्लाकर पूछते—बतावें कॉंग्रेसी, हम किस आज़ादी के लिए खुशियाँ मनाएँ। क्या इसी बर्बादी का नाम आज़ादी है कि आजकल घर से बेघर हुए, शाह से फकीर हुए, इज्जत से बेइज्जत हुए। हमारे लिए आज कहीं हमदर्दी नहीं। जिन्दगी के तमाम रास्ते हमारे लिए बन्द हो चुके, फिर तू ही बता कि हम इस आज़ादी का शृंगार करें कि इसकी चिता जलाकर खुद भी जल जाएँ!

पन्द्रह अगस्त आज़ादी का दिन था। स्वातन्त्र्य सप्ताह मनाने के लिए कनखल में सभी दलों, वर्गों और जाति-समुदाय के व्यक्तियों की एक महोत्सव समिति बनी थी! पूरा एक सप्ताह का कार्यक्रम था जिसमें प्रचारात्मक और रचनात्मक सभी कुछ था। श्रीधर उक्त समिति का प्रचारमंत्री था। असन्तुष्ट और प्रतीकार से भरे शरणार्थियों के कारण बस्तीभर का वातावरण बड़ा ही अशान्त और अनिश्चित था! कोई अनुमान न कर सकता था कि कब कौन-सा विघ्न खड़ा हो जाए। उस उत्तेजित शरणार्थी वर्ग को अनुकूल बनाए रखना सबसे बड़ी समस्या

थी। यद्यपि ऐसे अवसर पर उपद्रवियों को गोली से उड़ा दिये जाने की राजाज्ञा प्रचारित हो चुकी थी, पर आजादी की सच्ची अनुभूति और उसकी खुशी के इजहार के लिए यह बड़े भारी कलङ्क की बात थी! अन्त में सभी प्रकार के अन्देशों के होते हुए भी श्रीधर ने खुशी-खुशी प्रचार का यह काम अपने हाथ में लिया! नर्मदेश्वर उस महोत्सव समिति का प्रधान था; फिर भी वह न चाहता था कि प्रचार का खतरे से भरा काम श्रीधर ही अपने हाथों में ले! पर वह चाह कर भी उसे रोक न सकता था। उसने अपना भय केला पर अवश्य ही प्रकट कर दिया! जिस रूप में नर्मदेश्वर ने केला के सामने ये सब बातें रखीं वह घबड़ा उठी। उस समय श्रीधर घर पर न था। छापेखाने में ऐसे ही किसी काम में व्यस्त था। उसने उसे तुरन्त नौकर से बुलवा भेजा!

नर्मदेश्वर के परिवार में भोजन श्रीधर के आने के बाद से दोपहर को कुछ देरी से होने लगा था। श्रीधर एक ही बेला खाता था, इसी से ऐसी व्यवस्था की गई थी! श्रीधर को जब खाने के वक्त से काफी जल्दी घर बुलाया गया तो उसे अचरज हुआ! अन्त में यही सोचकर कि शायद किसी काम से आज यह जल्दी की गई है। हाथ के काम को तुरन्त निबटाकर घर आया। आते ही उसने हँसते हुए पूछा—आज तो बड़ी जल्दी की मा तुमने! अभी तो मुझे भूख भी नहीं लगी!

केला को उसकी इस सरलता से और भी दुःख हुआ? बोली—तू तो समझता है कि मैं तेरे खाने के सिवाय और तेरी किसी बात की फिक्र ही नहीं करती! बेटा मैं यह पूछती हूँ कि

तू हमेशा क्या इसी तरह मनमानी करता रहेगा। कभी हमारी भी तो सलाह ले लिया कर ?

श्रीधर कुछ न समझकर बोला—क्या कह रही हो मा! तुम्हारी आज्ञा तो सिर माथे! ऐसा तो मैंने कुछ नहीं किया जो कि आपको नापसन्द हो सकता।

केला—जैसे तुझे मेरी पसन्द-नापसन्द का बहुत ही ख्याल है। मैं तुझसे पूछती हूँ कि क्या यह ढोल पीटने का काम और कोई न कर सकता था!

श्रीधर ने ताज्जुब से पूछा—मैं तो कुछ नहीं समझा मा कि तुम किस ढोल की बात कह रही हो!

केला—ढोल यही, जिसे तू प्रचार कहता है! तू किस बात का प्रचारमंत्री बना है। क्या प्रचार करेगा भलातू! मैं कहती हूँ कि तू आज ही इससे स्तीफा देदे!

श्रीधर—सचही मा भूल हुई जो मंत्री बनकर भी आपको न बताया! शायद इसी से आप नाराज हैं। पर अब अपदस्थ करने का दंड तो मुझे न दीजिए। क्षमा चाहता हूँ!

केला—तू इसे मजाक समझता है श्रीधर! अरे कभी-कभी दुनिया को देखते-देखते अपनी ओर भी देख लिया कर! तेरी नई-नई बातों से वैसे ही सभी देशी-परदेशी चिढ़े बैठे हैं। इस पर भी तू बाज नहीं आता वैसा ही करने से। जब तू बौखलाए हुए शरणार्थियों में जाकर आजादी और उसकी खुशियों की बातें करेगा तो तू ही बता कि उन बर्बाद लोगों के गरम खून में कैसी हरकत होगी! क्या तू यही चाहता है कि किसी दिन वे

तुझे गंगा में फेंक दूं और मैं यहाँ इसी तरह तेरे इन्तजार में बैठी रोती रहूँ। तेरा पता तक भी न चले!

कहते-कहते केला का गला भर आया। आँखें छल-छला रही थीं। श्रीधर की भावुकता भी मन ही मन रो पड़ी पर वह खुद हंसता हुआ बोला—तुम भी अजीब बातें करती हो मा! मैं शरणार्थियों या किसी से भी झूठी बातें कहने तो नहीं जाऊँगा। जो मानने लायक होगा वही कहूँगा और वही करूँगा! सही बात के लिए तो हम लोग अंग्रेजी साम्राज्यशाही की बेजोड़ शक्ति से टक्कर लेते रहे। या तुम्हारा जो श्रीधर सन् ४२ में अँग्रेजी फौजों की गोलियों से न मरा वह आज अपने ही भाइयों की दो चार गरम-नरम बातों से मर भी कैसे सकता है। कुछ भी हो, ये सब हमारे अपने भाई हैं। जब हम उनसे विनय करेंगे तो जरूर ही हमें वे समझने की कोशिश भी करेंगे। आजादी उन लोगों को भी हम सबसे कम प्यारी नहीं, पर समय का फेर है कि जिस स्वतन्त्रता के लिए आज तक वे खुद अपना सिर कटाते रहे हैं आज उसी के आगे वही सिर झुकाना तक नहीं चाहते!

केला ने कहा—मैं यह सब-कुछ नहीं जानती। मा हूँ और माकी सबसे बड़ी जीत इसी में है कि वह बेवकूफ बनी रहे। मैं भी बेवकूफ बनी रह कर आज तुझ से अक्ल का सौदा न करूँगी। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर तू मेरी बात न मानेगा तो खुद तेरे आगे-आगे हो लूँगी।

श्रीधर कुछ गंभीरतापूर्वक बोला—मा, तुम आशीर्वादों की वर्षा करती हुई यहीं घर में बैठी रहो। तुम्हें तो हमारे आगे

होने की जरूरत तब महसूस होनी चाहिए जब कि हम खुद पिछड़ रहे हों। पर हम तो तुम्हारे संकेत पर ही आगे बढ़े जा रहे हैं।

केला—लेकिन आज मैं यही नहीं चाहती।

श्रीधर—ऐसा न कहो मा! अपने बेटे को बुजदिली और कायरता का सबक न दो! अगर दुनिया में कहीं कुछ भी सचाई हो तो मुझे उसी की खोज करते-करते या तो उसे हासिल करने दो अथवा खुद झूठ की तरह मिट जाने दो। बोलो मा, आज तुम्हारा ही निर्णय सर्वोपरि होगा! तुम अपने बेटे के लिये सचाई की मौत पसन्द करती हो कि झूँठ की जिन्दगी!

केला के जो आँसू अभी तक पलकों-पर ही झूल रहे थे मेह की तरह बह चले। उसने रोते-रोते कह दिया—जाओ बेटा वही करो जो यश का मार्ग हो। मैं मा हूँ। कभी-कभी ममता ही मा की कमजोरी हो जाती है। तू उस कमजोर मा की बात न सुन! पर अगर मैंने यह सुना कि तू विरोधियों की शक्ति और उनके त्रास से सत्य का नारा छोड़कर भाग आया तो समझ लूँगी कि यह श्रीधर मेरे लिए कोई अजनबी ही था!

इसके बाद श्रीधर खुशी-खुशी प्रचार के काम में जुट गया! पहले ही दिन उसने अनुभव किया कि यह काम उतना आसान नहीं जितना कि वह समझता रहा! जब वह शरणार्थी शिविरों में पहुँचता तो खुद उसका दिल टुकड़े-टुकड़े होने लगता? उसकी समझ में ही नहीं आता कि उस तबाह और अभावों की दुनिया को कैसे मंगल और रंजन की सीख दे! जिस आजादी के नारे लगाने के लिए वह चाव से इधर आया था

वह बर्बादी का दूसरा पहलू देखकर धुँधली पड़ने लगती। वह उन नंगे, भूखे, सताए हुए असहाय लोगों की भीड़ में खड़ा हुआ सोचता कि "आखिर आजादी अपने आप में ही क्या है! क्या सिर्फ गोरी हुकूमत की जगह काली हुकूमत का आजाना ही आजादी है? हिन्दुस्तानियों के दिए हुए संताप क्या अंग्रेजों के दिये संतापों से अधिक मधुर होंगे! यह देश की धरती की आजादी तो हुई मगर देश के इन्सानों की तो नहीं। तो असल में यह आजादी चाहिए किस लिए, इस धरती के टुकड़े के लिए कि इसके वाशिन्दों के लिए? भारतमाता, वही भारतमाता जिसके कि नारे हम बुलन्द करते हैं, है क्या! आसमान की छाया यह धरती कि खुद इसके निवासी! आज अपनी सारी आर्थिक बुनियाद खत्म करके ये लोग आजाद हुए! पर किस लिए? क्या यही देखने को कि खुद भूखे रहकर अपने बच्चों को भूखों मरते देखते रहें! आखिर आजादी हम सबकी मुसीबतों के लिए कौनसा हल लारही है।"

यथार्थ की ठोकर से उत्तेजित भावुकता के प्रवाह में बहता हुआ श्रीधर यही सब सोच रहा था जबकि फिर किसी ने भीड़ से उसी तरह चिल्लाकर पूछा—चुप क्यों हैं वे! आज हम इस तरह बेबसी की मौत मर रहे हैं। भला क्या आजादी इसी मौत के लिए थी!

यह दूसरी ठोकर लगी! श्रीधर का मूर्छित-सा दिमाग होश में आता जान पड़ा। उसने गले को अच्छी तरह साफ करके धीरे-धीरे कहना शुरू किया—नहीं! आजादी तो सिर्फ जिन्दगी के लिए है। पर जिस बात को आज आप लोगों ने भूल से मौत मान लिया है, वह मौत है कहाँ।

भीड़ में इस तरह की बातें सुनने का धैर्य न था ! तभी एक लम्बे-तड़ंगे पागल-से सरहदी ने लोगों की आड़ चीरते हुए आगे बढ़कर श्रीधर को गले पर से पकड़ते हुए कहा—अभी शायद तूने मौत देखी नहीं ! आ आज तुझे वह भी दिखादें।

धीरे-धीरे उसकी अंगुलियों का दबाव श्रीधर के गले पर बढ़ता गया ! श्रीधर ने उस विक्षिप्त-सी आकृति को देखकर धीरे-से आँखें बंद करलीं। फिर घुटते गले से ही कहा—मुझे मौत दिखाना ही चाहते हो तो दिखा देना, पर पहले मेरी एक बात तो सुनलो !

सरहदी जिसने निर्विरोध भाव से अपने सगे-सम्बन्धियों को अपने देश में जालिमों के हाथों से मरते देखा था, जो खुद अपनी बन्दूक की ताकत से जान बचा सका था श्रीधर को निरीह की तरह न मार सका ! उसके हाथों की सँड़ासी ढीली पड़ गई। फिर भी उसने नफरत से कहा—हमें मारने वालों ने भी हमारी बातें न सुनी थीं, फिर हम ही तेरी बातें क्यों सुनें !

इतना कहकर वह उसे छोड़कर बिल्कुल अलग जा-खड़ा हुआ। श्रीधर ने साँस लेकर कहा—मेरे दोस्तो चाहे आज तुम मेरी बातें न मानो। फिर भी मैं एक बात कहूँगा ? हम में से हर कोई जिन्दगी को अपनी-अपनी मौत से बाँधकर बहुत छोटी कर डालता है। आजादी की जिन्दगी किसी एक व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के बीच की छोटी-सी अवधि कभी भी नहीं। आजादी की जिन्दगी का ताल्लुक तो देश की जिन्दगी से है, देश की उन सभी जिन्दगियों के प्रवाह से जो सतत पैदा होती हैं, मिटती हैं और फिर भी खत्म नहीं होतीं। इसीलिए खत्म नहीं होतीं कि

देश जो बचा रहता है। जब आप लोग पूछते हैं कि क्या हमने आजादी इसी मुर्दा जिन्दगी या मौत के लिए चाही थी तो मैं कहने के लिए मजबूर हो जाता हूँ कि नहीं! आपकी आजादी उगते हुए जीवनों और कभी न समाप्त होने वाले जीवन-प्रवाह के लिए है। यदि ऐसा न होता तो देश और उसकी आजादी के नाम पर कभी कोई अपने आपको निछावर न करता! शहीदों का जिक्र ही किसी इतिहास में न होता! कोई शहीद ही न होता! पर बात तो एकदम से इसकी उल्टी है! जो लोग यह भी नहीं जानते कि मरने के बाद उनका क्या होगा वे ही आजादी के लिये मर मिटते हैं। उनका विश्वास होता है कि हमारे मर मिटने से स्वदेश तो कभी नहीं मिटता, बल्कि हमारी आजादी के लिए हुई मौत आने वाली जिन्दगियों को शक्ति देगी। अगर तुमने देश की आजादी का मतलब सिर्फ व्यक्ति की खुशी और जिन्दगी से समझ लिया हो तो अपनी बातों का जवाब उन सब शहीदों की मौतों से जाकर लो जिन्होंने जीवन को हँसते-हँसते मिटा दिया! आप अपने बच्चे को इसलिए चाहते हैं क्योंकि उसमें आपकी नई जिन्दगी चमकती और पनपती है। आप उसी बच्चे के लिए इसलिए मुसीबतें भोगते हो क्योंकि अपनी-अपनी जिन्दगी का किनारा ठीक अपने ही तक नहीं देखते। फिर जिस जिन्दगी में हर लहर के बाद दूसरी लहर आने वाली हो उसका किनारा आप मान भी कैसे लेते हैं। आप जब इस आजादी को सिर्फ अपने लिए समझते हैं तो इसका एक किनारा खुदको मान लेते हैं। पर यह तो गुनाह है। आपकी सन्तति आपको अमर रखती है उसी अमर सन्तति के

लिए आजादी के किनारे की भी कल्पना मत करो। आज आपने इस आजादी को हासिल करने में जो तकलीफें उठाईं वे केवल आपकी ही नहीं रहीं। यह इतना बड़ा वाकया है कि इतिहास इसे भूल नहीं सकता। इतिहास ही आपके कष्टों को देश के कष्ट के रूप में अङ्कित करेगा जिसे पढ़कर आने वाली पीढ़ियाँ भी आपकी कुर्बानियों और बलिदानों को भूलेंगी नहीं। उन सबको आपपर फक्र होगा और वे सब आप से ईर्ष्या करेंगे। वे सब अपने आपको आप लोगों से छोटा महसूस करेंगे। आपके इस सुख-दुःख, इस जीवन-मृत्यु का आपसे ही सिर्फ वास्ता कहाँ रहा। यह तो देश का सुख-दुःख, देश की जीवन-मृत्यु, देश ही का सब-कुछ होगया। अब आप ही अपने महत्व को समझें।

लोगों में इस बात का काफी असर हुआ। जो समझ सके वे वैसे मान गए और जो समझ भी न सके केवल प्रभाववश चुप रह गए। पर इसके बाद श्रीधर का मन किसी भी तरह के प्रचार में न लगा। उसे इस बात की बहुत अधिक शर्म थी कि वह आज तक कभी एक दिन के लिए भी तो इन लोगों के सुख-दुःख की बात पूछने न आया और जब आया तो आँखों पर पट्टी बाँधकर सिर्फ खुशी और जोश की बातें करने। उसके चुप हो जाने पर धीरे-धीरे चारों तरफ जमा लोग अपनी अपना असन्तोष बढ़ाए हुए खिसकने लगे। थोड़ी देर में वहाँ उसके आसपास सिर्फ दो-चार लोग ही रह गए उनमें से एक नौजवान ने कहा—हम लोगों ने आपसे जो बर्त्ताव किया उसके लिये हम बहुत अधिक शर्मिन्दा हैं।

यह कहने वाला सरहदी ही था। श्रीधर ने उसकी हमदर्दी से भरी और शर्म से झुकी निगाहों को देखा। उसने कहा—मैं खुद शर्मिन्दा हूँ भाई! मैंने आज तक तुम लोगों की एक भी तकलीफ को समझने या दूर करने की कोशिश नहीं की। सच ही हम लोग काम की बातों से एकदम बेखबर रहकर बेकार की बड़ी-बड़ी बातें करते रहे। पर अब हम से यह भूल न होगी!

सरहदी नौजवान पर इस बात का जादू का सा असर हुआ। उसने कुछ उत्साह से कहा—नहीं, आप ऐसा न कहें। आप लोगों ने हमारे लिए बहुत कुछ किया। यह तो हो नहीं सकता था कि आप अपने घर हम लोगों के लिए खाली कर देते और खुद सड़कों की पटरियों और पेड़ों के नीचे जा बसते! हम लोग भयानक मुसीबतें भोगकर आए थे? हमारा दिमाग परेशान था। सोचने-समझने का माद्दा जैसे रहा ही न था। इसीलिए आप सब लोगों को भला-बुरा कहते रहे! पर मेरा यकीन है कि जब आप इस सब नकल के अन्दर छिपी हमारी असलियत देखेंगे तो जरूर ही मान लेंगे कि हम इतने बुरे आदमी नहीं! जिस शख्स ने आपको गलेपर से पकड़ा वह मेरा बाप है। उसके लिए क्या आप मुझे माफी न देंगे।

इतना कह कर वह नौजवान श्रीधर के पैरों की तरफ झुक गया! श्रीधर ने तेजी से पैर पीछे हटाकर उसे छाती से लगा लिया। दर्द में खिलती हुई खुशी के साथ बोला—जो हुआ सो तो हुआ ही पर अब यह दूसरा गुनाह तो न करो भाई! तुम मुझे अपना नाम बताओगे।

सरहदी ने कहा—जुगल!

श्रीधर—तो मुझे भी जान लो ! मैं श्रीधर हूँ।

जुगल—मेरे बड़े भाई आज तो तुम मुझे एक पीर की तरह मिल गए। कभी मैं खुद लालकुर्ती का एक सिपाही था। आप ही जैसे मेरे उसूल थे। पर समय की चोटों ने हमें डगमगा दिया ! हमने जो जो देखा और जो जो भोगा वह इतना भयानक और जलील था कि हम अपने रहनुमाओं तक को भूल गए। पर आज तुमने आकर जैसे फिर से हमें याद दिलाई। अब हमें फिर से डाक्टर खान और बादशाह खान याद आ गये, वे ही हमारे नेता ! इनकी सीखों और उपकारों से हम कभी मुक्त न हो सकेंगे ! दुःख तो इसी बात का है कि कुछ अर्से के लिए यह सब भूल जाने का पाप कर ही बैठे ?

जुगल की आँखें तर हो गईं। श्रीधर ने हमदर्द दोस्त की तरह कहा—तो अब तुम आँसू न बहाओ भाई। देखो इस मामले में मैं भी बड़ा कमजोर हूँ। कहीं ऐसा न हो कि अपने आँसू भी छिपा न सकूँ।

जुगल ने उसकी बात सुनकर भी ऐसे कहना शुरू किया जैसे कुछ सुना ही न हो—भाई तो तुम विश्वास रखो। हम सब आजादी का त्यौहार मनाएँगे। जिस तरह भी होगा गा-बजाकर, नाचकूद कर मनाएँगे ! उस दिन के लिए हममें से हर कोई तरसता रहा है ! दुःख इसी बात का है कि आज हमारे घर हमारे अपने न रहे। फिर भी सब्र है कि हिन्दुस्तान की जमीन हिन्दू मुसलमान के नाम पर बँटकर भी हिन्दुस्तान की ही रही ! अँग्रेजों के मनहूस और गुनहगार कदम तो यहाँ से हटे ! अब तुम दूसरे कैम्पों का भी दौरा करो ! पर अब मैं

तुम्हें इस तरह अकेला न जाने दूँगा ! आजकल हम लोगों के दिमाग ठिकाने नहीं, फूल-सी जिन्दगी को भी हँसते हुए मसल दे सकते हैं। इस सबका सामना करने के लिए मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।

श्रीधर ने उसके सहयोग का अभिनन्दन करते हुए कहा—मुझे खुशी हुई भाई कि मेरी बात को तुम जैसा कोई एक तो समझ सका ! पर अब आज मैं और कहीं न जाऊंगा ! मुझे पहले तुम अपने कैम्प के ही हर एक आदमी से मिलाओ। मैं तुम लोगों को कोई भी सीख देने से पहले तुम्हारी मुसीबतें समझ लेना चाहता हूँ।

इस बात पर जुगल ने निहायत खुशी जाहिर की ! अभी तक वहीं खड़े दो-चार अन्य जन भी श्रीधर को कैम्प दिखाने में उसके साथ हो लिए। जैसे-जैसे श्रीधर कैम्प के एक एक आदमी से मिलता, बूढ़ों-नौजवनों, औरतों और बच्चों के पास से गुजरता उसके दिमाग में उन सबकी तसवीरें अपनी पूरी-पूरी मुसीबतों की कहानी के साथ अंकित हो जाती। धीरे-धीरे उसके बोल गूंगे हो गए, और जब वह उनमें से किसी से दो हमदर्दी की बातें भी करना चाहता तो ओठ हिल तक न पाते। वह यह सब देख कर महसूस कर रहा था कि इन लाखों करोड़ों शरणार्थियों की जीवन-समस्याओं को हल किये बिना किसी भी तरह आजादी की खुशियाँ मनाना गुनाह होगा। हम आजादी का दिन उत्सव की तरह सिर्फ धूम-धाम से मनाएँ पर नहीं बल्कि पर्व की तरह पूजें और उस दिन इन्हीं ध्वंसों से देश के उज्ज्वल निर्माण की शपथ भी लें। पर एक एक

शरणार्थी जो आज उसके सामने अपार कष्टों और विडम्बनाओं की जीती जागती दर्द और पश्चाताप से भरी तसवीर की तरह खड़ा था उसे वह कुछ न कहने देता जो कि वह उन्हें महसूस कराना चाहता। उसके दिल-दिमाग पर जैसे सर्द बर्फ की परतें ही परतें पड़ती गईं।

यह कैम्प कुम्भ और अर्द्ध कुम्भ के पर्व पर आने वाले साधुओं की छावनी में पड़ा हुआ था। इसका घेरा इतना बड़ा था कि एक हिस्से की हलचल का जल्दी से दूसरे हिस्से में पता तक न चलता था। इसी तरह बराबर एक एक तम्बू को देखता और उसके रहने वालों से मिलता हुआ श्रीधर जब छावनी के दूसरे सिरे पर पहुँचा तो वहाँ उसने संघ के झंडे के नीचे बहुत से लोगों को जमा देखा। जुगल नहीं चाहता था कि श्रीधर वहाँ भी जाए। इन लोगों से खुद उसी के विचार मेल न खाते थे और वे सब बराबर उसे भला बुरा कहते थे। फिर इसमें तो कोई शक न था कि उनमें से कोई भी श्रीधर की बात सुनने और समझने को तैयार न होगा बल्कि उसे देखकर झगड़ा ही बढ़ाएँगे जब श्रीधर वहाँ जाकर रुक ही गया तो जुगल ने बड़े ही आग्रह के साथ कहा—अभी रुकिए नहीं, हमें बहुत सी जगहें देखनी हैं और दूसरे कैम्पों में भी जाना है।

श्रीधर ने कहा—दूसरे कैम्पों के लिए तो मैं आज पहले ही मना कर चुका हूँ।

जुगल—सो तो ठीक है, फिर भी यहाँ रुक कर क्या करियेगा! इनकी बातें तो आप जानते ही हैं? चलिए उधर के तम्बुओं को देख आएँ।

श्रीधर से जुगल की घबड़ाहट छिपी न रही। मुसकुरा कर बोला—घबड़ाओ नहीं भाई। मैं इन सबसे लड़ने नहीं आया। मौका देंगे तो समझने-समझाने की ही बातें करूँगा। हमें अपने विरोधियों की बातों को भी सुनने-समझने के लिए तैयार रहना चाहिए! ऐसा न करने से भी गलतियाँ हो सकती हैं।

श्रीधर के साथ साथ जुगल भी वहाँ रुक गया। एक एक वक्ता झंडे के नीचे आकर खड़ा होता और बहुत-सा विषवमन करके बैठ जाता। उनका उद्देश्य कांग्रेस को गालियाँ देने और मुसलमानों के विरुद्ध बहुत सी भड़काने वाली निराधार बातें करना होता। श्रीधर की दृष्टि अचानक सुशील पर भी जा पड़ी। सुशील झंडे के पास ही बैठा था। उसने भी श्रीधर को देखा। दोनों एक दूसरे को अजनबी की तरह देखकर क्षण भर बाद ही विरक्त हो गए।

इसके बाद जैसे ही भाषण देने वाला अपना व्याख्यान पूरा करके अपनी जगह जाकर बैठा सुशील बोलने के लिए आ खड़ा हुआ। उसके कहने के ढंग और उतावली से लगता था कि उसके मन में कुछ बातें उमड़-घुमड़ रही हैं जिन्हें वह सिर्फ श्रीधर के उद्देश्य से कहना चाहता है। उसने बड़ी ही उत्तेजनापूर्ण शैली में बोलना शुरू किया—

"भाइयो, आज हमें सब बातें भूलकर इस भगवे ध्वज के नीचे आ जाना चाहिए! यही एक ऐसा ध्वज है जो पाकिस्तान की स्वीकृति के बाद भी अखण्ड-भारत का प्रतीक है? यही एक ऐसा झंडा है जो हिन्दू और हिन्दू संस्कृति का सहारा है। इस एक झंडे के नीचे ही भगवान रामचन्द्र से लेकर छत्रपति

शिवाजी तक और समय समय पर उसके पश्चात भी हिन्दुत्व प्रबुद्ध रहा है और हिन्दू संस्कृति देश पूज्य रही है। आज छल से केन्द्र को हस्तगत रखने वाली काँग्रेस इस झंडे को मिटाकर हिन्दुत्व का ही सर्वनाश करना चाहती है! हम लोगों को अशोक-चक्र का भेद दिला कर उसी झंडे को राष्ट्र का झंडा मानने के लिए विवश किया जा रहा है जो कि आज तक हिन्द, हिन्दू और हिन्दी का विरोधी रहा। पाकिस्तान के साथ-साथ मुसलमानों के हरे झंडे के अलग हो जाने पर भी इस तिरंगे में हरे रंग का जातीय कोढ़ फूट रहा है। हिन्दुत्व की रक्षा और सम्मान के लिए हमें इस रंग को, इस रंग के समर्थकों को और इस रंग के अनुमोदियों को ही हिन्दुस्थान की पवित्र भूमि से मिटा देना होगा! हमें चाहिए कि······"

तभी पीछे से पहुँच कर श्रीधर ने सुशील के कन्धे पर जाकर हाथ रख दिया। सुशील ने चौंककर उसे देखा और उत्तेजित स्वर में कहा—श्रीधर, इस समय तुम यहाँ से हट जाओ! भला चाहते हो तो चले जाओ! तुम सर्वत्र संघ की निंदा और अपमान करते रहे हो! पर आज संघ के झंडे के नीचे खड़े होकर संघ पर झूठ की बिजलियाँ न गिरा सकोगे।

श्रीधर ने शान्त स्वर में कहा—नहीं मैं आज संघ के विषय में कुछ नहीं कहना चाहता! पर एक बात जरूर पूछूंगा कि क्या संघ ने तुम्हें झूठे प्रचार की भी छूट दे रखी है!

सुशील—कैसा झूठा प्रचार। तुम्हारा मतलब!

श्रीधर—आज तिरंगे का अपमान करके तुम राष्ट्र के जाग्रत सम्मान की अवज्ञा कर रहे हो। तिरंगा अब किसी दल और

बाद का झंडा नहीं- स्वतंत्र राष्ट्र का झंडा है। जीवन-प्रलय हुए बिना कोई इस ध्वज को अपदस्थ नहीं कर सकता ! जो तिरंगा अपने आप में सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से रहित है, तुम उसी को लेकर साम्प्रदायिक विद्वेष को भड़का रहे हो ! तिरंगे के किसी भी रंग का किसी जाति या संप्रदाय से संबन्ध नहीं। आज ये तीनों रंग मिलकर हमारी राष्ट्रीयता से कम अधिक कुछ नहीं !

सुशील—तुम्हारे कहे से मैं नहीं मान सकता ! हरा रंग साफ मुसलमानों का, मुसलमानों के झंडे का रंग है और आज भी केवल मुसलमानों को खुश करने के लिए इसे रखा जा रहा है। जो कांग्रेस मुसलमानों की खुशी की इतनी कायल हो, जिसे हिन्दू और हिन्दुत्व की परवाह नहीं उसके झंडे को ही कोई अभिमानी हिन्दू कैसे अपना झण्डा माने !

श्रीधर—मेरे भाई तुम्हारी यह गलत धारणा है। किसी भी देश का झण्डा किसी एक जाति का झण्डा नहीं होता बल्कि उस देश की राष्ट्रीयता का झण्डा होता है। आज की संस्कृति को हिन्दू संस्कृति कह कर छोटा मत करो। भारतीय संस्कृति इससे भी कहीं महान है। यह वेद से प्रारम्भ होती है और जब तक भारत खण्ड भूतल पर है तब तक अजर-अमर और व्यापक रहेगी ! पर संस्कृति हिन्दू के साथ बहुत बाद से शुरू होती है और हिन्दू के जीवन से अधिक व्यापक रह भी नहीं सकती ! तुम व्यर्थ ही सांस्कृतिक ह्रास का उपयोग करते हो। यह कैसी मूर्खता है कि आज तुम हरे रंग में भी जातीय विद्वेष मानने लगे। रंग भी तुम्हारे लिए हिन्दू-मुसलमान हो गए। तुम्हारी खेती

हरी-भरी है, तुम्हारे जंगल यहाँ हरे-भरे हैं, सावन जैसे हरियाली के महीने भी तुम्हारे ही हैं, फिर यह कौन सी बुद्धिमानी कि तुम अपनी प्रकृति के रंग को ही बुरा कहो ! हरा रंग हमारी प्रकृति का रंग है !

वहाँ उपस्थित समुदाय में इन लोगों की बातों को समझने वाले बहुत कम लोग थे। फिर बातें आपसी ढंग से और धीरे-धीरे कही जा रही थीं जिससे सब लोगों तक उनकी आवाज पहुँच ही न पाती थी। धीरे-धीरे जो फुसफुसाहट प्रारंभ हुई तो पास बैठे लोगों के लिए भी कुछ सुनना-समझना कठिन हो गया। वहाँ प्रायः जितने भी लोग एकत्र थे संघ से ही सहानुभूति रखते थे। उन्हें इस तरह से एक खद्दरधारी का आकर उनके प्रधान शिक्षक के भाषण में बाधा देना और फिर बहस करने लगना बहुत ही बुरा मालूम हुआ। अपना क्रोध और असन्तोष न छिपा सकने के कारण वे सब चिल्लाने लगे।

उन्हें शांत करते हुए श्रीधर ने ऊँची आवाज में कहा—भाइयो, आप शांत रहें। किसी तरह का उपद्रव करने की आवश्यकता नहीं। मैं अकेला ही आप लोगों के बीच में हूँ। आप मुझसे सवाल करें मैं उनका जवाब दूँगा। जरा धैर्यपूर्वक मुझे समझने या खुद की बातों को समझाने की कोशिश करें।

इसके जवाब में एक चिल्लाया—मुसलमान है। मारो, देखते क्या हो।

जैसे ही यह आवाज निकली, वे सब आपे से बाहर हो गये। श्रीधर पर चारों ओर से जूते और पत्थर बरसने लगे। साथ ही पीछे से किसी ने उसके सिर पर लाठी भी

चला दी। लाठी के लगते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। पर तब भी विक्षुब्ध और उन्मत्त लोगों के प्रहार रुक न रहे थे। जब तक जुगल भीड़ को चीर कर अपनी जान की परवाह न करके श्रीधर तक पहुँचा तब तक वह अधमरा हो चुका था। जुगल ने अपने आपको श्रीधर के बेहोश शरीर पर बिछा ही दिया। इसके बाद जितने भी प्रहार हुए, वे सब उसी पर पड़े। इतने में कैम्प के व्यवस्थापक और अधिकारी भी आ पहुँचे, जिनके आने पर भी लोगों के प्रहार बन्द नहीं हुए। जिस समय यह सब कुछ हो रहा था, सुशील हतप्रभ एक ओर खड़ा था। उसकी आँखों में उस दिन का दृश्य घूम रहा था, जब कि कई गुण्डों ने इसी तरह नर्मदेश्वर पर प्राणघातक आक्रमण किया था। तब उसे उसी ने बचाया था।

बारह

श्रीधर पर पड़ी मार साधारण न थी। तीन रोज हो गए मगर उसकी बेहोशी न टूटी। नर्मदेश्वर के घर-भर में मृत्यु की छाया ही जैसे मँडराने लगी। न किसी की बातों में उत्साह दीखता, न किसी के होठों पर मुस्कान। सबकी आँखें बुझी-सी रहतीं। केला तो सभी के सामने रो-पड़ती। नीरजा का भी अभिमान एकान्त पाते ही आँसू बनकर बिखर जाता। वह रात-दिन बेहोश श्रीधर के सिरहाने बैठी रहती। समय-समय पर जो कुछ करना होता सब करती। केला की बुद्धि तो कुछ ऐसी हत होगई थी कि उसके साधारण काम भी बिगड़ने लगे। नर्मदेश्वर अपने कष्ट की व्यञ्जना सिर्फ लम्बी साँस खींच कर ही कर डालता! जब तीसरी रात के भी गुजर जाने पर बेहोशी दूर न हुई तो उसने बड़े ही आकुलभाव से डाक्टर से पूछा—डाक्टर साहब, हमारे श्रीधर की बेहोशी दूर न हुई तब क्या होगा?

डाक्टर ने उसकी ओर देखा! चाहा कि डाक्टरों के समान आश्वासन के दो-चार शब्द कह-भर दे, पर नर्मदेश्वर की आत्मा

की पुकार को वह झूँठा जवाब न दे सका! कह दिया—हाँ अगर जल्दी ही नहीं टूटी तो कुछ न किया जा सकेगा।

नर्मदेश्वर—जल्दी से तुम्हारा तात्पर्य,डाक्टर ?

डाक्टर—ज्यादा से ज्यादा दो रातें और !

'दो रातें' सुनकर नर्मदेश्वर ने छत की ओर देखा। शायद वहाँ कोई भगवान बैठा हो तो उससे ही याचना करे ! वृद्ध डाक्टर ने हमदर्दी के साथ पूछा—यह तुम्हारा बेटा है ?

नर्मदेश्वर—बेटे से भी अधिक डाक्टर।

डाक्टर दो-चार सहानुभूति के शब्द कहकर चला गया। केला और नीरजा भी उस समय वहीं थीं। केला तो डाक्टर के जाने से पहले ही अपने पूजाघर में जाकर उन पत्थरों को पूजने लगी जिनका पसीजना कभी किसी ने न जाना। फिर भी वह अपने आँसुओं की वृष्टि में उन्हें विगलित कर डालना चाहती थी।

नर्मदेश्वर डाक्टर के जाने पर वहीं श्रीधर के पास बैठ गया। नीरजा जो बाहर से सबसे अधिक धैर्य दिखा रही थी दरवाजे तक डाक्टर के साथ आई और उसे फीस देकर बिदा किया। पर फिर वह वापस श्रीधर के कमरे में न जा सकी। उसके कानों में नर्मदेश्वर के डाक्टर को कहे 'बेटे से भी अधिक' शब्द जाने किन-किन अर्थों के साथ गूँज रहे थे ! श्रीधर के कमरे से आगे बढ़कर उसके सामने नर्मदेश्वर का कमरा आया जिसमें बैठकर वह सिर्फ पढ़ाई-लिखाई करता था। वह उसी कमरे में घुस गई और पढ़ने-लिखने की मेज के पास बैठकर किताबों की ढेरी पर सिर रखकर रोने लगी। उसका रोना आज

अन्य दिनों का-सा रोना न था। उसका रोना केला का-सा रोना भी न था। उसका रोना कुछ ऐसा भी न था जिसे कि आँसू और हिचकी का रूप देकर समझा जा सके। उसका रोना किसी परास्त अभिमान या मूर्च्छित आशा का था। तभी उसके किसी मन ने कहा—तू किसके लिए रो रही है पगली ?

'किसके ?' नीरजा न समझी। अपने मन की बात न समझी। उसका रोना और बढ़ गया! इसी तरह रोते-रोते उसने सिर उठाया और अचानक नर्मदेश्वर की डायरी को उठाकर पन्ने पलटने लगी। उसने उस डायरी में से कुछ न पढ़ा, सिर्फ पन्ने ही पलटती रही। पर सबके अन्त में लिखे हुए पन्ने को वह उसी तरह न पलट सकी। उस पर कुछ थोड़ी-सी पंक्तियाँ लिखी हुई थीं जिन्हें आँसू थामकर जाने उसने कितनी बार पढ़ा। ये पंक्तियाँ नर्मदेश्वर ने दो ही रोज पहले लिखी थीं, जो अक्षरशः इस प्रकार थीं:—

'शारदा, तू जिस लोक में भी हो वहीं से परामर्श देना। आज मैं किसी से अपने मन की बात नहीं कह पा रहा हूँ। केला से भी नहीं। उसकी तो जैसे सुनने-समझने और कहने की शक्ति ही छिन गई।

'इस श्रीधर को तूने नहीं देखा। तू भी देखती तो मेरी ही तरह सोचती! इसे पाते ही मैंने समझ लिया था कि मेरी नीरजा और 'क्रांति' की चिन्ता दूर हुई। मेरी ये दोनों ही प्राणों से प्यारी बेटियाँ जिन्हें एक ही योग्य व्यक्ति सम्हालकर मुझे चिन्तामुक्त कर सकेगा। पर रानी, आज वही श्रीधर मेरी आशाओं के आधार को भग्न कर रहा है।

'तू ही बता.........'

नीरजा ने इतना ही पढ़कर उस डायरी पर अपना मस्तक रख दिया! मानो वह नर्मदेश्वर की आशालिपि को अपने आँसुओं से धो डालना चाहती थी! 'बेटे से भी अधिक डाक्टर' नर्मदेश्वर के ये शब्द उसके कानों में जोरों से गूँजने लगे। पर अब उनका अर्थ केवल एक ही रह गया था जो आज सुखमय होने के कारण ही त्रासद लग रहा था!

इस बीच में जुगल बराबर आया करता, पर दो-चार घड़ी भी बैठ न पाता था। आते ही वह पूछता—कैसे हैं हमारे भैया?

सबका मौन ही उसे उत्तर दे देता! तब वह चुपचाप श्रीधर के चरण छूता और चला जाता। एक बार नर्मदेश्वर ने उसे जाने से, रोका भी पर उसने जाते-जाते कहा—नहीं श्रीधर भैया की ऐसी आज्ञा कभी नहीं होगी। उनका काम अधूरा पड़ा है। हमें उसे पूरा करना होगा।

जिस दिन डाक्टर सुबह आकर श्रीधर के जीवन की आशा दो रातों में ही सीमित कर गया था उस दिन साँझ को जुगल फिर आया। जुगल सरहदी नौजवान का आँखों को भाने वाला बड़ा ही उत्तम नमूना था। जब वह आकर चला जाता तो घर भर को लगता कि जैसे कोई स्वास्थ्य, सौंदर्य, शक्ति और सरलता की देवाकृति आकर चली गई। पर उस देवाकृति पर भी शोक की छाया पड़ी रहती। नर्मदेश्वर के यहाँ आजकल एक ही बार खाना बनता था। किसी की खाने की ओर रुचि ही न होती। बस दोपहर को जो कुछ भी थोड़ा-बहुत खाया जाता खालेते। फिर भोजन के बाद तो सभी लोग श्रीधर के पास ही

बैठे रहते और ऐसे बहुत ही कम अवसर आते जबकि केला भी न होती, नर्मदेश्वर भी न होता, होती केवल नीरजा जो साँस आने और जाने के बीच के अन्तर तक के लिए ही कभी-कभी हट जाया करती थी या तब जबकि रोना सम्हाल न पाती। जब जुगल आया तो श्रीधर के पास सभी लोग शोक मग्न अवस्था में बैठे थे। उसने आकर विषादमग्न स्वर में पूछा—आज कुछ कहा डाक्टर ने?

नर्मदेश्वर—हाँ दो रातें और।

जुगल—दो रातें! मैं कुछ समझा नहीं पंडितजी!

नर्मदेश्वर—यही श्रीधर के अच्छा होने की अवधि है।

जुगल ने आशा और उत्साह से भर कर कहा—तब तो हमारे श्रीधर भैया जल्दी ही अच्छे हो जाएँगे। यह दूसरी रात ही हमारी आजादी की पहली रात है जो सुनहरे दिनों से भी कहीं प्यारी होगी। हमारे श्रीधर भैया जरूर ही उस रात को सोए न रह सकेंगे।

जुगल ने अपनी बात कहकर श्रीधर के चरण छुए और तत्काल सबको अभिवादन करता हुआ चला गया। आज वह सभी को सचमुच देवदूत जान पड़ा जो उस घर की दीवारों तक को जीवन का संदेश देकर हँसता-हँसता चला गया।

❀ ❀ ❀

सुशील के न चाहते हुए भी मारपीट का यह कांड होगया था। जिस समय श्रीधर पर चोटें पड़ रही थीं वह खुद अपने आप से इतना अधिक उलझा हुआ था कि अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर ही न पाया। आहत अभिमान और प्रज्ज्वलित

ईर्ष्या ने उसकी अच्छाइयों को इस बुरी तरह जकड़ रखा था कि वह चाहकर भी श्रीधर को बचाने के लिए कुछ न कर सका। पर वह इस कांड के बाद कुछ अधिक गंभीर और उदास होगया। संघ का कार्य तो अवश्य करता रहा पर पहले जैसे उत्साह के साथ नहीं।

इस घटना के दूसरे दिन भारती को भी इसका कुछ कुछ पता चला, पर ठीक इसी रूप में नहीं। उसने सुशील से पूछा—बेटा, हमारा नौकर कहता था कि पंडितजी के यहाँ जो श्रीधर भैया रहते हैं उन्हें शरणार्थियों और संघ वालों ने बहुत बुरी तरह मारा है। वह तो यहाँ तक कहता है कि बेचारे बचें कि न बचें कौन जाने। पर मुझे तो इस बात का विश्वास ही नहीं होता। क्या तू कुछ जानता है?

सुशील चाहता था कि अपनी अज्ञानता प्रकट करदे। पर जाने क्यों न कर सका। कह दिया—हाँ जानता हूँ। उसने संघ के ध्वज का अपमान किया था।

भारती—नहीं श्रीधर ऐसा नहीं जो किसी का भी अपमान करे। विरोध वह अवश्य ही उन सब बातों का कर सकता है जिन्हें वह ठीक न समझता हो।

सुशील—उसका विरोध ही हमारे अपमान के बराबर था। इसी से हमारे साथी उसे क्षमा न कर सके।

भारती ने वेदनापूर्वक कहा—इसका मतलब तो यह हुआ कि यह सब तेरे सामने ही हुआ और तूने किसी को रोका तक नहीं।

सुशील मा को और अधिक जवाब देने से बचने के लिए

वहाँ से चुपचाप हट गया। भारती भी वहाँ से हटकर गंगाकी ओर खुली खिड़की के पास आकर जाने उस वेगवती गंगा की धारा, रेत, पत्थर, जंगल, पहाड़ और बुझते हुए सूरज की रोशनी से लाल आसमान में क्या देखती रही। आज गंगा का वैसा रूप न था। जब केला उसे आकर यहाँ से अपने घर ले गई थी और श्रीधर ने सामान को सम्हलाने की पूरी-पूरी व्यवस्था की थी। उस सब कुछ को याद करके आज शायद उसने क्षण भर के लिए यह भी सोचा था कि यहाँ से हटने से पहले ही यह गंगा कुछ और बढ़ जाती तो क्या आज मुझे यह सुनने को मिलता?

धीरे-धीरे सूरज एक दम डूब गया। साँझ के साथ साथ भारती भी अधिक उदास पड़ने लगी। नौकर बत्तियाँ जलाकर चला गया और तब उसे बढ़ते समय का ज्ञान हुआ। मिसरानी ने आकर पूछा—रोटी ले आऊँ मांजी।

भारती चौंकती-सी बोली—क्या रोटी तैयार हो गई? सात बज गया?

मिसरानी को अचरज हो रहा था। शाम का खाना हमेशा जल्दी ही और लगभग इसी समय तक बनकर तैयार हो जाता था। कुछ न समझते हुए उसने कह दिया - अब तो सात से भी ज्यादा होता होगा।

भारती—सुशील है? उससे पूछा।

मिसरानी—वे तो खाने के लिए मना करके कहीं चले गए।

भारती—आज अभी मैं भी न खाऊँगी। नौकर को खिला दो। खुद भी खालो और रसोई उठाकर चली जाओ। जग्गू से

कह देना कि आज इस समय घर से बाहर कहीं न जाए, मैं भी जरा बाहर जा रही हूँ।

मिसरानी गर्दन हिलाती हुई चली गई। भारती ने अपनी ऊनी सफेद चादर सम्हाली और उन्हीं मलिन वस्त्रों में नर्मदेश्वर के घर के लिए चल पड़ी। जब वह नर्मदेश्वर के यहाँ पहुँची तो उसे यह देखकर आश्चर्य ही हुआ कि सुशील वहाँ पहले से ही मौजूद है। पर उसने अपने अचरज को किसी पर जाहिर न होने दिया। दुःख से भरी भरी चुपचाप श्रीधर की चारपाई पर ही जा बैठी। सब की ओर एक बार देख भी लिया।

कुछ देर बाद नर्मदेश्वर ने मौन भंग किया। बोला—भारती बहन, दुःख की बात तो हमारे लिए है जो श्रीधर के इतनी चोट लगी। पर अगर कोई इस समय श्रीधर के ही मन की बात को जान सकता तो उसे पता चल जाता कि इन चोटों की कसकों में भी उसके लिए आनन्दप्रद मुस्कानों का-सा सुख है। श्रीधर ने अपने जीवन में सचाई को अपनाया था और आज तक उसी के लिए बराबर हंसते-हंसते कष्ट उठाता रहा। इस बेहोशी से जागकर भी वह हंसेगा ही। उसे अगर कष्ट होगा तो इसी से कि उसके ज्ञान के देश में आज तक अज्ञान का अन्धकार भी है।

सुशील भारती के आते ही वहाँ से उठकर चला जाना चाहता था। अब तो नर्मदेश्वर की बात भी उससे सही न जा रही थी। विरोध तो कुछ कर न सकता था, ऐसा कुछ आदी नहीं, पर मन ही मन छुटपन का अनुभव करके पीड़ित हो रहा था। इस पीड़ा से बचने के लिए वह वहाँ से उठकर जा भी न सका। भारती चुप ही रही।

नर्मदेश्वर ने पुनः कहा—एक बार मुझ पर भी ऐसी नौबत आई थी। पर तुम्हें याद होगा बहन कि तुम्हारे बहादुर बेटे ने ही मेरी जान बचाई थी। श्रीधर के दुर्भाग्य से······

नर्मदेश्वर जो आगे कहना चाहता था वह सब पर स्पष्ट हो चुका था। पर नीरजा को यह बुरा लगा। उस अवस्था में भी वह विरोध किये बिना न रही। दृढ़स्वर में बोली—ऐसा आप क्यों कहते हैं पिताजी! श्रीधर ने अपनी रक्षा के लिए कभी किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं समझी। फिर आप इस सहायता को ही भाग्य समझते हैं तो वह भी उन्हें मिली। जुगलकिशोर ने खुद अपने आप को इनके शरीर पर डाल कर तत्काल मर जाने से बचाया। सुशील बाबू शायद ही ऐसा कर पाते।

नीरजा की बात से सब सहम गए। भारती का पुत्र आज अपराधी था इसलिए उसे यह भर्त्सना बुरी न लगी। नर्मदेश्वर को नीरजा की बात पर संकुचित होते देख कर उसने कहा—आपको ऐसी बेटी पर गर्व होना चाहिए पंडितजी। उसकी यह साफ सच्ची बात प्रशंसनीय है। जिस सुशील की आप इतनी तारीफ करते हैं उस दिन यह वहीं मौजूद था। मुझे इस बात की लज्जा है कि मेरे कायर बेटे के कारण ही श्रीधर का यह हाल हुआ।

सबकी आँखें आश्चर्य के साथ सुशील की ओर घूम गईं। सुशील जो कि नीरजा का प्रहार सह सका, मा की बात न सुन सका। वह तिलमिला कर उठ खड़ा हुआ और कठोर स्वर में बोला—सचाई सिर्फ श्रीधर के साथ है यह मैं मानने को तैयार

नहीं। श्रीधर ने इसी सचाई के मद में उस दिन हमारी सचाई के सिर पर लात मारी थी। इसी का उसे दंड मिला।

नीरजा चीख उठी—आपको लज्जा नहीं आती इस तरह कहते हुए! आपकी सचाई अगर लाठी के सहारे के बिना नहीं चल सकती तो उसके सम्मान में यही उचित है कि हर कोई भला आदमी उसके सिर पर लात ही मारे।

सुशील इधर-उधर देखता हुआ गुस्से और अपमान से काँप रहा था। वह कुछ कहना चाहता पर होंठ काँप-काँप कर रह जाते। आखिर वह परास्त-सा वहाँ से जाने ही लगा। केला अब तक चुपचाप बैठी थी। सब कुछ के बावजूद भी उसे यह कटुता अच्छी न लगी। उसने तेजी से आगे बढ़ कर सुशील का रास्ता रोक लिया और बोली—नीरजा, तू पागल हुई है क्या? घर आने वालों से क्या इसी तरह का व्यवहार किया जाता है?

नीरजा आज असंयत हो उठी थी। अडिग भाव से बोली—घर आने से ही कोई सम्मान योग्य नहीं हो जाता। घर तो चोर भी आता है, पर उसे कोई घर नहीं लूटने देता, दंड ही उसका सत्कार है।

इसके बाद सुशील क्षणभर के लिए भी वहाँ न रुका। शेष सब अपने मन के अवसाद में डूब गए।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रीधर के जीवन की आशा की पहली रात और उससे लगा दिन तो इसी तरह बीत गया। उस संकट-काल में किसी को भी नीरजा की तेजी से निर्मित हुआ काँड इतना गंभीर न जान

पड़ा जितना कि और कभी जान पड़ सकता था। फिर भी केला को दुःख था। उसने भारती के चलते-चलते भी कहा—बहन आज तुम्हारी बच्ची ने तुम्हें बड़ा ही कष्ट पहुँचाया।

भारती बोली—नहीं आज मेरी एक अच्छी बच्ची ने मेरा वह संताप दूर किया जो मेरे एक नालायक बेटे ने मुझे पहुँचाया था।

केला ने फिर भी कहा—नहीं बहन, अपने ही बेटे के प्रति इतनी कठोर न बनो। सुशील इतना बुरा नहीं। उसका कोई दोष नहीं। सबको अपने सिद्धान्त प्यारे होते हैं। उनकी रक्षा के लिए सभी कुछ कर भी बैठते हैं। फिर तुम कैसे मान लेती हो कि सुशील ने ही अपने साथियों को मारपीट की प्रेरणा की होगी। यह सब हुआ जरूर पर ऐसे ही कि सुशील भी कुछ न कर सका होगा।

भारती ने जाते-जाते कहा—बहन तुम सचमुच ही मा हो। मैं एक से अधिक सन्तानों को जन्म देकर भी तुम्हारे जैसी मा की विशालता न पा सकी। तुम धन्य हो। पर तुम्हारे जैसी विशाल सहिष्णुता और क्षमा कहाँ से लाऊँ।

केला—अगर तुम मुझे इतनी महत्ता देती ही हो तो जान लो कि मा तो सिर्फ सहती है। उसके लिए तो कुछ ऐसा होता ही नहीं जिससे उसे क्षमा करने की आवश्यकता भी पड़े। क्षमा उसके मातृत्व के लिए विजातीय है। क्षमा के नाम पर कोई मा अपने 'मा' रूप को छोटा करना पसन्द न करेगी! जाओ, सुशील को जाकर देखो, कहीं वह आवेश में कुछ उचित-अनुचित न कर बैठे। आज उसे अनुकूल करने के लिए भर्त्सना की नहीं, बल्कि प्यार की आवश्यकता है।

यह डाक्टर के कहे अनुसार श्रीधर के जीवन मृत्यु के निर्णय की अप्रिय रात थी। आज भी उसकी बेहोशी न टूटने का मतलब था जिन्दगी का कभी न जागना। जब इस आशंका से सब कोई कांप से उठते तो जाने कौन जुगल के शब्द मनही मन दुहरा जाता और वे सब मान लेते कि जरूर ही आजादी की पहली रात को श्रीधर जैसा व्यक्ति सोया न रह सकेगा।

स्वातन्त्र्य समारोह मनाने की सभी तैयारी पूरी हो चुकी थी। जनता अपने उत्साह में आज नर्मदेश्वर और श्रीधर को भूल ही गई थी। उसके लेखे तो जैसे कहीं कुछ हुआ ही न था। उसका अपना व्यापार चलता रहे, फिर चाहे दुनिया बचे या खत्म हो!।

कला ने नर्मदेश्वर से थोड़ी देर के लिए नीरजा को साथ लेकर बाहर हो आने को कहा भी पर वे आज श्रीधर का सिर-हाना एक क्षण को भी छोड़ने को तैयार न थे। काम में पागल-सा जुगल घड़ीभर के लिए शाम को श्रीधर के हालचाल लेने आया था और यह कहकर चला गया था कि 'आज रात को श्रीधर भैया जरूर जागेंगे? अब मैं उनसे कल ही मिलूँगा! बीच रात को मौका मिला तो तब भी।'

वे सब जुगल की जगाई आशा को ही जीवित रखने का प्रयत्न करते हुए बैठे रहे। आज डाक्टर शाम से वहीं आगया था और उसने रातभर वहीं ठहरने का निश्चय भी कर लिया था। उसका अपना प्रयत्न निरन्तर जारी था। इसी तरह रात्रि हो गई। हिन्दुस्तान आज़ाद हो चुका था। लाल किले पर तिरंगा आज़ादी की हवा में उड़ने लगा था। हिन्दुस्तान के

कण-कण ने उसी आजादी का चिल्ला-चिल्लाकर अनुभव किया। तोपें गरज उठीं। गोले बोल उठे। मुर्दों के गलों से भी आवाजें निकलीं—हम आजाद हैं। हिन्दुस्तान आजाद है। हमारी आजादी! जिन्दाबाद!!

सारी दुनिया ने, धरती के आदमियों ने और स्वर्ग के देवताओं ने उस जिन्दाबाद को सुना। चालीस करोड़ जनों का सौभाग्य-सूर्य गुलामी के ग्रहण से मुक्त होकर चमकने लगा था। श्रीधर के मुख पर झुके हुए डाक्टर ने भी एक क्षण के लिए पुलकित होकर कहा—हम आजाद हैं!

नर्मदेश्वर ने भी श्रीधर की ओर से आँखें हटाकर ऊपर कहीं शून्य में देखते हुए उसी तरह कहा—हाँ, हम आजाद हुए!

डाक्टर ने फिर कहा—इस घड़ी आजादी के लिए शहीद हुए लोगों की मौतें भी जिन्दगी से ज्यादा प्यारी होगई। वे मर कर अमर होगए!

तभी श्रीधर का शरीर कुछ काँपा! नीरजा जो केवल उसी को देख रही थी, बोल उठी—डाक्टर यह देखिए!

डाक्टर ने भी उसके काँपने को देखा। आशा से उसका चेहरा चमक उठा। नीरजा को चुप रहने का संकेत करके व्यस्ततापूर्वक आगे वाले परिणाम देखने लगा।

तभी बस्तीभर की परिक्रमा के लिए निकला आजादी की खुशी का विशाल जुलूस नर्मदेश्वर के घर के बाहर से होकर आगे बढ़ा। जन-जन की खुशियाँ आजादी के नारों को बुलन्दी दे रही थीं। बेहोश श्रीधर के कान भी उस तराने से बेहोश न

रहे। उसने इस बार कुछ और अधिक काँपकर जैसे बेहोशी में ही कहा हो—हमारी आजादी, जिन्दाबाद !

डाक्टर, नर्मदेश्वर, केला और नीरजा के मुख से भी निकल पड़ा—जिन्दाबाद !

श्रीधर ने आँखें खोलदीं। क्षणभर चकित भाव से इधर उधर देखकर पूछा—मैं कहाँ हूँ ? जुगल कहाँ है ? उसके तो चोट नहीं लगी ?

डाक्टर ने जुगल को न जानते हुए भी कहा—नहीं, वह बिल्कुल ठीक है। आजादी की खुशियाँ मना रहा है। तुम अपने ही घर में हो। आज तुम्हारे देश का बच्चा-बच्चा आजादी के स्वागत में जाग पड़ा है। तुम अभी तक सोए ही थे। अब जागकर अच्छी तरह देखलो कि हम आजाद हुए।

श्रीधर ने फिर से इधर-उधर देखकर कहा—"हम आजाद हुए।" पर उसके इस कहने में बड़ा ही दर्द था। खुशी के दिल में उठा दर्द था। फिर से बोला—पर अभी बर्बाद लोगों के लिए कुछ न कर सके ? जुगल··· ।

आगे की बात उसके आँसुओं ने पूरी की। डाक्टर ने चकित होकर नर्मदेश्वर से धीरे से पूछा—यह जुगल कौन है ?

नर्मदेश्वर ने बताया—एक शरणार्थी।

तभी डाक्टर ने इस एक शब्द से सब-कुछ समझते हुए कहा—तुम प्रसन्न होओ श्रीधर ! आज शरणार्थी भी प्रसन्न हैं। आजादी के लिए किये हुए अपने बलिदान पर आज उन्हें प्रसन्नतापूर्ण गर्व है।

श्रीधर ने खुशी से कहा—'सच' और फिर आँखें बन्द करलीं। क्षणभर में ही उसकी साँस सोते आदमी की तरह चलने लगी।

नर्मदेश्वर ने घबड़ाकर पूछा—यह क्या फिर बेहोश होगया।

डाक्टर ने धीरे से कहा—बेहोशी नहीं नींद है। अब आप इन्हें चुपचाप सोने दें और इस बात का ध्यान रखें कि यहां किसी प्रकार का शोरगुल न हो।

डाक्टर जीवन का अंकुर दिखाकर चला गया। शेष सब उस अंकुर को पल्लवित होते देखने की आशा में जाग-जाग कर ही प्रतीक्षा करते रहे।

तेरह

आजादी के उत्सव धूमधाम से बीत गए। बहुत से लोग जो सिर्फ सरकार परस्त होने के कारण कल तक कांग्रेस और उसके नेताओं को गालियाँ देते थे वे भी अब आगे बढ़-बढ़कर उनके गलों को गजरों से भरने लगे। आजतक का उनका अनुभव भी ऐसा ही था कि फूलों से झुकी हुई गर्दनें तनने के मौके कम पाती हैं, और जितने काम इन झुकी हुई गर्दनों से आसानी से ले लिए जा सकते हैं उतने और किसी तरह नहीं।

श्रीधर बचतो गया था और अब धीरे-धीरे अच्छा भी हो रहा था। घावों से ज्यादा दुखदायी थीं हड्डी की गुम चोटें जो उसे बोलने, साँस लेने, खाने और पीने तक में कष्ट पहुँचाती थीं। फिर भी वह इस सारी तकलीफ़ को एक हल्की-सी मुस्कान के धक्के से एक तरफ को जैसे ढकेल देता था।

अब जुगल पहले से अधिक उसके पास आता-जाता था। स्वातन्त्र्य-सप्ताह समाप्त हो जाने पर वह फिर से एक बेकार और निठल्ला आदमी होगया था जिसका कि दिमाग अच्छी

और बुरी सैकड़ों बातों से फिर से भरने लगा। जैसे जोश की एक बाढ़ आई जो अब उतर चुकी थी। अमृत जैसे पानी वाली बाढ़ की चाँदी की-सी लहरें जब खुश्क होगईं तो बाकी रह गई वही जमीन जिस पर कि कभी घास भी न उग पाती थी; पर अब कंकड़-पत्थर, रेता-कीचड़ और इसी तरह की भली-बुरी चीजों से छती थी। जुगल का खाली दिमाग इन भली-बुरी चीजों से फिर से उलझने लगा।

जब वह आजादी के त्योहार की सम्पन्नता के बाद पहली बार श्रीधर से मिला तो काफी खुश था। नशे का रंग कुछ-कुछ बाकी था। उसने आते ही श्रीधर के चरणों पर मस्तक रख दिया। श्रीधर जो कि अपनी बेहोशी की हालत में कभी उसके चरण छूने का विरोध न कर सका था त्रस्त हो उठा। अपने पैरों को समेटने और शरीर को हिलाने-डुलाने में जो कष्ट और पीड़ा हुई उसे किसी तरह सहते हुए उसने कहा—अरे यह क्या करते हो जुगल ! आः देखो, बड़ी तकलीफ़ होरही है, इस तरह और परेशान मत करो भाई !

पर जुगल ने श्रद्धा-आवेश में कहा था—इतना तो मुझे अधिकार देना ही होगा कि इन चरणों का स्पर्श कर सकूँ। इन्हीं की कृपा से तो मैं आपके छोड़े काम को कुछ-कुछ सम्हाल सका। भैया हमारे सब उत्सव बड़ी ही शान्ति-पूर्वक सम्पन्न हुए। लोगों ने पूरा-पूरा सहयोग किया।

श्रीधर के चेहरे ने केवल प्रसन्नता प्रकट करदी। तभी नीरजा जुगल के लिए कुछ जलपान ले आई। श्रीधर ने जुगल को संकेत करते हुए कहा—अच्छा तो भाई पहले जरा मुँह जुठालो, फिर अपनी और-और बातें भी सुनाना।

जुगल—लेकिन भैया इतना। ना यह सब मुझसे न खाया जाएगा ?

श्रीधर—बेकार का संकोच मत दिखा जुगल। सुबह के नौ बज चुके हैं और मैं जानता हूँ कि अभी तक तुमने चाय तक न पी होगी। ये थोड़ी-सी चीजें तुम्हारे इस लम्बे-तगड़े शरीर के लिए हैं भी क्या ?

जुगल ने जलपान की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—अब इस शरीर के लिए क्या कहते हो भैया। हड्डियाँ उभर आई हैं। हाँ कभी मैं भी अपने को तगड़ा समझता था। पर अब तो ... ।

जुगल चुप होगया। श्रीधर ने हमदर्दी के साथ कहा—सब समझता हूँ। फिर भी कहूँगा कि तुम लोग बहादुर हो, मर्द हो। तुम पर हमें, सारे हिन्दुस्तान को गर्व है। आज तुम छोटे से छोटा काम कर लेते हो, मेहनत-मजदूरी से कोई गिला नहीं, भरपेट भी न मिले तो भी परवाह नहीं, पर किसी के आगे दीनता नहीं दिखाते, हाथ नहीं पसारते, भीख नहीं माँगते ! इस पर भी ये हड्डियाँ माँस में दबी रहतीं तो कैसे ! आज तुम सबके सब अपना सब-कुछ खोकर अपने इसी माँस को खा-खाकर तो जिन्दा हो !

जुगल ने अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक श्रीधर के सफेद कमजोर चेहरे की तरफ देखा। मानो कहा हो कि तुम देवता हो, इसी से इतने हमदर्द भी। पर दूसरे तो कभी इस तरह नहीं सोचते। फिर उसने बर्फी का टुकड़ा तोड़कर मुँह तक लेजाते हुए कहा—तो क्या मैं अकेला ही खाऊँगा ?

श्रीधर ने मुस्कराकर कहा—तुम्हारा साथ तो अभी मैं सिर्फ दवाइयों में दे सकता हूँ।

जुगल—तो क्या अभी तक आप कुछ नहीं खाते ?

श्रीधर बोलते-बोलते थक गया था, इसलिए उसने बताने के लिए पास खड़ी नीरजा की ओर इशारा कर दिया। नीरजा ने कहा—नहीं, सुबह को दूध ले-लेते हैं। सो आपके आने से पहले पी लिया है। अब ये दोपहर के पहले कुछ न खाएँगे—वह भी मूँग की दाल और दो-एक रोटियों के पापड़, फिर शाम को दूध और बस! बीच-बीच में दवाई चलती रहती है।

जुगल जो अपने जातीय संस्कार के कारण ही खाने-पहरने और तन्दुरुस्ती को ही सबसे अधिक महत्व देता था, दुःख के साथ बोला—जाने भैया कब बिल्कुल चंगे होकर ठीक से खाने लगेंगे !

नीरजा—जैसा आप सोचते हैं उस तरह तो ये कभी न खा पाएँगे! इनकी खुराक ही यह है। तन्दुरुस्त हो जाने पर पापड़ों की जगह दो रोटियाँ हो जाएँगी और मूँग की दाल की जगह उड़द की दाल! उड़द की दाल इनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। उसके लिये ये झूँठ भी बोल सकते हैं, जूठा भी खा सकते हैं और चोरी भी कर सकते हैं।

श्रीधर केवल धीमे से हँस पड़ा। जुगल जो कि इस समय दूध का घूँट भर रहा था मनही मन हँस उठने के कारण धँसके को न रोक सका। इस पर नीरजा भी हँसे बिना न रही।

जुगल के जलपान कर चुकने पर जब नीरजा जूठे बर्तन उठाने लगी तो जुगल ने बड़ी ही व्यग्रतापूर्वक उसे रोकते हुए

कहा—हैं हैं, यह क्या करती हैं आप ! मेरे जूठे बर्तन न छूइये !

श्रीधर ने कहा—क्या हर्ज है भाई ! ये तो मेरी बहन हैं, छोटी ! तुम्हारी भी बहन हुईं। मा-बहनों के लिए हमारी जूठ जूठ नहीं होती। फिर तुम तो मेहमान भी हो। मेहमान की इज्जत हिन्दुस्तान वाले किस तरह करते हैं सो तो तुम हमसे भी अधिक जानते हो !

जुगल ने गर्व से कहा—सो तो हम सरहदी अपने मेहमान के लिए जान कुर्बान कर दे सकते हैं। पर बात यह है कि मैं हूँ खत्री और आप ब्राह्मण, वह भी तीर्थ के। आपसे हम कैसे अपना जूठा उठवाकर अपने परलोक को बिगाड़ सकते हैं ?

श्रीधर—सो हम तो नहीं मानते ! फिर भी तुम्हारी अवस्था की कद्र करते हैं। बैठ जाओ नीरजा खड़ी क्यों हो। बर्तन रहने दो, नौकर आकर ले जाएगा।

नीरजा न चाहते हुए भी बैठ गई। आज उसे श्रीधर का अपने को बहन कहकर जुगल से परिचय देना अच्छा न लगा था। इससे पहले भी श्रीधर ने उसे बहन कहकर पुकारा होगा, पर जबसे नीरजा ने नर्मदेश्वर की डायरी में से कुछ पंक्तियाँ पढ़कर अपने पिता की अन्तर्हित इच्छा को जान लिया था तब से वह कुछ और ही होगई थी। उसे यह बात अच्छी ही लगी थी कि उसके पिता श्रीधर से उसके परिणय की कामना करते रहे। इसका अच्छा लगना साधारण था। उसके मन में भी श्रीधर के प्रति एक खास आकर्षण था पर इस आकर्षण का सत्य रूप उसके अपने अहंकार और असहिष्णु स्वभाव के कारण

कभी स्पष्ट न हो सका। और जब उसने अपने पिता की वाणी में अपने मन के रहस्य को स्फुट होते देखा तो वह और अधिक अपनी आन्तरिक इच्छा के साथ छल न कर सकी। उसे उस क्षण इस रहस्य के व्यक्त हो जाने पर सुख भी हुआ था और दुःख भी। सुख था मनकी गूढ़ आकांक्षा के प्रस्फुट हो जाने का और दुःख उस सुख के आधार के जीवन के ही संकटापन्न होने का। वह पहले से ही श्रीधर की परिचर्या में तत्परतापूर्वक लगी रहती थी। यह उसके अन्तर की प्रेरणा थी, पर अज्ञात अन्तर की। किन्तु जब वही ज्ञात होगया तो उसकी तत्परता में आशा, उत्साह और सुख भी आकर जुड़ गए। श्रीधर उसके लिए अस्पष्ट आकर्षण ही नहीं रह गया बल्कि काम्य पुरुष भी होगया। और जब वही श्रीधर कहता कि यह मेरी बहन है तो जैसे उसके तरुण हृदय की सबसे प्रबल कामना को सबसे कठोर आघात पहुँचता। पर इस आघात से वह झुक जाना या चूर-चूर हो जाना पसन्द न करती। उसकी अहंता जागती और वह फिर अपने ही साथ छल करती हुई सोचती कि 'क्यों, श्रीधर ही क्यों उसका सुख ?'

नीरजा श्रीधर के कहने से बैठ चुकी थी पर सोच रही थी फिर-फिर उसी तरह—क्यों, श्रीधर ही क्यों उसका सुख ?

इसी बीच जो तीनों जनों के बीच क्षणिक मौन होगया था उसे तोड़ते हुए श्रीधर ने पूछा—तो बताओ न जुगल सब काम शान्तिपूर्वक कैसे होगए। मुझे तो बहुत अन्देशा था। संघी और शरणार्थी सभी तो इस समारोह के विरोधी थे।

जुगल—जरूर थे और अभी तक हैं। फिर भी हमारे काम

में उन्होंने बाधा न डाली। हाँ १४ अगस्त के बाद रात को जब ठीक बारह बजकर एक मिनट पर आजादी का ध्वज फहराना था, झगड़े की संभावना पैदा होगई थी। बहुतसे शरणार्थी और संघी उपद्रव के लिये तुले हुए थे। सरहदियों के पास तो एक-नली और दुनाली बन्दूकें तक थीं। वे सब निर्भीक होकर उनका प्रदर्शन कर रहे थे और आँखों ही आँखों से हम सब पर अपना गुस्सा जाहिर कर रहे थे। हमें इस बात की सूचना तक मिल चुकी थी कि ये सब लोग किसी भी तरह राष्ट्रीय ध्वज फहराने न देंगे बल्कि उसके स्थान पर अपना भगवा उड़ाएँगे! पुलिस हमारे साथ जरूर थी और उसके पास दो-एक पुरानी रद्दी बन्दूकें भी थीं, पर उस पागल भीड़ के बिगड़ जाने पर काबू पाने की ताकत उसमें न थी!

श्रीधर ने कुतूहलपूर्वक पूछा—फिर क्या हुआ!

जुगल—आप सुशीलचन्द्र को तो जानते हैं न? वे ही यहाँ के संघ के सबसे बड़े हैं। उन्हीं की कोशिश से उपद्रव होने से बचा। जबकि दुर्घटना का क्षण निकट ही था तब उन्होंने आगे बढ़कर सबको समझाया!

श्रीधर—और वे मान गए? क्या कहा था सुशील भाई ने?

जुगल—उन्होंने कहा था कि हमारा आज सत्ताप्राप्त उस सरकार से विरोध अवश्य है जिसने कि अपने इस एक झंडे की लाली कायम रखने के लिये मातृ-भूमि के टुकड़े-टुकड़े करवा डाले और हम जीवन भर उसका ऐसा ही विरोध करते भी रहेंगे! पर इस झंडे को आज बलात् झुका देने से वह शक्ति नहीं झुक जाएगी! हमें इनके कार्यों में बाधा नहीं डालनी

चाहिए। अगर इस झंडे को झुकाकर भगवे को ऊँचा करना ही है तो पहले इसकी शक्ति को तोड़ना होगा। इसलिये मैं आप सब लोगों से आशा करूँगा कि आज इस क्षण या कभी भी ऐसा कोई काम न करें जिससे हमारे संगठन में दोष आएँ या हमारी शक्ति का दुरुपयोग होकर ह्रास हो।

श्रीधर ने वेदनापूर्वक कहा—जाने क्या होगया सुशील को! पंडितजी बतलाते थे कि पहले तो वह कभी ऐसा प्रतिगामी न था। खैर जुगल भाई उस दिन का उपद्रव तो बच गया पर आगे की अशान्ति बढ़ गई?

श्रीधर का यह कहना जुगल की समझ में नहीं आया। संघ, हिन्दुत्व और अखण्ड भारत के उसके संस्कार इतने प्रबल थे कि मिट ही न पाए थे। लालकुर्ती का सिपाही होते हुए भी वह हिन्दू था भले ही तब उसके हिन्दुत्व का अर्थ मुसलमानों के संहार या विरोध से न था; बल्कि उस समय तो वह हिन्दू-मुसलमान के भाई-चारे को मानने वालों में से था। पर पाकिस्तान के निर्माण से जो उसके दिल-दिमाग और बदन पर चोट पहुँची उससे उसका रूप ही बदल गया। हिन्दुत्व पर जोर देते हुए उसने घृणा और प्रतिक्रिया की भावना को नए तौर से जा पकड़ा। फिर जो आजादी की लहर आई, उसमें उसके राष्ट्रीय संस्कारों ने जोर पकड़ा; पर उनका जोर इतना न था कि सुशील की प्रतिगामी प्रवृत्तियों को सर्वथा देश और जातिहित के विरुद्ध मान लेता। इसी से उसने श्रीधर से पूछा था—आपकी बात मैं समझा नहीं?

श्रीधर ने कहा—अवसर आने पर आप समझ जाओगे।

आज हम ऐसे युग से गुजर रहे हैं जबकि राष्ट्रीय स्तर से नीचे सोची जाने वाली प्रत्येक बात घातक होगी। इतना ही नहीं आज तो राष्ट्रीय हित की बात सोचते हुए अन्तर्राष्ट्रीयता की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मैं समझता हूँ कि सही दृष्टि वही होगी कि जातीय हित के लिये राष्ट्रीय स्तर से विचार किया जाए और राष्ट्रीय हित के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से।

नीरजा अन्दर ही अन्दर श्रीधर के विरोध के लिए तर्क संग्रह कर रही थी। उसका अभिमान ऐसे श्रीधर के आगे झुकने को तैयार न था जो सभी दिशाओं में अपने आपको सबसे आगे और सबकी पहुँच के बाहर समझता हो। आज ही यदि वह प्रणय के एक लघु निवेदन के साथ नीरजा के आगे मुसकुराकर ही थोड़ा-सा झुक जाता तो उसे पूर्ण संतोष हो जाता। पर जबकि सुशील जैसा सब तरह से श्रीधर के समान ही योग्य, युवक रूप स्वास्थ्य और धन में श्रीधर से बढ़ा-चढ़ा होकर भी नीरजा की कामना के आगे झुकता आया तब यह दुबला-पतला रूप और शक्ति-विहीन साधनहीन श्रीधर जाने किस मद में उसे तुच्छ समझकर उसके अभिमान को ठेस पहुँचाता था। श्रीधर से ही नहीं आज उसे अपने पिता तक से चिढ़ लग रही थी जिन्होंने इस श्रीधर को व्यर्थ ही इतना महत्व दे डाला था। यही सोच-सोचकर कठोर पड़कर उसने कहा—आप व्यर्थ ही सुशील बाबू को दोष देते हैं। आपके विचारों से वे सहमत नहीं, इसी से तो बुरे नहीं हो सकते। मैंने तो उन्हें कई बातों में आपसे अच्छा ही पाया है। कम से कम वे कृतघ्न तो नहीं।

इतना कहकर नीरजा श्रीधर को कृतघ्न कह गई थी। श्रीधर की छाती में जैसे किसी ने बर्छी भोंक दी हो। फिर भी उसने अन्तर्वेदना को छिपाकर मुसकुराते हुए कहा—कृतघ्न होने का गौरव तो आज तुम्हीं पहली बार मुझे देरही हो।

नीरजा वस्तुतः इतनी कठोर नहीं हुआ चाहती थी, पर होगई। इस सीमोल्लंघन से उसने अपने आपको और भी छोटी होते पाया; फिर भी उसका अभिमान चुप रहकर छोटा बनना स्वीकार नहीं कर सकता था। उसने कहा—तो क्या यह कृतघ्नता नहीं कि आप उनकी भलाई को मानें ही नहीं। आपके उत्सवों में किसी भी तरह का उपद्रव न होने देकर क्या उन्होंने थोड़ी भलाई की।

श्रीधर जो अपनी अन्तर्वेदना को पूर्णतः समाधिस्थ कर चुका था कुछ उत्फुल्ल होकर बोला—आप तो बहुत जल्दी फैसला कर देती हैं। आप कैसे मान लेती हैं कि हम किसी के अपने ऊपर किये गए उपकारों को मानते ही नहीं? जहाँ तक मेरे अपने व्यक्ति का प्रश्न है मैं तो कभी किसी के एहसान से उऋण होने का रास्ता तक नहीं देख पाता। आपही बताएँ कि क्या कभी यह श्रीधर आपके, केला मा के या पण्डितजी के अपार उपकारों को भूल सकता है। नहीं यह तो मेरा दुर्भाग्य ही होगा!

भावुकता के भार ने श्रीधर के स्वर में कंपन पैदा कर दिया था जिसकी लहरों ने नीरजा के हृदय के कठोर तारों को भी कँपा दिया। वह अपने अभिमान को कोमल न पड़ने देने का प्रयत्न करही रही थी कि श्रीधर ने आगे कहा—फिर बहन जो

सुशील भाई ने उस रात को ध्वजोत्तोलन के समय जो कुछ भी किया वह किसी भी एक व्यक्ति, दल या मत वालों के ऊपर एहसान नहीं। पहले तो मैं यही मानूँगा कि यह सुशील भाई की नीतिमत्ता है कि उन्होंने व्यर्थ के उपद्रव को रोका जिससे किसी का भी कोई लाभ न था। फिर यदि इसे कृतज्ञता के योग्य माना भी जाए तो मैं कहूँगा कि देश और उसकी आजादी के सम्मान के प्रति उनका भी कुछ कर्तव्य है और उन्होंने उससे अधिक कुछ नहीं किया।

श्रीधर के बोलना समाप्त करते ही केला वहाँ आ पहुँची। आते ही प्यार से बिगड़ कर बोली—तू पगला हुआ है क्या रे श्रीधर! इतनी जोर-जोर से क्यों बोल रहा है। तेरी आवाज मुझे रसोईघर तक में सुनाई पड़ रही है। जान पड़ता है छाती कम दर्द कर रही है! नीरजा बेटी, भला तू भी इस पगले को क्यों इस तरह बहकने दिया करती है?

श्रीधर केवल मुसकुराकर चुप रह गया।

❀ ❀ ❀

अब श्रीधर उठने-बैठने योग्य होगया था और थोड़ा बहुत मकान के आँगन में चल-फिर लेता था। घाव प्रायः सब भर गए थे, सिर्फ माथे की पट्टी अभी तक न खुली थी। चुपचाप लेटे-लेटे समय न कटता था इसलिए अब वह किताब भी पढ़ लेता था और जल्दी ही थक न जाता था। पर केला अगर जान पाती कि किताब पढ़ते-पढ़ते काफी देर होगई है तो वह उसकी एक बात न सुनती और फिर चाहे वाक्य तक अधूरा क्यों न हो उसके हाथ से पुस्तक छीन ही लेती। नीरजा प्रायः उससे

अलग-अलग ही रहती। उसकी चेष्टाओं तथा भावभंगियों से पता भी चलता था कि वह अपने आपको शरीर से श्रीधर से दूर रखकर मनसा भी दूर चली जाना चाहती है। पर इस तरह सफलता कब किसे मिली, जिससे वह हार-हार कर अपने ऊपर अधिकाधिक झुँझलाती हुई गरीब श्रीधर के प्रति और भी अनुदार होने की चेष्टा करती? वह अब रात-दिन उसके दोषों की छानबीन करती, पर पत्थर जिसकी कठोरता ही उसका गुण हो उसमें किसी को कोई दोष मिल भी क्या सकता है? जौहरियों के कीमती से कीमती पत्थरों में भी दोष निकल आते हैं पर प्रकृति के भद्दे से भद्दे, बेतुके औघड़ और सुलभ पत्थरों में तो ऐसी किसी बात की गुंजाइश ही नहीं होती। श्रीधर कुछ ऐसा ही औघड़ था और इसी से निर्दोष भी। दुनिया के बड़े से बड़े राजनीतिक या दार्शनिक मसले सुलझाने की क्षमता, साहस और बुद्धि रखते हुए भी उसमें ऐसा कुछ अवश्य न था जो नीरजा जैसे अतल अबूझ हृदयों की गहराइयों का स्पर्श भी कर पाता। उसका अपना जीवन कुछ ऐसा था, जिसमें कि विचार और कार्य में, सोचने और प्रकट करने में, हृदय और शरीर में, भाव और वाणी में कोई अन्तर न था, और ऐसा ही वह अपने से इतर प्रत्येक के बारे में सोचता था। जो जैसा कहता है उसे उसी रूप में सही मान लेने में उसे कोई आपत्ति न थी! फलतः उसने नीरजा को सिर्फ एक प्यार में पली बच्ची की तरह माना, जो सुन्दर थी, कलामयी थी, सुशिक्षित थी और कुशाग्रबुद्धि भी; साथ ही असहिष्णु भी। पर उसकी दृष्टि कभी उसके हृदय तक पहुँची ही नहीं जो अपने द्वन्द्व के कारण इधर कुछ दिनों से

बराबर बेचैन रहता था और तभी से वह परिवार-भर को असहिष्णु भी जान पड़ने लगी थी।

श्रीधर नीरजा के परिवर्तनों से अधिक जुगल के परिवर्तनों की ओर आकृष्ट था। जुगल बराबर आता था पर धीरे-धीरे उसकी अपनी मानसिक उदासी के साथ-साथ दिनों के अन्तर भी उसके वहाँ आने में बढ़ते गये। एक दिन अपनी उदासी का कारण पूछे जाने पर उसने साफ कह डाला—मैं सोचता था कि आजादी हमारी हर मुसीबत, हर समस्या का हल होगी। पर देखता हूँ कि हम कहने के लिए आजाद तो जरूर होगए मगर इस आजादी की सूरत कहीं देख न पाए। हम हर हालत में पहले से कहीं बहतर हैं। इस बहतर जिन्दगी को आजादी की जिन्दगी मानने को जी ही नहीं चाहता।

श्रीधर ने उसकी बात को गहराई से समझा था; फिर भी पूछा – आजादी की कौनसी तसवीर खींच रखी थी भाई तुमने!

जुगल—ठीक-ठीक तो कोई नहीं। इतना ही जानता था कि हम अपनी धरती के मालिक खुद होंगे, उस धरती के सुखों के भोक्ता भी खुद! हमारी शक्ति और हमारे साधन हमारी बढ़ती और हमारे सुखों के निमित्त ही लगेंगे। हमारी इच्छाएँ गुलाम न रहेंगी। वे भी आजादी के पर लगाकर सुख की खोज में जिन्दगी के आसमान में उड़ानें भरेंगी। पर ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ। हमारी मुर्दा इच्छाओं को जीवन ही न मिला, हमारे सुखों की तदबीरें सामने ही न आईं, हमारे सपने झूठे ही साबित हुए!

श्रीधर—तुम ठीक कहते हो भाई! अगर देश की जनता की

...ख समृद्धि के लिए कुछ न किया गया तो तबाह और अभाव-ग्रस्त पिसते और छीजते बहुतांश के लिए आजादी का मतलब कुछ न रह जाएगा। पर अभी से हमें अपने विश्वास को नष्ट नहीं कर डालना चाहिए। आजाद होना और आजाद कहलाना अपने आप में एक बड़ा सुख है; इसी सुख की कल्पना के लिए आजादी के दीवाने सूली पर सेज बिछाते हैं, हँसते-हँसते जिन्दगी को मौत के बेरहम हाथों में सुपुर्द कर देते हैं। मैं मानता हूँ कि यह सुख भावना का सुख है, ऐसी भावना जो जीवन से पृथक केवल कल्पना में ही संजीवी होती है। पर आजाद होने के बाद आजादी को कायम रखना यह एक उत्तरदायित्व है, एक कर्त्तव्य है। उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य अपने आप में प्रायः कठोर और दुर्वह होते हैं जबकि इनकी कठिनता या कि दुर्वहता ही इनका सुख-सौंदर्य होती है। अब हमें आजादी की भावना से आगे बढ़कर आजादी के प्रति अपने कर्त्तव्य को सोचना होगा। आजादी की तो कोई खास तसवीर नहीं होती। अमरीका भी आजाद है, इंगलिस्तान और फ्रांस भी आजाद हैं। रूस भी आजाद देश है और कभी जर्मनी भी था। जापान भी था। पर इन सबकी आजादियों की तसवीरें तो एक-सी नहीं रहीं। इसी तरह जानलो कि हिन्दुस्तान की आजादी की तसवीर भी कोई खास नहीं, बल्कि अभी तो यह आजादी सिर्फ भावना में स्थित है यथार्थ में तो इसका जन्म ही नहीं हुआ। हाँ इसी को जन्म देना होगा और उत्तरदायित्व को समझते हुए हम जो कुछ भी कर्त्तव्य करेंगे वही इस तसवीर को रंग-रूप देगा। इसलिए मेरे अच्छे भाई अपनी आजादी को अब

अपने अख्त्यार समझो। हम सब अपना फर्ज अदा करें और अपना हक पाएँ। तुम अपने हक के पहले अपना फर्ज समझो। तो क्या तुमने वह अच्छी तरह से समझ लिया ?

आजादी पा-लेने के बाद उसकी स्वरूप-व्यवस्था के लिए प्रत्येक व्यक्ति का कुछ फर्ज होता है, यह जुगल ने सोचा न था। श्रीधर की बातें सुनकर वह चुप जरूर होगया पर उसका समाधान न हुआ। श्रीधर से तो उसने कुछ न कहा, पर मन ही मन सोचता रहा कि जिस देश की जमीन इतनी बांझ होगई हो कि भूखों को दो ग्रास भी न दे पाती हो उसके प्रति उन भूखों का कर्त्तव्य भी क्या हो सकता है। यही सोचता-सोचता वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ और बोला—अच्छा आज तो जाता हूँ, जल्दी है फिर आऊँगा।

श्रीधर ने भी मन ही मन महसूस किया कि मेरा उत्तर चाहे किसी के लिए भी ठीक और समाधानात्मक हो सकता था, पर जुगल और जुगल जैसे किसी अन्य के लिए तो कभी नहीं। वह सोचता गया कि आजादी हासिल करने के साथ ही हिन्दुस्तान में एक नया युग तो प्रारम्भ हो जाता है, पर यह प्रारम्भ में भावात्मक से अधिक क्या है और जो बुरी तरह अभावों से ग्रस्त हो उनके लिए यह भावात्मकता क्या प्रयोजन रखती है।

इसी तरह सोचता-सोचता श्रीधर गंभीर और उदास होगया। उसका दिमाग अब ऐसी योजनाओं से भर उठा जो उस आजाद हिन्दुस्तान के लिए थीं जो आजाद होते ही मुसीबतों में आ-पड़ा था, जो आजादी के खुशी के जाम के नशे को लहमे-भर

भी बनाए न रख सका। चोटों, ठोकरों, मुसीबतों और आफतों ने जिसकी सुहावनी आशाओं और रंगीन कल्पनाओं को कठोर और बदसूरत धरती पर ला खड़ा किया। पर वे सब आशाएँ, वे सब कल्पनाएँ किसी भी मायने में बेकार न थीं। उन्हें आज भी जीवित रखने की जरूरत थी जबकि सबसे बड़ा डर था कि कहीं वे इन कठोरताओं से पिसकर चूर-चूर न हो जाएँ, इन बदसूरतियों से मिलकर कुरूप न हो जाएँ। तभी चिन्तित श्रीधर के मन में कोई अनहद गूँज उठी जो उसे हिन्दुस्तान के कण-कण को मुखरित करती जान पड़ी, और तभी उसका दिमाग किसी दृढ़ निश्चय से भर उठा। वह आप ही आप कह उठा—नहीं, ये मुसीबतें हमारा इम्तहान है और जितनी बड़ी और अधिक ये मुसीबतें होंगी उतनी ही विशाल और भव्य हमारी सफलता होगी।

❀ ❀ ❀

श्रीधर को पूर्ण स्वस्थ होने में काफी समय लग गया। स्वस्थ होने पर भी प्रायः वह उदास और चिन्तित रहता। पुस्तकें भी कम पढ़ता, हाँ कभी-कभी अधिक बेचैनी की हालत में लिखने जरूर बैठ जाता। सुशील अपने संघ के संगठन में जोरों से लगा हुआ था और उस समय देश में कुछ परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं कि संघ जैसी साम्प्रदायिक मनोवृत्तियाँ अधिक प्रसार पा रही थीं। यहाँ तक कि कभी-कभी राष्ट्रवादी जन भी इसके प्रभाव में अपने सुर को बेसुरा कर बैठते थे। देश का भला चाहने वाले प्रत्येक विचारशील जन के सामने अपना रास्ता चुनने की समस्या थी। जो आज भी महात्मा गांधी के सत्य, प्रेम और

अहिंसा में विश्वास तथा उनके नेतृत्व में पूरा-पूरा भरोसा रखते थे वे ही कुछ अधिक दृढ़ जान पड़ते थे। अन्यथा विचारों की संकरता और बुद्धि का सन्देह इतना अधिक बढ़ चला था कि जातीय अधःपतन दूर नहीं जान पड़ता था। श्रीधर का दिमाग इन्हीं सब बातों से होकर गुजर रहा था और वह जल्दी ही किसी ऐसे निर्णय पर पहुंच जाना चाहता था जिससे उसके अनुसार काम करता हुआ राष्ट्र के हित की दृष्टि से कुछ भी कर सके।

नीरजा भी आजकल प्रायः खिन्न और अन्यमनस्क रहती। वह अपने आपको इस श्रीधर के प्रभाव से अधिक से अधिक दूर ले जाने की कोशिश करती, और इसके लिए जितनी भी अधिक अनुदार और कठोर बनने की कोशिश करती, उतना ही अधिक दुष्कर उसे श्रीधर से विमुख होना लगता। अब वह जैसे प्रतिक्षण अपने ही विचारों में डूबा हुआ भी नीरजा के लिए पहले से अधिक आकर्षण का केन्द्र बन चुका था।

नर्मदेश्वर 'क्रांति' को लेकर व्यस्त था। देश की उथल-पुथल और नए-नए परिवर्त्तनों को देखकर उसकी समझ में ही नहीं आता था कि 'क्रांति' को किस सुनिश्चित दिशा में अग्रसर करे। कुछ हालात ऐसे होगए थे कि जनता की सरकार जनता से अधिकाधिक दूर पड़ती जारही थी। या तो जनता में सरकार की सर्व सामान्य नीति को समझने और तदनुसार क्रियात्मक सहयोग बनाए रखने की क्षमता न थी, अथवा सरकार ही जनता की मनोवृत्ति को न समझपाकर उसके परिष्कृत रूप तक की परवाह न कर पारही थी। इस तरह नर्मदेश्वर की 'क्रांति'

जनता और सरकार के बीच में खड़ी थी। उसे इन दो में से एक का मार्ग चुनना था। पर अकेला वह कितना भी विचार करके किसी एक निश्चय पर न पहुँच पारहा था। श्रीधर ही उसका एक उपयुक्त सलाहकार था, पर उसको अपने आपसे उलझा देखकर उसने कभी उसके सामने यह प्रश्न रखा ही नहीं।

इसी बीच में देश-भर में और भी बहुत-सी उथल-पुथल हुईं। पाकिस्तान से हिन्दुओं का निर्गमन जारी था। हिन्दू वहाँ अनाथ थे। जान पड़ता था कि वहाँ की सरकार भी जनता की उच्छृङ्खल मनोवृत्ति के आगे इतना झुक चली है कि उसके शासन करने के स्थान पर केवल अनुसरण करती है। इसकी प्रतिक्रिया हिन्दुस्तान में भी होती और होना स्वाभाविक भी था। पर हिन्द की सरकार किसी भी दूषित मनोवृत्ति के आगे झुकने को तैयार न थी। फलतः जनता में सरकार के प्रति अनास्था और विरोध के भाव प्रबल होने लगे। इतना ही नहीं हिन्दसंघ की देशी रियासतों के एकीकरण और पुनर्सङ्गठन का आन्दोलन भी जोरों पर चल रहा था। इस आन्दोलन में जनता ने अपनी शक्ति का अच्छा परिचय दिया जिसके फलस्वरूप एक के बाद एक छोटी-मोटी रियासतें हिन्द-संघ में मिलती जारही थीं या मिलने का निश्चय कर रही थीं। इन सब देशी राजाओं ने बुद्धिमानीपूर्वक देश के परिवर्त्तनों को समझा और समझ-दारी के साथ तो नहीं विवशतया झुकने को मजबूर हुए। इस सब प्रगति के बावजूद भी कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ के प्रश्न कुछ अधिक उलझते जारहे थे। कश्मीर का शासक अनि-

श्चय में पड़ा हुआ अपने राज्य की जनता के भाग्य को भी सन्देहग्रस्त कर रहा था। हैदराबाद में रज़ाकारों के अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच रहे थे और यह रज़ाकारों का संगठन अपने इसी उन्माद में दिल्ली के लाल किले पर आसफ़जाही को उड़ाने के सपने देखा करता। जूनागढ़ की जनता ने इस अवसर पर अच्छे संगठन का परिचय दिया और सामलदास गांधी के नेतृत्व में अपने भाग्य का निर्माण स्वयं ही करने पर तुल गई। इस कार्य में उसे सफलता मिली, फलतः जूनागढ़ के नवाब को पाकिस्तान भागने के सिवाय और कोई चारा ही न रह गया।

जहाँ एक ओर इस तरह प्रत्येक जन का मस्तिष्क इन उपद्रवों, इनसे उत्पन्न आशंकाओं और इनकी प्रतिक्रियाओं से भरा हुआ था केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के समक्ष इन सब बातों के साथ-साथ अन्य गुरुतर प्रश्न भी थे। शरणार्थियों का पुनर्वास, सामान्य उत्पादन की वृद्धि, नहरों, सड़कों, यातायात के साधनों और विद्युत उत्पादन को बढ़ाना आदि-आदि महत्वपूर्ण समस्याएँ भी थीं। प्रत्येक प्रान्त के आगे एक विशाल रचनात्मक कार्यक्रम था जिसे पूरा करने के लिये उसके साधन बहुत ही कम पड़ रहे थे। स्वयं केन्द्रीय सरकार के हाथ में इतनी अधिक योजनाएँ थीं कि वह प्रान्तों की यथेच्छ सहायता भी नहीं कर सकती थी। प्रत्येक प्रान्त को अन्न-वस्त्र की समस्या हल करने के साथ-साथ ग्राम-सुधार और शिक्षा-प्रसार की व्यापक योजनाओं को भी कार्यान्वित करना था। जमींदारी के विलोप के संकल्प भी दृढ़ हो रहे थे। इस प्रकार जनता का सुखमय भविष्य इन्हीं सब या ऐसी ही बहुत-सी योजनाओं से

बंधा-बंधा आशा-निराशा के बीच लटक रहा था। आजादी जो जादू की कड़ी घुमाकर देश को एकदम खुशहाल न कर सकी लम्बी गुलामी के संस्कारों को उकसाने लगी। अंग्रेजों के राज्य के सुख-स्वप्नों को याद कर-करके आठ-आठ आँसू बहाने वाले आत्माभिमान शून्य व्यक्तियों की कमी न थी। कारण कि जीवन निर्वाह इतना कठिन होगया था कि अब केवल भावनाओं के बल पर हताश जीवन को आशामय नहीं किया जा सकता था। महात्मा गांधी के प्रयत्नों से अन्न-वस्त्र का कन्ट्रोल भी टूटने जा रहा था या टूट रहा था, जिससे जनसाधारण की जीवन-निर्वाह की समस्या और कठिन हो गई थी। महात्माजी ने देश के जितने पूँजीपतियों की सद्भावना और सहयोग पर विश्वास किया वे सच्चे प्रमाणित नहीं हो रहे थे। फलतः मजदूरों के संगठन बल पाने लगे। समाजवादी और साम्यवादी-प्रचार के लिए उपयुक्त परिस्थितियां पैदा होने लगीं। महंगाई-भत्ते और अपनी माँगें पूरी करवाने के लिए हड़तालें की जा रही थीं, जिनमें लाठी और गोली की नौबत भी आ जाती थी। अध्यापक वर्ग, उसमें भी प्राइमरी स्कूलों और मिडिल स्कूलों का, अब नाम मात्र के वेतन में अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर पा रहा था। महंगाई तो कई गुनी बढ़ चली थी, जब कि वेतन और महंगाई भत्ते में हास्यास्पद वृद्धियाँ ही हो पाई थीं। इन वृद्धियों के लिए या अन्य बातों के लिए विद्यार्थियों की फीसें भी बढ़ाई जा रही थीं। इस तरह मिलजुल कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चली थीं कि अध्यापक-वर्ग और विद्यार्थी समुदाय दोनों ही सरकारों के संघर्ष में आने लगे। मध्यवित्त जन ही इन सब संघर्षों के शिकार थे।

श्रीधर इन्हीं सब नित्यप्रति की बातों और उनके प्रयत्नों को देखता हुआ किसी एक निश्चय पर आने में अधिकाधिक कठिनाई महसूस करता जा रहा था। शरणार्थियों के पुनर्वास का प्रश्न अभी तक हल न हो सकने के कारण कनखल बस्ती और उसके चारों ओर का वातावरण बहुत ही असंतोषजनक होता जा रहा था। इस समय सभी परेशान लोगों और खाली दिमागों को किसी रचनात्मक काम में लगा देने की आवश्यकता थी। श्रीधर ने सुना कि आसपास बसे शरणार्थी और यहाँ के बहुत से नागरिक ज्वालापुर और आस-पास के मुसलमानों को उजाड़ने और इन सब स्थानों से बाहर निकालने की योजना बना रहे हैं; मानों अब वे तम्बुओं में रहते-रहते इतने अधिक घबड़ा गए थे कि गरीब मुसलमानों के अध पक्के, कच्चे या कुछ पक्के मामूली मकान भी उन्हें राजभवनों का-सा प्रलोभन दे रहे थे।

शुरू-शुरू में तो यह अफवाह ही बनी रही, पर शीघ्र ही छुटपुट मारकाट ने प्रबल प्रतिगामी मनोवृत्ति को स्पष्ट कर दिया। कोई भीषण काण्ड घटित हो इससे पहले ही श्रीधर ने उपद्रवी तत्वों के शमन की चेष्टा की। इसके लिए जल्दी में कोई विशेष निश्चय न कर सकने के कारण वह पहले जुगल की तलाश में निकला। इधर जुगल उससे बहुत दिनों से मिला भी न था। जुगल में होते परिवर्त्तनों को देखकर श्रीधर आशंकित भी था, फिर भी उसे विश्वास था कि वह अवश्य ही शरणार्थियों को समझाने और शान्त करने में सहायक होगा; पर उस दिन उसकी जुगल से कहीं भेंट ही नहीं हुई। वह

कई शरणार्थी कैम्पों का चक्कर लगा चुकने के बाद हारा-थका-सा घर लौट आया। इन कैम्पों में घूम लेने के बाद उसे और भी नई-नई बातें मालूम हुई।

दोपहर ढलती जा रही थी, घर पर सभी भोजन के लिए श्रीधर का इन्तजार कर रहे थे। नर्मदेश्वर कितनी ही बार घर से बाहर कुछ दूर सड़क पर बढ़-बढ़ कर भी उसे देख आया। इसी तरह प्रतीक्षा में दो बज गए, तब कहीं जाकर श्रीधर ने घर में प्रवेश किया। उसके आते ही नर्मदेश्वर ने कहा—अभी तुम्हारा स्वास्थ्य इस लायक नहीं हुआ है कि खाने-पीने की फिर से उपेक्षा करने लगो। कम से कम जो एक बार रोटी खाते हो वह तो वक्त से खा लिया करो। अच्छा तो अब जल्दी से खाने के लिए आओ। हम सब तुम्हारी ही राह देखते हुए भूखे बैठे हैं।

श्रीधर ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप अपने कमरे में जाकर कुर्ता उतारा और हाथ-पैर धोकर खाने के लिए चला आया। कला ने उसके भोजन के लिए बैठ जाने पर फिर से वही नर्मदेश्वर वाली बात दोहराई। बोली—बेटा, अभी से इतनी लापरवाही न बरतो। हड्डियों की चोट है। खा-पीकर तगड़े हो जाओ, नहीं तो बाद में बड़ी तकलीफ होगी। आज तो नया खून है, इससे कुछ पता नहीं चलता, पर जब बुढ़ापा आयगा तो फिर लापरवाही के लिए पश्चाताप करोगे।

श्रीधर ने और दिनों की तरह मजाक न करके गंभीरता पूर्वक कहा—ना मा, मैं इस पश्चात्ताप के लिए वह दिन आने

ही न दूँगा। फिर जवान तो अभी से मैं कौन सा हूँ। आधा बूढ़ा तो हो ही गया। आज ही जग पछतावा नहीं तो फिर कल ही क्या होगा।

केला ने बात टालते हुए कहा—अच्छा बस कर अब। 'बूढ़ा हो गया' जाने तेरा दिमाग इस तरह हमेशा उल्टा ही क्यों सोचा करता।

श्रीधर को केला के कहने के ढंग पर हँसी आ गई। जिस महत्व के अधिकार से प्रायः वह उसे बहुत छोटा बनाकर कुछ भी कह बैठती थी उससे श्रीधर का सूखा हृदय भी स्निग्ध हो जाता था। बोला—मा, हर मा-बाप को अपनी सन्तान को बूढ़ा बनाने का इतना शौक भला क्यों होता है। तुम्हारे बच्चे सदैव बच्चे ही बने रहें तो कैसा ?

नर्मदेश्वर ने उत्तर दिया—मा-बाप के लिए बच्चे तो सदा बच्चे ही बने रहते हैं, फिर चाहे बूढ़े भी क्यों न हो जाएँ; लेकिन फिर भी ये उनकी लम्बी उम्र इसीलिए चाहते हैं कि चाहे बुद्धि नौजवानों में कितनी भी क्यों न हो और कितनी ही बड़ी-बड़ी बातों पर ये कितनी भी योग्यतापूर्वक सोच क्यों न लेते हों, फिर भी उम्र के साथसाथ होने वाले अनुभव से पैदा हुई ऐसी समझदारी उनमें नहीं होती जो जीवन के लिए बहुत जरूरी है। लम्बी उम्र पाने पर उनके बच्चे भी वैसे ही समझदार हो जाते हैं और जब वे खुद उस दुनिया में नहीं रह जाते तो उनके समझदार बच्चों के कारण दुनिया दूरन्देश और सोच समझकर काम करने वालों से एक दम खाली नहीं हो जाती।

नीरजा नौजवानों के पक्ष का समर्थन करने के लिए बोल उठी—वाह पिताजी, आप तो इसी बहाने बूढ़ों की खूब तारीफ कर गए। पर मैं इसे नहीं मानती। जवान दुनिया को बूढ़े सलाहकारों की कोई जरूरत नहीं।

नर्मदेश्वर—लो भाई श्रीधर यह तो तुमसे भी बढ़ गई। बोलो केला, अब तुम्हारे पास क्या जवाब है। मैंने तो अपनी बेटी से हार मानली।

श्रीधर—और इन्हें भी अपने बेटे से हार माननी होगी। नीरजा ठीक कहती है।

नर्मदेश्वर—जरा मैं भी तो सुनूँ कि ठीक कैसे?

नीरजा—तो मुझी से सुनिये न! आप बताएँगे कि श्रीरामचन्द्रजी की मृत्यु कैसे हुई थी।

केला—धत पगली! रामचन्द्रजी तो भगवान् थे। उनकी मृत्यु की भी भला कोई बात है। उन्होंने तो सशरीर अपने लोक को प्रस्थान किया था और लक्ष्मणजी ने भी इसी निमित्त जल-समाधि ली थी।

नीरजा—वाह मा, कैसी बातें करती हो! राम-लक्ष्मण दोनों ने ही आत्महत्या की थी। जब वे दोनों बूढ़े होगए, और दुनिया के किसी काम के न रहे तो उकता कर खुद ही प्राण छोड़ दिये।

नीरजा का कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि सभी हंस पड़े। श्रीधर के गले में तो पानी का फंदा ही लग गया। बेचारा खाँसते-खाँसते बेहाल होगया। आँखों में पानी भर आया। केला बोली—तू भी बड़ी खराब है नीर! देख तो, क्या हालत करदी!

नीरजा—वाह खूब ! इसमें मेरा कसूर ही क्या ! यह बूढ़ों वाला न्यायमतकरो अभी से हमारे साथ।

नर्मदेश्वर—पर देखरी पगली, ऐसी बातें और किसी से न कहना। श्री रामचन्द्र चाहे किसी के लिए भगवान् रहे हों या न रहे हों, फिर भी उनका चरित्र इतना मर्यादित और उज्ज्वल है कि उसकी किसी भी प्रकार की आलोचना नहीं की जा सकती।

नीरजा—आप चाहें आज मानें या न मानें। पर उनके जीतेजी तो उन्हें धोबियों तक ने नहीं छोड़ा। और तुम्हारे भगवान् भी लोक-निन्दा से इतने डरते थे कि कुछ ठीक नहीं। मैं तो समझती हूँ कि उनके परलोकवास के बारे में जो धारणा बनी है उससे तो स्पष्ट ही हो जाता है कि श्रीराम न केवल लोक का भय मानने वाले थे बल्कि पूरे-पूरे पलायनवादी भी थे, जो जगत् की दुर्नीति और कुरीति का सामना सदा बचकर ही करते थे। देखो न पिताजी, अगर आज हमारे गांधीजी भी इसी तरह किम्वदन्तियों से डर कर अपना सही रास्ता छोड़ दिया करते तो कोई शक नहीं कि इनके किये भी कभी कुछ नहीं होता।

श्रीधर—आपकी दलीलें तो खैर ऐसी हैं कि भले आदमी को हँसते-हँसते ही मरने की नौबत आजाए। देखिए, मैं ही कैसे मरने से बाल-बाल बचा। पर मा नीरजा बहन की इन बातों से एक बात मैंने जरूर सीखी।

नीरजा को गर्व हुआ, कुतूहल हुआ, आश्चर्य भी था कि ऐसी क्या बात है जो श्रीधर आज उससे सीखने की बात कबूल कर सकता है। श्रीधर ने बिना किसी के पूछने की अपेक्षा किए ही कहा—श्री रामचन्द्रजी जैसे मर्यादापुरुषत्तमों के चरित्र और

उनके परलोक दरस के निमित्त भी हमें यही सिखाते हैं कि महानात्माएँ कभी भी बीमारी से ग्रस्त रहकर खाट पर पड़ी-पड़ी दम तोड़ना पसन्द नहीं करतीं। लगता है कि उन्हें इच्छा मृत्यु सुलभ होती है। जब तक वे अपना प्रयोजन समझते हैं जीवित रहते और कर्त्तव्य करते हैं और जैसे ही जान लेते हैं कि अब उनके युग का काम समाप्त हुआ तो जीवन और उसके कार्यों का पूर्णविराम कर देते हैं। और यदि इच्छा-मृत्यु भी सुलभ नहीं होती तो श्रीकृष्ण, महात्मा ईसा और मनीषी सुकरात की तरह मृत्यु के असामान्य निमित्त उपस्थित हो जाते हैं। महाभारत के विजेता की मृत्यु का कारण एक अहेरी का मामूली-सा बाण हो जाता है। ईसा और सुकरात उन्हीं लोगों की मूर्खता और उन्माद की बलि चढ़ जाते हैं जिनके कि उद्धार के लिए उन्होंने अपने जीवन को लगाया। बस मा अबतो तुम मुझे बूढ़ा देखने की लालसा छोड़कर ऐसी ही इच्छा-मृत्यु का आशीर्वाद दो जिससे मैं अपना प्रयोजन पूर्ण हो जाने पर एक पल भी व्यर्थ ही साँसों का भार न ढोऊँ और तबतक यह शरीर शान्त न होए जब तक कि अपना कर्त्तव्य पूरा-पूरा न करलूँ।

केला ने तब पुलकित होकर उसे मनही मन अमरता का आशीर्वाद देते हुए सोचा—श्रीधर तूने मेरी कोख को पवित्र क्यों न किया। तुझे स्तन्य पिलाकर मेरा मातृत्व सभी तरह से सार्थक हो जाता।

नर्मदेश्वर के मन में भी आया—श्रीधर, इसकी सीमा अवश्य ही उतनी ही नहीं जितनी कि हमारी दृष्टि देखती है, बुद्धि सोच सकती है या कल्पना कर सकती है। इसमें अवश्य ही कोई

अद्भुत महानता, विशालता अन्तर्हित है। और जिस दिन वह प्रकट होगी तो स्वदेश अपने सौभाग्य पर गर्व करेगा।

नीरजा ने भी सस्मृद श्रीधर को देखकर सोचा—अरे यही है वह श्रीधर जिससे कि मैं बेकार में चिढ़ बैठती हूँ। कठोर से कठोर बातें कह जाती हूँ। यह जवाब भी नहीं देता; फिर भी तनी रहती हूँ। अरे यह तो आज भी जल में रहकर कमल की तरह अछूता है, इस विश्व में बच्चे की तरह पवित्र है, देवता की तरह पुण्यवपु है, धर्म की तरह मंगलमय है, बुद्धि की तरह जाग्रत विवेक है।

इस तरह एक ही क्षण में केला मोद से भर उठी, नर्मदेश्वर आशाओं में डूब गया, नीरजा का मिथ्या मान-अभिमान विगलित होगया, पर श्रीधर एक साधारण मनुष्य की तरह ही रोटी खाता हुआ जीवन-समस्याओं पर विचार करता रहा।

❀ ❀ ❀

भोजन कर चुकने के बाद अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में पहुँचकर नर्मदेश्वर ने श्रीधर से कहा—भाई आजकल 'क्रांति' के सम्पादन में मुझे जिस कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है वैसी कठिनाई तो तब भी महसूस न हुई, जबकि 'क्रांति' ने जन्म लिया था। इस विषय पर मैं तुमसे आवश्यक परामर्श करके कुछ स्पष्ट कर लिया चाहता हूँ।

श्रीधर ने नर्मदेश्वर के पास ही बैठते हुए कहा -आपकी कठिनाई का अनुमान मैं भी कर रहा हूँ। वही कठिनाई आज मेरे भी सामने है। आजादी के साथ ही अभूतपूर्व और अकथित समस्याएँ पैदा होगईं। इन समस्याओं के बीच से हम कैसे

गुजरें, हमारे पत्र का कैसा रुख हो, यही सर्वाधिक विचारणीय बात है।

नर्मदेश्वर—तुमने बिल्कुल ठीक अन्दाज लगाया। अब विदेशी सरकार से लड़ने वाली नीति भी नहीं रही, किन्तु परिस्थितियाँ उससे भी भयानक हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में समझ में नहीं आता कि इन समस्याओं को लेकर कैसे राष्ट्रीय-सरकार से लड़ा जाए। फिर कोई एक सर्व-साधारण नीति भी तो होनी चाहिए। आज हम थोड़ी देर के लिए किसी एक प्रमुख समस्या को लेकर ही अपने पत्र को उसका मुख्य-पत्र नहीं बना दे सकते। ये समस्याएँ तो जल्दी या देर में बदलती ही रहेंगी। ऐसी हालत में क्या करना चाहिए कुछ समझ में नहीं आता।

श्रीधर—मैंने एक रास्ता सोचा है। हमारी जनता आजादी से पहले अपनी प्रत्येक तकलीफ और मुसीबत के लिए अंग्रेजी सरकार को जिम्मेदार ठहराती थी। बात भी सही थी। तब वही जनता सोचा करती थी कि अंग्रेजों के भारत छोड़ते ही हमारी सब कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी। जीवन-सुख के सभी साधन सरल और सुलभ हो जाएँगे, आत्मविकास के पूरे-पूरे अवसर मिलेंगे और जैसे हम चाहेंगे वैसे ही शासन चलेगा। खैर, अंग्रेज तो भारत छोड़ने पर बाध्य हुए पर ये कठिनाइयाँ दूर न हुईं, बल्कि मुसीबतें बढ़ती गईं। ऐसी हालत में जनता की आजादी के प्रति धारणा ही बदल गई। उसका सुख-स्वप्न भंग होगया। पाकिस्तान के बन जाने से तथा वहाँ से हिन्दुओं के बलात् निष्क्रमण से प्रतिगामी शक्तियों को भी जन्म मिला। प्रतिक्रिया की भावनाएँ जोर पकड़ती गईं। आर्थिक संकट ने

ने भी इन प्रतिक्रियावादियों का असन्तोष ही बढ़ाया। लड़ाई के जमाने में तो हम बराबर बढ़ती मँहगाई को गुलामी और लड़ाई का पाप समझकर सहते रहे, पर उसके बाद भी जबकि चीजों के दाम न गिरें, जीवन-निर्वाह की कठिनाइयाँ बढ़ती ही गई तो जनता सरकार के प्रति कोमल न रह सकी। लड़ाई के जमाने में पूँजीपतियों ने लाखों के करोड़ों बनाए थे और अब ये करोड़ अरबों की शक्ल अख्त्यार कर रहे हैं। उधर शरणार्थियों की समस्या ने भी आर्थिक संकट को बढ़ाया। नई-नई योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए भी रुपए की आवश्यकता थी। मशीनरी और ऐसी ही बहुत-सी चीजों के लिए हम विदेशों पर निर्भर करते हैं। पर वे हमारे यहाँ का सोना लेकर ही अपना लोहा देने को तैयार हैं। फल यह होरहा है कि मुद्रा-स्फीति के लक्षण भी स्पष्ट होरहे हैं। ऐसी हालत में प्रत्येक समझदार आदमी के आगे जनता और सरकार की दृष्टि से, व्यक्ति और राष्ट्र को लेकर बहुत कुछ विचारणीय समस्याएँ हैं। हमें ऐसे ही रास्ते से होकर बढ़ना चाहिए जिससे इन सब को अपने साथ लेकर बढ़ते हुए समाधान तक पहुँच सकें।

नर्मदेश्वर—पर कैसे? बात तो तुम्हारी सदा है किन्तु कैसे अपने इन विचारों को कार्यान्वित किया जाए?

श्रीधर—मैं सोचता हूँ कि आज परिस्थिति ऐसी है कि न सरकार की दृष्टि गलत और प्रयोग बेकार हैं और न जनता का असन्तोष झूठा और माँगें अव्यवहार्य। फिर भी दोनों में मेल नहीं। हमें देश के कल्याण के लिए इसी मेल को पैदा करना होगा। जनता का मुखपत्र बनाकर हम लोकवाणी को सरकार

के कानों तक पहुँचाएँ और सरकार की राष्ट्र हितकारी नीति को देखकर जनता को उससे परिचित कराएँ। गुलामी को मिटाने के लिए हमें जितने अधिक सहयोग, संगठन और कर्तृत्व की आवश्यकता थी आज उससे कहीं अधिक है। 'क्रांति' अब इसी बात का उत्तरदायित्व स्वीकार करे तो कैसा ?

नर्मदेश्वर ने प्रसन्न होकर कहा—मैं समझ गया श्रीधर। मेरी 'क्रांति' का नीतिमार्ग प्रशस्त हो गया। पर भैया, फिर भी लगता है कि 'क्रांति' को युग-युग तक तुम्हारी आवश्यकता रहेगी। तुम से विनय है कि इस आवश्यकता की उपेक्षा कभी मत करना।

तभी केला ने आकर कहा—आपको मैं क्या कहूँ। रात-दिन क्रांति ही क्रांति की आवश्यकता देखते हैं। कभी खुद इसकी भी तो आवश्यकता देखिए।

श्रीधर ने मुसकुरा कर कहा—भला मा, मेरी क्या आवश्यकता। मुझे तो आपने लई सबसे बड़ी समस्या भोजन की ही लगती है सो आपकी कृपा से ऐसी हल हुई कि क्या कहूँ।

केला—पर कब तक के लिए।

श्रीधर—तो जान पड़ता है मा कि अब आप मुझे निकाल बाहर करना चाहती हैं। शायद अब मेरी भूख बढ़ती देख कर आप सहम गई हैं। सोचती होंगी कि रोज इतना आटा उठेगा तो कोठार खाली हो जाएँगे।

केला—तू तो ये सब बातें हँसी में कहता है, पर मुझे जो चोट पहुँचती है सो मैं ही जानती हूँ। आज तू सोच लेता है कि तुझे दो पकी पकाई रोटियाँ मिल जाती हैं तो इसी से तेरी

सब समस्याओं का अन्त हो जाता है। पर तू जिस तरह देश भर की जरूरतों के बारे में सोचता है, उस तरह घड़ी भर के लिए अपने बारे में भी तो सोच देखा।

श्रीधर—लो मा, जब तुम कह रही थीं तभी मैंने सोच लिया। कुछ भी तो नहीं दिखाई देता।

केला—दिखाई कैसे दे बेटा! अन्धेरे में भी भला कभी कुछ दिखाई देता है? आज तेरे कुर्त्ते का बटन टूट जाता है तो तू खुद ही उसे टाँकने बैठता है। किसी कपड़े के फट जाने पर भी दूसरे को नहीं सीने देता। घर में रहता है फिर भी अपने कपड़े आप ही धोता है। मैं पूछती हूँ कि जब घर भर के लिए धोबी है तो तुझे ही अपने कपड़े उसे देने में आफत क्या?

श्रीधर—क्या करूँ मा, कपड़े ही इतने कम हैं कि धोबी को दे दूँ तो फिर नंगा ही बैठना पड़े।

नर्मदेश्वर—पर भाई कपड़े तो बढ़ाए जा सकते हैं। मैंने कितनी बार कहा कि अब इस धोती-कुर्त्ते को छोड़ दो, दूसरे ले लो। दो-दो धोती कुर्त्तों में काम भी ठीक से नहीं चलता, इस लिए दो एक और बनवालो। पर तुम भी ऐसे हठी हो कि किसी की सुनते ही नहीं। रात को ठंड के दिनों में भी ठंडे जल में कपड़े धोने बैठोगे। कितना कहा कि यह बनारस नहीं कनखल है। यहाँ का जाड़ा पत्थरों को ठिठुरा देता है। तुम्हें तो, लगता है कि, बीमारी तक का डर नहीं।

श्रीधर—लीजिए, अब आप भी बिगड़ उठे। मा ही काफी थीं, ऐसी बातों के लिए। आप इन जरा-जरा-सी बातों को खामख्वाह तूल दे रहे हैं।

नर्मदेश्वर—ये भी जराजरा-सी बातें हैं। मुसीबतें भोगते हो, बीमार तक पड़ सकते हो, पर यह तुम्हें लेखे कुछ नहीं।

श्रीधर—पर आप ही बताइए कि जो कभी बीमारी मेरे पड़ोस में भी आई हो या कि जुखाम के नाम पर एक छींक ही आई हो। आदमी के प्राण तो कुछ ऐसे होते हैं कि इन्हें कोमल और कठोर सभी कुछ बनाया जा सकता है।

केला—पर कोमलता में कौन सा पाप है? कठोरता ही तुम्हें इतनी प्रिय क्यों है? जीवन का धर्म क्या सभी स्वाभाविकताओं का हनन कर डालना है।

श्रीधर—अब मैं इन बातों पर तुमसे कैसे बहस करूँ। जीवन दो कूलों में बंधा कोई निश्चित प्रवाह भी नहीं। जन्म और मृत्यु के अतिरिक्त सभी बंधन बेकार और कृत्रिम हैं। जिस किसी दिशा में इसे प्रवाहित किया जा सके, इसका विकास किया जा सके वही ठीक। उसी दिशा में बढ़कर वह अपने अन्त से जा मिलेगा। जन्म ले चुकने के बाद मरने के लिए कोई खास प्रयत्न करना नहीं पड़ता। जो कुछ करना होता है जीने के लिए। और यदि यह जीना भी एक दिन मर जाने के लिए हो, तो मेरी राय से बेकार है। इस जीने का कोई प्रयोजन होना चाहिए, फिर चाहे कितना भी मामूली प्रयोजन क्यों न हो। ऐसा जीवन भी सार्थक होगा। ऐसे जीवन का अन्त भी सार्थक होगा।

नर्मदेश्वर—आज तुम्हें पहली बार अन्त के बारे में सोचते देख रहा हूँ। मुझे तो अचरज हो रहा है कि तुममें इतनी कोमलता भी कैसे बाकी रही?

श्रीधर ने हँसकर कहा—पत्थर तो नहीं हूँ पंडितजी। थक मैं भी सकता हूँ, और जब बिल्कुल थक ही जाऊँगा तो मृत्यु का चिर विश्राम अवश्य पसन्द करूँगा।

केला—पर इस एक जीवन में थकान तो बराबर आएगी। पहली ही थकान पर अगर तुम ऐसी बेहूदी कामना करने लगोगे तो जिस प्रयोजन के गीत गाते हो वह सब धरा ही रह जाएगा। तुम ऐसा क्यों नहीं करते कि जीवन के प्रयोजन के साथ-साथ जीवन की स्फूर्ति भी रहे, जिसमें जीवन की थकान केवल मौत ही न बन जाए।

नर्मदेश्वर इन बातों में विशेष दिलचस्पी ले रहा था। मन ही मन उसने शारदा का स्मरण किया और वैसे ही उससे पूछा—शारदा तुझसे कई बार पूछ चुका, आज फिर पूछता हूँ कि तेरी नीरजा के लिए यह श्रीधर कैसा रहेगा।

तब नर्मदेश्वर का दूसरा मन बोला—पर यह श्रीधर भी माने तब न।

और केला भी जब ऐसे ही अपने मोह को न रोक सकी तो श्रीधर से सभी कुछ स्पष्ट कहने पर उतर आई। नर्मदेश्वर की इच्छा वह जानती थी और नीरजा का हृदय भी उससे छिपा न था। पर जो आज तक जान न पाई थी तो इसी श्रीधर को। वह सोच-सोचकर रह जाती कि कैसा बेवकूफ, भोला या पत्थर है यह लड़का।

केला की बात का जवाब देते हुए श्रीधर ने कहा—लो मा अब तो तुम्हारी बातें अधिक गंभीर होने लगीं। मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।

केला—जाने तेरी समझ यहीं आकर कुन्द क्यों पड़ जाती है। आज तेरी अपनी मा होती तो क्या इसी तरह तेरी बातों के बहकावे में आ जाती। नहीं, आज तो मैंने निश्चय कर लिया है कि तेरी शादी का निबटारा करूँगी ही। जब तक तेरा ब्याह न हो जायगा, तू आदमी नहीं बन सकेगा। जो यह अपने जीवन और स्वास्थ्य के प्रति गैर जिम्मेदारी भरी हुई है, वह भी दिमाग से दूर हो जाएगी।

श्रीधर—क्या बात करती हो मा तुम भी। बीबी क्या मा से भी बढ़कर होती है ? तुम जन्मदायी मा की बातें करती हो पर अभी भी मेरी दोनों माएँ हैं। एक तुम हो मा, मेरे स्नेह की मा। एक मेरी मातृभूमि है मा, मेरे जीवन और कर्त्तव्य की मा। इनका दुलार ही मेरे सुख के लिए पर्याप्त है।

नर्मदेश्वर—मैंने तो सुना था श्रीधर कि आदमी अधिक समय तक अपने आपको धोखा नहीं दे सकता। समय उसकी आँखें खोल ही देता है। पर लगता है कि तुम समय को ही धोखा देने को तैयार हो। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम विवाह को बातें बना-बनाकर कैसे टाल दे सकते हो। बेटा, विवाह एक अनिवार्य आवश्यकता, पालनीय कर्त्तव्य और अनुपेक्षनीय उत्तरदायित्व है। फिर तुम ही भला इन सबसे कैसे मुक्त हो सकते हो।

श्रीधर—मुक्त होने का तो तभी विचार करूँ जब कि अमुक्त होने की अनुभूति या संभावना हो। मैं बुद्धि का उपासक हूँ। फिर भी बहुत सी अतर्कित बातों पर अनायास ही विश्वास कर लेता हूँ। अपने जीवन और विचारों को देखकर तो लगता

है कि विवाह मेरे जीवन की असंभव घटना होगा। देखिए न जो आज मुझे अपना प्रत्येक काम खुद ही करने में आनन्द आता है, यह भी मेरे ऊपर ईश्वर या प्रकृति की महती अनुकरण है। प्रकृति मनुष्य को प्रारंभ से ही ऐसी प्रकृतियाँ देती है जो कि उसके लिए अनिवार्य होती हैं। प्रायः लोग इस मर्म को न समझकर जीवन को दुःखद बना डालते हैं। आप यह तो मानेंगे ही कि प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक काम नहीं लिया जा सकता। प्रायः हर कोई एक ही काम के उपयुक्त होता है और जो अधिक कामों में उपयुक्त सिद्ध होते हैं, मेरी दृष्टि से वे श्रेष्ठ हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी शक्ति और श्रेष्ठता कितनी है। जिन कार्यों के मैं अनुपयुक्त हूँ वे अमृत होकर भी मेरे लिए विष-कल्प हो जाएँगे।

केला—यह तो तू बुद्धि की लड़ाई लड़ने लगा बेटा, जिसमें जरूर ही हम तुमसे हार जाएँगे। पर दुनिया का अनुभव हमारे साथ है और उसी आधार पर कहते हैं कि विवाह जीवन की न केवल कमियों को दूर करता है और आकांक्षाओं को तृप्त करता है बल्कि आदमी को भूलों से भी बचाता है। शायद तुमने अभी इस पर विचार किया ही नहीं।

श्रीधर—इस बात का जवाब तुम्हें अच्छी तरह नहीं दे सकता मा, फिर भी कहूँगा कि भूलें जीवन में क्वचिद् हो सकती हैं। पर इस क्वचिद् के भय से ही मैं विशाल जीवन को बाँध नहीं सकता, और न उसके मुक्ति-प्रसार की संभावनाएँ ही नष्ट कर सकता हूँ।

नर्मदेश्वर—तो श्रीधर ऐसे तुम कब तक चल सकोगे?

श्रीधर—जब तक कि मेरा काम अधूरा रहेगा। यह भी मेरा एक दूसरा तर्कहीन विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति तभी मरता है जब कि उसका जीवन निष्प्रयोजन हो जाए। संकीर्ण प्रयोजन बने रह सकते हैं, किन्तु यदि किसी का जन्म ही किसी विराट् प्रयोजन से हुआ हो तो उसकी सिद्धि के बिना उसकी मौत संभव नहीं। मैं इसी तरह जीऊँगा पंडितजी और अच्छी तरह जीऊँगा। मेरा अपना काम इतना स्फूर्तिकारक है कि मुझे जीवन की थकान में आदमी के आश्रय की या जीवन की हार में किसी के अवलम्ब की आवश्यकता न होगी।

अपनी बात समाप्त कर श्रीधर ने देखा कि नर्मदेश्वर की आँखों की ज्योति मन्द पड़ती जा रही है, जैसे उसके हृदय का चिरकाल से संजोया आशा-दीप बुझ गया हो। अचानक श्रीधर को ध्यान आया कि तो क्या आज तक नर्मदेश्वर का यह आग्रह व्यक्तिगत स्वार्थ और मोह के कारण ही रहा। तभी उसने अपनी दृष्टि उसके चेहरे से हटाकर कमरे की खिड़की से दिखाई देने वाले आँगन पर डाल दी, और तभी उसने यह भी देखा कि नीरजा जो अवश्य ही उसी खिड़की के पास खड़ी उसकी सब बातें सुन रही थी, धीरे-धीरे आँगन को पार कर रही है। उसकी आँखें उसके साथ-साथ तब तक रहीं जब तक कि उसकी पीठ पर लहराती उसकी सुन्दर वेणी उसे दिखाई देती रही। उस क्षण श्रीधर ने भी नीरजा की व्यथा और उसकी वेणी की सुन्दरता का एक नया अनुभव किया था।

कला ने उसे चुप देख कर कहा—बेटा, जीवन न तर्क है न हठ। इन दोनों से आगे और अतिरिक्त भी यह धूप-छाँह-सी

बहुत कुछ है। तूने धूप-छाँप में से सिर्फ एक को ही सत्य मान लिया है। पर समय रहते ही अगर तूने इस अधूरे सत्य की भूल को न सुधारा तो बुद्धि का किला मामूली-से-मामूली कम-जोरियों की टक्कर में ढह जाएगा।

श्रीधर ने भी उस दिन पहली बार कमजोरी का अनुभव किया। उसके कानों में केला के शब्द गूँजते रहे और आँखों में नीरजा की वेणी लहराती रही।

चौदह

अचानक एक दिन कश्मीर पर पाकिस्तान का हमला होगया। नाम कबाइलियों और आजाद कश्मीर के संस्थापक किसी नेता का था तथा हमलावरों में कबाइलियों की संख्या भी अधिक थी, फिर भी इसके पीछे पाकिस्तान के मीर की कूटनीति और दुरभिसन्धि ही काम कर रही थी। जिस तेजी से ये हमला कर चढ़े और थोड़े ही समय में कश्मीर के एक बड़े हिस्से पर अपने खूनी कारनामे नक्श कर दिये उसे देखकर तो जान पड़ता था कि कश्मीर की चढ़ाई बहुत दिनों की तैयारी के बाद की गई चढ़ाई थी जिसमें विदेशियों की सहानुभूति और यान्त्रिक सहायता, कबाइलियों की मूर्खता, और पाकिस्तान का महत्तर स्वार्थ अपने धन-बल और जन-बल के साथ शामिल था। इस संकट के आ-पड़ने पर कश्मीर-नरेश ने हिन्दुस्तान से सहायता की याचना की और उसके साथ-साथ हिन्द-संघ में शामिल होना भी मंजूर कर लिया। ये सब बातें इतनी तेजी से हुईं कि अपनी ही मुसीबतों में फँसे हिन्द को कुछ कहने और सुनने का मौका तक न मिला।

हिन्दू-संघ का निश्चय अभी दुनिया के सामने न आया था। जुगल जो कि आजादी के नशे से अब जाग चुका था और जिसके व्यक्तिगत स्वार्थों ने उसे फिर से साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय सरकार का विद्वेषी बना दिया था इस समाचार से क्षण-भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़-सा होगया। आजकल वह सुशील से मिलकर संघ के संगठन का काम कर रहा था और उसके सामने कनखल, ज्वालापुर की बस्तियों और उसके आस-पास के गाँवों में बसी मुसलमान आबादी को निकाल बाहर करने की योजना थी। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह और उसके साथी सभी तरह से तैयार थे। जो थोड़ी-बहुत हिचक थी वह जुगल के दिमाग में ही थी। उसके साम्प्रदायिक जोश के सामने कभी लालकुर्ती के आदर्श आकर खड़े हो जाते तो कभी श्रीधर। श्रीधर थोड़ी देर के परिचय में ही उसके दिल की गहराई में समा चुका था और मानो वह वहीं से उसे पुकार-पुकार कर कहता—जुगल जो काम मुसलमान के लिए बुरा है वह हिन्दू के लिए इसीलिए अच्छा नहीं हो जाता कि मुसलमान ने हिन्दू के साथ वैसा किया। हमसाया लोगों की जान लेना, लूटना, अस्मतपर हाथ डालना और मनुष्यता से गिरे काम करना किसी भी हालत में समर्थन के योग्य नहीं।

यह आवाज कुछ ऐसी होती कि जुगल का प्रतिशोध उबल ही न पाता। कभी वह खुद मनुष्यता के स्तर से अपने कष्टों और मुसीबतों को सोचकर अनुमान लगाता कि उसके थोड़ी-सी भी गैर-जिम्मेदारी करते ही सैकड़ों-हजारों निर्दोष जन और परिवार उसी जैसी मुसीबतों के शिकार हो जाएँगे। फिर जबकि

उसे अपनी ही तकलीफें व्यक्तिगत स्तर से प्रतिशोध के लिए उकसातीं और मनुष्यता के स्तर से उसे शान्त भी कर डालतीं।

पर कश्मीर के युद्ध को जाने उसने क्या समझा कि इस एक समाचार ने ही जैसे 'लालकुर्ती' के संस्कारों को उखाड़ फेंका, श्रीधर की बातों के लिये उसे बहरा कर दिया। उसने मान लिया कि हिन्दू और हिन्दुस्तान के लिए ये मुसलमान हमेशा खतरनाक हैं। उसके देश से उसका प्यारा सरहद ही नहीं अलग हुआ, अब कश्मीर भी होगा।

कश्मीर उसका इतना अपना जीवन के एक खास संबंध से होगया था। उसकी अपनी खूबसूरत बीबी जिसकी बर्फ-जैसी हथेलियों को हाथ में लेकर बैठा-बैठा वह चुपचाप सारी रात गुजार देता था इसी कश्मीर की थी। कश्मीर का सारा सौंदर्य, सारी रमणीयता, सारा आकर्षण जैसे उसकी अपनी पत्नी में समाया था। वे शिखरों के उठान, वे झीलों की गहराइयाँ, झरनों का कलनाद, हवा की मस्ती, केसर की महक, सेबों की लाली क्या और क्या नहीं उसकी सुन्दर पत्नी के अंगों में प्रतीक बनकर समा चुके थे। आज उसकी वह खूबसूरत और प्यारी पत्नी तो जिन्दा न थी मगर उसकी ताजी याद की तरह ही ताजा कश्मीर जरूर था। उसने महसूस किया कि सरहद के मुसलमानों के जहर ने उसकी बीबी को तो खत्म किया था उसके देश को भी तबाह करने जारहे हैं। मानो उससे उसके प्यार का स्वरूप छीन लेने के बाद, उस स्वरूप की स्मृति का आधार भी छीन लेने की कोशिश की जा रही हो।

जिस समय कश्मीर के हमले का समाचार उसे मिला वह

नर्मदेश्वर के मकान के पास से होकर गुजर रहा था। सहसा उसके दरवाजे के पास पहुँचकर वह रुक गया और जाने क्या सोचकर दरवाजे पर से ही आवाज लगाई—श्रीधर!

श्रीधर उस जानी-पहचानी आवाज को सुनते ही दौड़ा-दौड़ा बाहर आया। 'भैया' शब्द के अभाव में इस आवाज की सहज मधुरता कटुता में बदलती-सी जान पड़ती थी। पर उस समय उसे इन सब बातों पर सोचने की फुर्सत न थी। आते ही बोला—भले आए मेरे राजा भैया! मुझे तुम्हारी ही तलाश थी। ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया। जाने कहाँ रहते हो। चलो अन्दर चलो! यह क्या आज दरवाजे पर से ही चिल्लाने लगे।

जुगल श्रीधर के साथ हो लिया। उसके साथ अन्दर आते-आते फिर से वह किसी कमजोरी को महसूस करने लगा। जिस इरादे से वह यहाँ अचानक रुक गया था उसे क्या श्रीधर पर जाहिर कर सकेगा? श्रीधर के अपनत्व-भरे शब्द उसकी कठोरता छीन रहे थे; जबकि इस समय उसे उसी कठोरता की सबसे ज्यादा जरूरत थी।

अपने कमरे में पहुँचकर उसे बैठाते हुए श्रीधर ने कहा—आज इस तरह परेशान से क्यों हो जुगल!

जुगल ने किसी तरह कह डाला—परेशानी की बात पूरी पूरी है। मुझे एक बात बताओ कि कश्मीर के लिए आपका हिन्दुस्तान क्या करने जारहा है।

श्रीधर—ठीक-ठीक तो कुछ नहीं कह सकता, भाई। लेकिन जबकि कश्मीर ने हिन्द-संघ में शामिल होना स्वीकार कर लिया है और इस संकट के समय वहाँ की हिन्दू-मुसलिम जनता ने

हिन्द की गुहार की है तो ऐसी स्थिति में हिन्द सभी कुछ अपना कर्त्तव्य समझकर करेगा।

जुगल—पर आज कश्मीर को कबाइलियों और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की कोरी बातें नहीं बचा सकतीं। सिर्फ फौजें ही यह काम कर सकती हैं। पर मुझे बताओ कि आपके गांधीजी यहाँ भी अपनी अहिंसा छोड़ेंगे।

श्रीधर—उनकी अहिंसा छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं आता भाई और न वे उसे छोड़ने के लिये तैयार ही होंगे, फिर चाहे कश्मीर तो कश्मीर हिन्दुस्तान भी रहे या जाए। पर तुमने यहाँ उनकी अहिंसा को गलत समझा। उनकी अहिंसा में कायरता नहीं। किसी भी कायरता से उन्होंने बल-प्रयोग को श्रेष्ठ समझा है। वे जरूर ही कश्मीर के मामले में हिन्दुस्तान को बुजदिलों की-सी नीति बरतने न देंगे।

जुगल—मगर हैदराबाद की ज्यादतियों को देखते हुए कौन उम्मीद कर सकता है कि हिन्दुस्तान की सरकार के पास बहादुरी भी है। बोलो यह सब-कुछ जानते हुए भी हम सब कैसे इस सरकार के पीछे चलें। कैसे वतन के दुश्मन मुसलमानों का भरोसा रखें। जब हमारे दुर्भाग्य से पाकिस्तान बन ही गया तो क्यों न हिन्दुस्तान की जमीन को भी मुसलमानों से पाक करदें।

श्रीधर—बहुत-सी बातों को एक साथ न मिलाओ भाई! कश्मीर का मामला हिन्द सरकार का मामला है और मेरा विश्वास है कि वह इतनी बलशाली है कि कश्मीर की स्वतंत्रता की रक्षा किसी भी क्षण कर सके। हमारी फौजों ने भी दो-दो विश्व-युद्धों को जीतने में महत्वपूर्ण काम किया है। कश्मीर का

रणक्षेत्र उनकी बहादुरी का कलंक नहीं बन सकेगा। और फिर तुम किस कारण से मुसलमान का हिन्दुस्तान में रहना नापाक समझते हो। भूलते हो कि हिन्द की आजादी की लड़ाई में मुसलमान भी शामिल था।

जुगल—पर मुसलमान का कितना हिस्सा ?

श्रीधर—मैं तो कहता हूँ कि अगर मुसलमान के खून की एक बूंद भी हिंद की आजादी के लिए गिरी है तो हिन्द उसका है। न भी गिरी होती तो भी उसका ही रहता और उसकी समझ जागते ही हम खुशी-खुशी उसे उसका हक सौंपते। कुछ भी हो पर कश्मीर के हमले से तुम्हें उत्तेजित होने की क्या जरूरत है ?

जुगल—आपके जैसे निरे आदर्शवादी यह नहीं समझ सकते। खैर, मैं आपको यही बताने आया था कि हम आज ही ज्वालापुर के मुसलमानों पर हमला करेंगे। आपको बतलाना इसलिए जरूरी था कि आप हमारे रास्ते में न आएँ।

श्रीधर—और तुम्हें, अपने ही प्यारे भाई को गलत रास्ते पर जाने दूँ ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरे जीते जी तुम कभी कोई ऐसा गुनाह न कर सकोगे।

जुगल—मैं सोचता हूँ कि सही-गलत रास्ते की तमीज औरों को भी है। गुनाह को हम भी परखते हैं। इसलिए अब आप हमें समझाने की बेकार कोशिश भूल कर भी न करें।

श्रीधर—जुगल जब मैं अपने लोगों की ये सब बातें सुनता हूँ तो मुझे लगता है कि जो जीत कायदेआजम जिन्ना की पाकिस्तान बना लेने पर भी नहीं हुई वह अब हो रही है।

हमारे किसी नेता ने दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को आज तक नहीं माना पर वह अपनी चालाकी से हमारे दिलों में फर्क पैदा कर भेद की खाइयाँ बना कर दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को प्रमाणित करने में सफल हो रहा है। यह हमारी और हमारे बड़े-से-बड़े नेता की ऐसी हार होगी जिस पर सारी दुनिया हँसेगी। मुझे ताज्जुब है कि आज तुम लोग अपनी ग़लतियों से पाकिस्तान के हामी, समर्थक और बल देने वाले ही नहीं बन रहे हो, बल्कि स्वदेश का अकल्याण भी कर रहे हो।

युगल—अब पाकिस्तान बन जाने के बाद हिन्दू-मुसलमान के आधार पर दो राष्ट्रों का सिद्धान्त न मानने की गुञ्जाइश भी कहाँ रह जाती है?

श्रीधर—अवश्य रह जाती है। राजनीतिक स्वार्थों के लिए धर्म के नाम पर हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग किए गए, हिन्दुस्तान का बँटवारा हुआ; पर कितना ग़लत। आज भी सरहद में बादशाहखान और डाक्टर खान जैसे सच्चे, नेक और देशभक्त मुसलमान अपने हिमायतियों के साथ-साथ जेलों में पड़े हुए हैं। कश्मीर में शेख अब्दुल्ला जो कुछ कहता है, जिस आधार पर पाकिस्तान का विरोध और हिंद का समर्थन करता है उसमें भी उसको मुसलमान नीयत नहीं। आज भी तुम्हारे अपने बीच मौलाना आज़ाद जैसे लोग हैं। फिर तुम एकता की इन जीती-जागती मिसालों को देख कर भी कैसे हिन्दू-मुसलमान के फर्क को झूठी दलीलों और ग़लतफ़हमियों से साबित कर सकते हो।

युगल ने उठते हुए कहा—मुझे जो कुछ कहना था मैं कह

चुका। अब आप से जाते-जाते फिर यही कहना है कि हिन्द के दुश्मन मुसलमानों को तबाह करने के लिए हम उनके हमदर्द हिन्दुओं को भी वैसा ही समझेंगे।

जुगल इतना कहकर तेजी से चला गया। श्रीधर क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़-सा बैठा रहा। कुछ सोचकर जैसे ही बाहर जाने के लिए उठा तो नीरजा उसके मार्ग में खड़ी थी। क्षणभर के मौन के बाद बोली—तो आप जाएँगे ही ?

उसके कहने के ढंग से श्रीधर को पता चल गया कि उसने जुगल की बातें सुनली हैं। बोला—हाँ, मुझे जाना ही चाहिए। देर करने से अनर्थ हो सकता है।

नीरजा—अच्छा, तो मैं भी साथ चलती हूँ।

साश्चर्य श्रीधर के मुख से निकल पड़ा—आप! आप भी मेरे साथ जाएँगी!

उसने अनुभव किया कि कोई आवेग नीरजा को उसकी ओर ढकेल रहा है। जो नीरजा आज तक दर्प में जीवित थी वही उसके सामने जैसे अनुनय में झुक रही हो। तभी उसकी आँखों में कल का एक स्मृति-चित्र जाग गया। नीरजा धीरे-धीरे आंगन पार कर रही थी। उसकी सुन्दर वेणी श्रीधर की आँखों में झूल रही थी। उस चित्र से भरी आँखों से उसने सजीव नीरजा की ओर देखा। नीरजा काँपते होठों से बोली—आप मुझसे तुम कहकर भी नहीं बोल सकते। सभी के लिए आपके पास स्नेह है, किन्तु……।

उसकी आँखें बरसना चाहती थीं। गला उन्हीं आँसुओं से फँस गया था। श्रीधर तत्काल बोल उठा—क्या कहती हो

नीरजा ? मुझे तो तुम्हें तुम कहने में प्रसन्नता ही होगी। आप कहने की तो मेरी आदत भी नहीं। तुम कहीं मेरे इस अधिकार से बुरा न मान जाओ इसी से आप कहता था। अच्छा तो अब मुझे जाने दो।

नीरजा ने भर्राए स्वर में कहा—शब्दों का आग्रह तो आपके लिए व्यर्थ है; पर क्या आँसू भी आपके लिए उसी तरह उपेक्षनीय हैं ?

श्रीधर—नहीं, ये अमूल्य निधि हैं। इन्हें व्यर्थ ही मत लुटाओ। हमारे देश की देवियों ने इन मुक्ता-रत्नों को निरन्तर लुटाया है। पर इससे कभी कोई विशेष सिद्धि नहीं हुई। मैं तुमसे भी कहूँगा कि अब आँसुओं के स्थान पर दृढ़ता का वरण करो। शक्ति का परिचय दो।

पर श्रीधर ने तब यह जान कर भी नहीं जाना कि जहाँ स्वयं दृढ़ता पराजित हो जाती है वहाँ आँसुओं की विजय होती है। आँसू की शक्ति का उस समय उसने खुद अनुभव किया, पर स्वीकार करने से हिचक रहा था।

नीरजा—आज आपके पास केवल उपदेश ही उपदेश क्यों रह गए हैं ? क्या दूसरों की भावनाओं का आपके हृदय में कोई आदर नहीं ?

श्रीधर—सो कहकर कैसे प्रकट करूँ। अच्छा तो अब यह बचपना छोड़ो। मुझे जल्दी ही जाकर कुछ न कुछ करना चाहिए।

नीरजा—पर आप अकेले कर भी क्या सकते हैं ?

श्रीधर—अपनी जान दे सकता हूँ। जरूर ही अपनी जान दे सकता हूँ। निश्चय ही मेरे रहते यह अनर्थ न हो सकेगा।

नीरजा पीड़ित स्वर में बोली—आपने अपनी जान को इतना तुच्छ क्यों समझ लिया है। क्या किसी एक दुर्घटना के साथ आपके सभी प्रयोजनों का अन्त न हो जाएगा?

श्रीधर—ये सब मोह न खड़े करो अच्छी नीर! मुझे बड़ी से बड़ी बात का त्याग करके मामूली से मामूली अच्छाई के लिए बलि हो जाने की शक्ति दो।

नीरजा ने गला साफ करके कहा—तो ठीक है। मैं भी आपके साथ हूँ। आप साहसपूर्वक आगे बढ़ें।

श्रीधर—यह कैसे हो सकता है नीरजा! मुझे तुम्हारे प्राणों को संकट में डालने का कोई अधिकार नहीं।

नीरजा—सभी बातें अधिकारों के आधार पर नहीं समझी जा सकतीं। फिर आपको नहीं तो मुझे तो अपना अधिकार है न!

यह अधिकार की बात न थी जो श्रीधर नीरजा को साथ चलने के लिए रोक रहा था। यह उसका मोह था जिसे खुद उसने धड़कते दिल की आवाजों में महसूस किया। आज उसके मन की हालत ठीक उस बच्चे जैसी थी जो खुद चोट खाजाता है पर अपने प्यारे खिलौने को बचा लेना चाहता है। दूर-दूर रहने वाली नीरजा उसके लिए और कुछ नहीं तो ऐसा एक खिलौना जरूर हो गई थी जिसे वह किसी भी तरह बचा लेना चाहता था।

किन्तु इस खिलौने को बचाने में आज श्रीधर को अपने

कर्त्तव्य और विश्वास से विमुख होना पड़ता। इस एक क्षण में उसने यह भी महसूस किया कि सिद्धान्त के लिए प्राण दे देना जितना सरल है उतना सरल मोह की बलि दे देना नहीं; फिर चाहे मोह एक खिलौने का ही क्यों न हो। मनुष्यता के पूरे इतिहास में आदमी ने इसी प्रकार मोह को प्राणों से ऊपर रखा है। उसने प्राण छोड़ दिये पर मोह न छोड़ सका। श्रीधर इसी विषम परिस्थिति में था। उसके एक मन ने कहा—श्रीधर नीरजा सही तो कहती है! क्यों अपने प्राणों को इतना तुच्छ समझता है?

श्रीधर सोच में पड़ गया। उसी मोह ने फिर कहा—श्रीधर जिस कर्त्तव्य और सिद्धान्त के लिए तू मरना चाहता है वह भी तो एक रूप में तेरा मोह ही है। क्या तू सिद्धान्त के मोह के लिए प्राण न देकर नीरजा के मोह के लिए जीवित भी नहीं रह सकता? क्या नीरजा तेरे लिये इतनी तुच्छ है?

श्रीधर की आँखों में नीरजा की वेणी लहरागई, आँसू चमक आए। वह स्वीकार ही नहीं कर सका कि क्या ऐसी नीरजा किसी से तुच्छ भी हो सकती है।

पर श्रीधर का ही दूसरा मन कहता—श्रीधर, क्यों अपने जीवन को एक अन्य व्यक्ति की इच्छाओं के सुख-दुःख में बाँध रहा है?

श्रीधर सोचने लगा!

फिर उस दूसरे मन ने कहा—अपने जीवन को अमर करना हो तो उसे अपने विचारों, सिद्धान्तों और आदर्शों का चोला दे! व्यक्ति तो मरते और जीते रहते हैं। उनके मोह की सीमाएँ भी

टूटती-बनती रहती हैं। पर विचारों, सिद्धान्तों और आदर्शों के पीछे युगों का जन-प्रवाह होता है। तू एक जन की इच्छा के लिए क्या अनन्त जनों के जीवन-तथ्यों की उपेक्षा कर डालेगा?

सोचते-सोचते श्रीधर ने सिर उठाया। उसने देखा कि उसके सामने ही नीरजा उसकी कमजोरी की तरह खड़ी है। वह उसके सिर के ऊपर, और ऊपर देखने लगा और उस शून्य को देखकर उसने सोचा कि कमजोरी की सीमाओं के बाहर भी बहुत-कुछ है। शून्य में लिपटा हुआ एक विराट् है जिसकी खोज करनी ही चाहिए। नीरजा के मोह में अपने आपको हार देने का मतलब था नीरजा को लेकर उस विराट् से वंचित हो जाना।

पर इससे पूर्व कि श्रीधर नीरजा को कुछ कहे नर्मदेश्वर ने बाहर से दौड़ते हुए आकर हाँफते-हाँफते कहा—सुना श्रीधर! बड़ा बुरा हुआ। कनखल के मुसलमान डर से बस्ती छोड़कर बाहर भाग रहे थे कि एक भीड़ ने उन्हें घेर कर खत्म कर डाला। काफी लोग मारे गए। ज्वालापुर और उसके आस-पास के गाँवों में भी उपद्रव होगया।

श्रीधर हताश-सा वहीं कुर्सी पर बैठ गया। उसने टूटती आवाज में कहा—मुझे पता चल चुका था, फिर भी मैं कुछ न कर सका। सचमुच ही मुझसे पाप हुआ।

इतना कहने के साथ ही उसकी दृष्टि नीरजा पर जा पड़ी जिसे उसने तत्क्षण ही उसकी ओर से हटा लिया। नीरजा ने अनुभव किया कि इस दृष्टि ने उसी को अपराधी समझा है।

नर्मदेश्वर—पर तुम्हें कैसे पता लग गया था?

श्रीधर—जुगलकिशोर से। अभी कोई आधा घंटे पहले ?

नर्मदेश्वर—तब तो तुम्हारे किये हो भी क्या सकता था। यह काण्ड तो इससे भी काफी पहले शुरू हो चुका है। शायद यह जिन लोगों की करतूत है उनका जुगल को भी पता नहीं।

श्रीधर—पर अब हमें जल्दी ही और लोगों को तो इस उपद्रव में शामिल होने से रोकना चाहिये।

नर्मदेश्वर—सो हम तुम अपने आपको आगे करके नहीं कर सकते। कनखल का ही चौक और खास-खास सड़कें शरणार्थियों के ठटों से भरी पड़ी हैं। वे लोग मोटरों, ट्रकों और तांगों में बैठकर ज्वालापुर की ओर बढ़ रहे हैं। वे इस समय इतने जोश में हैं कि उन्हें कुछ भी कहना मूर्खता होगी।

श्रीधर—तो इसका मतलब यह हुआ कि बुराई को बढ़ते देखकर भी हम चुपचाप बैठे रहें ?

नर्मदेश्वर—इस समय तुम भावुक होकर विचार कर रहे हो बेटा ! शक्ति का अपव्यय चाहे अच्छाई के लिये ही किया जाये बुरा है। अगर तुममें बलिदान का साहस है तो इसका कोई फल न होगा कि तुम अपनी व्यर्थ की बातों में जान दे दो। अगर तुम्हारी अकेले की कुर्बानी से यह काण्ड रुक सकता तो मैं कभी विरोध न करता।

श्रीधर—अगर आज यह हमारी बलि लेकर न रुका तो किसी महानात्मा की बलि का कारण होगा ! हमें अपनी हजारों लाखों जानों की कुर्बानियाँ करके भी उस महान् बलिदान को रोकना चाहिए।

नर्मदेश्वर—पर अभी हम और भी बहुत कुछ कर सकते हैं।

इस समय हमें अधिकारियों से सहयोग करना चाहिये। जैसे भी हो जिले और प्रान्त के उच्चाधिकारियों तक तार और टेलीफोन के द्वारा सूचना भेजकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे जल्दी से जल्दी उपद्रव शान्त करने के उपाय काम में लाए जा सकें।

श्रीधर—अच्छा तो अभी यही सही। मैं डाक घर चलता हूँ।

नीरजा—पर अकेले नहीं। पिताजी आप इनके साथ रहिए। ये कहीं भी बहक सकते हैं।

नर्मदेश्वर—हाँ ठीक कहा बेटी। अच्छा चलो, श्रीधर!

पर नर्मदेश्वर और श्रीधर ड्योढ़ी के दरवाजे पर आए तो अपने किवाड़ों को बाहर से बन्द पाया। श्रीधर आपे से बाहर होकर चिल्लाया—यह कौन है जिसने किवाड़ बन्द कर रखे हैं। जल्दी खोलो!

बाहर से आती हुई आवाजों से लगा कि काफी लोग दरवाजे पर जमा हैं। किसी ने जोर से चिल्लाकर जवाब दिया—आप परेशान न हों! किसी चीज की जरूरत हो तो हम ख़ुद पहुँचा दे सकते हैं।

श्रीधर—हमें किसी चीज की जरूरत नहीं। तुम्हारे इस तरह किवाड़ बन्द करके हमें भीतर ही भीतर रोकने का मतलब?

उसी व्यक्ति ने जवाब दिया—सो जुगल भाई ही अच्छी तरह जानते हैं।

श्रीधर और नर्मदेश्वर हताश होकर लौट आए श्रीधर चुप था। नीरजा दोषी की तरह मन ही मन दुःखित होरही थी। नर्मदेश्वर ने अपने ईश्वर को सुनाकर कहा—क्यों भगवान्,

अब क्या तुझे यही अभीष्ट रह गया ! जबकि हमारे देश को सुरक्षा, समृद्धि और देश के लिये सबसे अधिक शांति, व्यवस्था और संगठन की आवश्यकता है तभी ये सब उत्पात होरहे हैं। स्वतन्त्रता के लिए जो रक्त न बहा वह आज इस तरह प्रतिशोध के लिए बह रहा है। और प्रतिशोध भी किससे, ताकतवर भाई का कमजोर भाई से ! अच्छा तेरी माया !

पर्याप्त पुलिस और सेना के अभाव में कई रोज में जाकर स्थिति काबू में आई। ज्वालापुर बस्ती में तो शान्ति-व्यवस्था चौबीस घंटे में ही गई थी, किन्तु गाँवों की आग काफी बाद तक धधकती रही। गाँवों से न तो किसी दुर्घटना की जल्दी से खबर मिलती थी और न सीधी साफ और पक्की सड़कों के अभाव के कारण पुलिस ही समय से पहुँच पाती थी। फलतः उपद्रवियों को मौका मिलता रहा। ज्वालापुर में मुसलमानों की पूरी-पूरी क्षति हुई। एक ही दिन के हमले में यह नौबत आ गई कि जिन्दे और भागने से बचे सभी मुसलमान शरणार्थी बनाकर थाने के आहते में सुरक्षा के लिए रख लिए गए। शरणार्थियों के असन्तोष को देखकर वैसी हालत में मुसलमानों का वहाँ बनाए रखना खतरे से खाली न था। करफ्यू कनखल और ज्वालापुर दोनों ही जगह लगा दिया गया था। जब करफ्यू की घोषणा करदी गई तभी नर्मदेश्वर के मकान के बाहर का पहरा हटा। दरवाजा खुलते ही नर्मदेश्वर को ज्वालापुर के सच्चे-सच्चे हालात जानने की इच्छा हुई। ज्वालापुर में उसके ऐसे कई काँग्रेसी मुसलमान दोस्त भी थे जो अच्छे से अच्छे हिन्दू की अपेक्षा हिन्दुस्तान के अधिक शुभ चिन्तक थे।

नर्मदेश्वर उन्हीं के बारे में सोच-सोच कर परेशान रहता। किसी तरह कोशिश करने पर उसे तीसरे रोज पुलिस से करफ़्यू के वक्त भी बाहर निकल सकने के दो पास मिल गए। पासों के मिलते ही वह और श्रीधर दोनों ज्वालापुर की तरफ दौड़े। कनखल से ज्वालापुर को जाने वाली सड़क से बढ़ते-बढ़ते जैसे ही गंगानहर के पुल तक पहुंचे मनहूसत-सी नजर आने लगी। वहाँ से बस्ती काफी दूर थी, फिर भी चारों ओर की सुनसान और उदासीनता को देखकर बस्ती के बारे में भी अनुमान हो जाता था। रेल की लाइन पार कर चुकने पर बस्ती के बाहर के हिस्से में घुसने पर तो ऐसा जान पड़ा कि कभी यहाँ आस-पास भी आबादी का नाम न रहा होगा। मुसलमानों के मकान खाली और वीरान पड़े थे जिनमें से मौत की सर्द आहें निकलतीं जान पड़ती थीं। जिन मकानों को जलाने की कोशिश की गई थी उनकी तो और भी दुर्दशा थी। अधजली चिताओं की तरह वे आदमी के घोंसले बड़े ही दर्दनाक जान पड़ते थे।

पैदल चलते-चलते नर्मदेश्वर और श्रीधर उन बर्बादियों को देखकर एक दूसरे को देख लेते, शायद क्षणभर के लिए रुक भी जाते और सर्द आह के साथ फिर आगे बढ़ चलते। आने को जाने के लिए मुसलमानों के एक बहुत ही खास मुहल्ले में से जाना पड़ता था। यह कभी कसाइयों का बहुत ही जोरदार मुहल्ला था जो आज आसमान से मकानों के खाली हाथ उठा उठा कर रहम की भीख माँग रहा था। सभी मकानों की कोखें अभागे इन्सान के दिलों की तरह सूनी थीं और बर्बादियों के निशान भी उन पर साफ जाहिर थे। जिन मकानों का सामान

तक न बचा था उनकी दीवारें किसी बची खुची लाश पर ही मातम मना रही थी, या खुदा से इस सारी दुनिया को ही एक बड़ी कब्र की शक्ल में बदल देने की मिन्नतें कर रही थीं। ईंट, पत्थर की दीवारों से भी चीखें निकलती जान पड़ती थीं, मानों अभी अभी उन्होंने जो तबाहियाँ देखीं या मनुष्यता का पतन देखा उसे बर्दाश्त न कर सकीं। जिन दीवारों में औरतों की इज्जत महफूज थीं, बच्चों की खुशियाँ किलकती थीं, नौजवान रंगरेलियाँ करते थे और बुजुर्ग परवर दिगार के सिजदे में झुके रहते थे, उन्हीं दीवारों में औरतों को बेइज्जत किया गया, बच्चों की खुशियाँ छीन की गईं, नौजवानों के साथ पूरा-पूरा बेरहमी का सलूक हुआ, बुजुर्गों को बड़ी से बड़ी जलालत का सामना करना पड़ा। गूंगी दीवारों की सर्द आहों से उनकी ये सब दर्द भरी कहानियाँ सुनते जानते नर्मदेश्वर और श्रीधर थाने तक आ पहुँचे। पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के शिविर तो उन्होंने देखे ही थे पर आज उन लोगों को भी शरणार्थी की हालत में देखा जो कल तक इसी जमीन पर अपना हक समझते और उसे भोगते थे; जमीन की छाती पर आसमान के साये में अपने खानदानी मकानों से निकल-निकल कर हजारों की तादाद में बूढ़े बच्चे और जवान पनाहगीर हो रहे थे। उन पनाहगीरों के पास पहुँचते न पहुँचते उन दोनों के पैर जकड़ गए। उनकी समझ में आता ही न था कि कैसे इन हमसाया लोगों को अपनी शक्लें दिखाएँगे, जब कि हमारी ही तरह हिन्दू कहलाने वालों ने इन पर जुल्म ढहाए। अचानक नर्मदेश्वर की निगाह एक बूढ़े मुसलमान पर पड़ी, जिसकी दाढ़ी और भवों

तक के बाल सफेद हो चुके थे। उस बूढ़े मुसलमान ने भी नर्मदेश्वर को देखा और लड़खड़ाते पैरों से उसकी ओर बढ़ा। पर नर्मदेश्वर उसके अपने पास तक आने की राह न देख सका। वह दौड़ कर उस बुजुर्ग के पास जा पहुँचा और इस तरह उससे लिपट गया जैसे दोनों हम उम्र दोस्त हों। थोड़ी ही देर में दोनों की आँखों से आँसू भी बरसने लगे। इस तरह कितनी ही देर तक एक दूसरे की छाती से लगे रहने के बाद जब वे अलग हुए तो नर्मदेश्वर की आँखें जमीन की तरफ झुकी थीं जबकि बूढ़ा मुसलमान मुसकुराने की कोशिश कर रहा था।

उसने उसी तरह मुसकुराते हुए कहा—क्यों नर्मदा, इस शराफत की याद तुझे आ ही गई।

नर्मदेश्वर—मेरे बुजुर्ग दोस्त, तमाम हिन्दू कौम तो ऐसी नहीं कि जो शराफत को भूल जाए।

शराफत—वाह भाई, तुम तो मेरे नाम के मायने लगाने लगे। तुम्हारे साथ ये कौन हैं ?

नर्मदेश्वर—मेरे बिलकुल अपने, अजीज समझो। नाम श्रीधर है। श्रीधर एम० ए०! बहुत ही काबिल और होनहार! बेवकूफ लोगों ने धर्म के उन्माद में एक बार इस बेचारे तक को मार डाला होता। और अगर इस बार भी दैवयोग से हमारा मकान घेर लिया न गया होता और दरवाजे पर बाहर से साँकलें न चढ़ाई गई होतीं तो किसी भी मुसलमान पर उठने वाला पहला हाथ इसी पर पड़ता। पर मजबूरी में इसे अपने जीतेजी यह सब देखना पड़ा।

शराफत जो अपने एक सच्चे साथी को देख कर थोड़ी देर के लिए अपनी सारी मुसीबतें भूल गया था, फिर से धीरे-धीरे गम्भीर और गमगीन होने लगा। नर्मदेश्वर ने उसके बारे में बताते हुए श्रीधर से कहा—ये यहाँ की काँग्रेस की जान रहे हैं। ज़िले भर में आपकी इज्जत है।

शराफत—नहीं भाई 'थी' कहो। और अब तो मुझे काँग्रेसी भी बताने की गलती न करो। जब लीगियों के साथ इस कतार में बैठा ही दिया गया, मुसलमान होने के नाते मुझे हिन्दुस्तान का दुश्मन समझ ही लिया गया, तो बीत चुकीं कहानियाँ क्या सफाई दे सकेंगी?

नर्मदेश्वर—लेकिन हम कैसे भूल जाएँ कि कांग्रेस के हर आन्दोलन में जनाब जेल गए। हर जुलूस में आगे रह कर लाठियाँ खाईं। गोली से बचे तो तकदीर।

शराफत—अँग्रेज की गोली से न ही बचता तो ठीक था। बचकर क्या पाया? यही न कि अपने ही भाइयों का इतबार खो बैठा। मुसलमानों ने काँग्रेसी समझकर कभी मेरा यकीन नहीं किया और हिन्दुओं ने मुसलमान होने के नाते। किसी का भी इतबार हासिल न कर सकने की शायद यह सजा मिली।

शराफत का भावावेश से स्वर काँपने लगा। नुकीली दाढ़ी हिलती हुई छटपटाती-सी जान पड़ती थी। नर्मदेश्वर ने उसकी गमगीन आँखों में आँखें डालकर कहा—लेकिन शराफतमियाँ, आपको समझने वाले जब कल थे तो आज भी हैं। मगर आप खुद अपनी अच्छाई पर से अपना ही ईमान क्यों उठा ले रहे हैं। लेकिन हाँ, यह तो बताओ कि घर के और लोग कहाँ हैं।

शराफत—लड़के के बारे में तो तुम जानते ही हो। लगा था, कभी का पाकिस्तान चला गया। उसके अलावा जो लोग मेरे साथ रह गये उन्हें इस झगड़े में खुदा ने अपने पास बुला लिया !

नर्मदेश्वर—आप कहते क्या हैं! क्या तीनों छोटे लड़के मारे गए!

शराफत—हाँ लगता तो ऐसा ही है कि मारे गए! पर मैं सोचता हूँ कि वे खुद मरे! हिन्दुस्तान की जमीन में उनका ईमान था, इसकी आजादी के लिये उनमें से हर कोई ब्रिटिश हुकूमत की निगाहों में बागी बनकर जेलों में रह चुका था। उन्हें यकीन था कि हिन्दू इतने जाहिल कभी नहीं हो सकते जो इस तरह उन पर टूट पड़ेंगे। उन्होंने पागल भीड़ के आने पर किवाड़ खोल दिये, जिसका नतीजा यह हुआ कि उनके बीवी-बच्चे भी न बचे। मैं कम्बखत जो जिंदा हूँ इसी से कि उस समय वहाँ न था।

नर्मदेश्वर फिर से रो पड़ा। भीगी आवाज में बोला—आः हमने आपको आपकी देशभक्ति का यही इनाम दिया। आप अंग्रेजों के जुल्म तो भुला सकते हैं, पर उनसे भी हजारगुने बढ़े-चढ़े अपने ही भाइयों के अत्याचारों को कैसे भूल सकेंगे।

शराफत—हिन्दुस्तान की बेहतरी के लिये, आपकी तरक्की और खुशी के लिये भूलना ही होगा भाई! दुःख इसी बात का है कि पाकिस्तान में सताए गए हिन्दुओं ने यहाँ हिन्द की पाक जमीं पर भी वैसे ही नापाक कारनामे कर डाले जैसे कि पाक कहलाने वाले पाकिस्तान में हुए। अच्छा भाई अब ये आँसू

पोंछ लो ! आज की ये मुसीबतें किसी एक इन्सान की मुसीबतें नहीं। ये तो मुल्क-भर की मुसीबतें हैं। मुल्क की मुसीबत में रोया नहीं करते, बल्कि उसे फिर से खुशहाल करने के लिए हिम्मत करके नेक असूलों पर डटे रहना चाहिए। भाई जितना मैं पाकिस्तान में हुए जुल्मों पर रो सकता था, उससे अधिक हिन्दुस्तान में हुए वैसे ही जुल्मों पर नहीं रो सकता। इसलिए अगर अब मेरे आँसू न देखना चाहो तो अपने आँसू भी थामलो।

श्रीधर एकटक शराफत को देख रहा था। उसकी आखें उस सच्चे ईमान वाले पर ऐसे लगी थीं जैसे कोई देवदूत को देख रहा हो। वह उसकी बातें सुन-सुनकर सोच रहा था कि अगर तमाम मुसलमानों में एक भी मुसलमान हिन्दुस्तान का ऐसा खैरख्वाह है तो कौन मुसलमान जाति को हिन्दुस्तान के लिए गद्दार कह सकता है ?

शराफत के बयान से नर्मदेश्वर का दिल ही टूट गया। उसने कुछ जान-पहचान के लोगों की और पूछताछ की। उनमें से कुछ तो पहले ही भाग चुके थे, कुछ इसी फेरे में थे और कुछ इस दुनिया के अजाबों से छुट्टी पा गए थे। इन सब समाचारों के साथ भारी दिल और भरी आँखों से वे दोनों ज्वालापुर से लौट आए। लौटकर उस दिन खाना उनमें से कोई न खा सका।

❀ ❀ ❀

इतना सब कुछ हो जाने पर भी श्रीधर जुगल के बारे में बराबर चिन्तित रहता। उसके बारे में उसका आज भी वैसा

मत न था जैसा कि अन्य प्रतिक्रियावादियों के बारे में। उसका विश्वास था कि जुगल मनुष्यता से गिरकर कभी कुछ नहीं कर सकता। जब उसने इस तरह अपनी आँखों के आगे ही नैतिकता और इन्सानियत की धज्जियाँ उड़ती देखी होंगी तो जाने उस पर कैसी बीती होगी। बहुत कुछ खोज-खबर करने के बाद उसे उसका समाचार सुशील से मिला। उसने बताया कि जुगल घायल होकर कनखल के बंगाली अस्पताल में पड़ा है, उसके चोट इतनी गहरी है कि उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं। चोट तो सुशील के भी आई थी पर बहुत ही मामूली, जो अबतक लगभग ठीक हो चुकी थी। इतना बता चुकने के बाद सुशील ने आगे कहा—लेकिन आप उससे न मिलें तो अच्छा!

श्रीधर—सो क्यों ?

सुशील—उसकी हालत नाजुक है। कहीं आपने ऐसी ही हालत में उसकी आलोचना·····

श्रीधर ने बीच ही में रोककर कहा—तब तो जुगल को मैं तुमसे अधिक जानता हूँ भाई। और यह भी कहूँगा कि तुमने मुझे भी नहीं पहचाना।

सुशील श्रीधर की बात का जवाब दिये बिना ही भरा-भरा चला गया। श्रीधर वहाँ से सीधे बंगाली अस्पताल दौड़ा। वहाँ पहुँचने पर उसे डाक्टर ने बताया कि जुगल की हालत खराब है और वह किसी श्रीधर नाम के व्यक्ति को बार-बार पूछता है। हमने उसके बताए पते पर अभी-अभी एक आदमी को श्रीधर को बुलाने के लिए भेजा है।

श्रीधर ने कहा—श्रीधर मैं ही हूँ। आप मुझे जल्दी ही उसके पास ले चलिए।

श्रीधर को जैसे ही जुगल ने देखा उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ छूट चलीं, मानो उसने श्रीधर के प्रति कोई व्यक्तिगत अपराध कर डाला हो जिसका परिमार्जन आँसू बहाकर कर रहा है।

श्रीधर ने धीरे से उसकी चारपाई पर बैठते हुए कहा—अरे रोते हो जुगल! नहीं, देखो अब मत रोओ!

जुगल के सारे शरीर पर पट्टियाँ बँधी थीं। उसका सिरका जख्म अधिक घातक था जिसमें उसके बचने की उम्मीद न थी। अच्छी तरह से आपरेशन कर दिये जाने के बाद भी खून का निकलना बन्द न हुआ था। पट्टी अभी भी खून से तर थी। आँसुओं को थामने की कोशिश करता हुआ बोला—भैया, आप आगए! मुझे यकीन था कि आप जरूर आएँगे; मुझे माफ करने जरूर आएँगे। मेरे आँसुओं को देखकर यह मत सोचो कि मुझे अपने नजदीक खड़ी मौत का डर है, या जिन्दगी से मोह है। मोह तो सरहद छोड़ते ही टूट चुका था, और अब तो यह मौत ही मेरे गुनाहों की माफी है। फिर भला इस बिन माँगी माफी को कैसे कबूल न करूँगा?

श्रीधर—इस समय तुम्हें यह सब सोचने की जरूरत नहीं। गलतियाँ आदमी ही करता है। अब पहले अच्छे हो जाओ, बहुत से नेक काम करने को पड़े हैं। उनको करोगे तो सभी गलतियाँ दुरुस्त हो जाएँगी।

जुगल—अब मुझे बहकाओ मत भाई। समय करीब है। डाक्टर भी मुझसे न छिपा सका। इसीसे तुमसे मिलने और बातें करने की इजाजत भी मिल गई। पर भैया, अगर मेरी

लाश भी पाकिस्तान में बन जाती तो अच्छा था। यहाँ शान्ति और पवित्रता के देश में आकर तो बेमिसाल गुनाह न करता। आज मेरी आँखें खुल गई हैं। अब तक मैं मुसलमान को ही बुरा समझता था, पर अब जान लिया कि मजहब के दीवाने मुसलमान से धर्मोन्मत्त हिन्दू भी अच्छे नहीं। आः भैया जो-जो सरहद में मुसलमानों ने हमारी मा-बहनों, बहू-बेटियों, बच्चों और बूढ़ों के साथ किया वही सब कुछ तो हमने भी यहाँ किया। फिर कैसे हम अपने आपको बेहतर कहें या उन्हें बुरा समझें। भाई आज मैंने जान लिया कि गलती न तो हिन्दू की है और न मुसलमान की। गलती असल में उस जहालत की है जिसने कि हम सब को गुमराह कर रखा है। मेरे भैया, बताओ न कि हमारे वतन के लोग कैसे फिर से सही रास्ते पर आएँगे।

श्रीधर—समय उनको आप रास्ते पर ले आएगा। अगर समय की भी न मानेंगे तो सदा के लिए नष्ट हो जाएँगे।

जुगल—तुमने कहा तो मुझे यकीन हो गया भैया। अच्छा अब मुझे एक और बात बतादो। मेरे कश्मीर का क्या हुआ?

श्रीधर—कश्मीर में आज हिन्दुस्तान की फौजें लड़ रही हैं। जो हमलावर चन्द ही दिनों में श्रीनगर तक पर कब्जा कर लेने वाले थे, मुँहकी खाकर मोर्चों से भाग रहे हैं। जुगल जानते हो हमारे प्रधान मंत्री ने कश्मीर की रक्षा के लिए क्या कहा है?

जुगल—हाँ बताओ न।

श्रीधर—यही कि जब तक हिन्दुस्तान का एक भी बच्चा जिन्दा है, कश्मीर की आजादी दुनिया की कोई ताकत नहीं लूट सकती।

जुगल की आँखों से गिरते हुए पश्चात्ताप के आँसू खुशी के मोतियों में बदल गए। उसने धीरे से आँखें बंद करते हुए कहा—तो अब मैं खुशी से मर सकूँगा। हमारी आजादी जिन्दाबाद।

इसके अगले ही दिन जुगल का शरीर शान्त हो गया। साँस के फन्दे के टूटते ही वह उस दुनिया में जा पहुँचा जिसके अस्तित्व के बारे में केवल अनुमान ही किये जाते हैं, सही-नहीं तो कोई न बता सका। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि मौत के बाद की दुनिया में अगर कोई फर्क होगा तो अच्छाई और बुराई का। वहाँ न हिन्दू काफिर होगा और न मुसलमान म्लेच्छ। फिर भी आचरणों के लिहाज से आदमी अच्छा या बुरा होगा और अपने पापों के लिए दण्ड भोग कर ही छुटकारा पाएगा। वे सभी खुशनसीब हैं जो गुनाहों की माफी नहीं माँगते, बल्कि उनकी सजा कबूल करते हैं। जुगल ऐसा ही था।

पन्द्रह

श्रीधर ने शरणार्थियों के मध्य काम करने की जो योजनाएँ बनाई थीं वे बनती-बिगड़ती और प्रतिपल बदलती परिस्थितियों के कारण कार्यान्वित न हो सकीं। घटना-चक्र कुछ इतनी तेजी से चल रहा था कि आदमी के सोचने की शक्ति बदलती हुई परिस्थितियों का साथ ही न दे पा रही थी। श्रीधर खुद ऐसी मनःस्थिति से होकर बढ़ रहा था जब कि उसे रचनात्मक कार्यक्रम की अधिक से अधिक आवश्यकता थी। पुस्तकों में अब वह समाधिस्थ हो ही न पाता। लिखने की ओर भी रुचि न थी। दिमाग़ हमेशा नई-नई दिशाओं में दौड़ता रहता। मन अपनी ही अलग उधेड़-बुन में था। ऐसे में नीरजा के कुछ नवीन परिवर्तनों ने श्रीधर के लिए और भी उलझनें पैदा कर दीं। जो श्रीधर कभी क्षणभर के लिए भी अपने बारे में सोच न पाता था, अब वही बराबर अपने में इसलिए डूबा रहता कि कोई नीरजा उसके जीवन में जाने क्या बनकर आया चाहती थी। धीरे-धीरे इसी नीरजा की चिन्ता उसके अपने व्यक्तित्व की चिन्ता बन गई। वह गम्भीर से गम्भीर बातों पर

तो विचार करके, या तर्क के द्वारा किसी एक निश्चित हल तक पहुँच जाता था पर नीरजा का आकर्षण एक ऐसा मसला था जो तर्क की सीमा में ही न आता था, बुद्धि जिसके चरणों तक भी पहुँच न पाती। रह जाती भावनाएँ जो प्राणवसु की तरह बराबर आती, जाती रहतीं। बेचारे श्रीधर ने जिस परिस्थिति की कल्पना भी न की थी वही सामने थी। पुस्तक के अक्षरों में नीरजा का चेहरा झाँकता और जब वह पण्डित नेहरू की लिखी हुई 'हिन्दुस्तान की कहानी' को पढ़ता होता तो उस पुस्तक के प्रसंगों के स्थान पर नीरजा के छोटे-मोटे व्यवहार दिमाग में आने लगते। सफे के सफे पढ़ जाने के बाद वह सोचता कि क्या पढ़ा? वह किताब में लिखा देखता 'कमला' पर, पढ़ता नीरजा। तब हार कर किताब ही पढ़ना बन्द कर देता।

जुगल की मृत्यु हुए काफी दिन बीत चुके थे। नीरजा ने भी उस पर दुःख प्रकट किया। दुःख प्रकट करते-करते ही वह यह भी कह बैठी—इसी तरह हम सब भी एक दिन मर जाएँगे। हमारे पीछे जो कुछ भी रह जायगा उसका वास्ता हमसे कुछ भी न रहेगा। लोग कहते हैं कि मरने के बाद आदमी की भलाई और बुराई ही यश और अपयश बनकर इस लोक में रह जाती है; पर मैं पूछती हूँ कि मरने वाले के लिए तो उसके पीछे होने वाले यश-अपयश में कोई अन्तर नहीं। जितना वह जीवित रह कर पा सका, भोग सका, ले सका कि दे सका उतना ही उसका; बाकी सब तो बात ही बात।

नीरजा कहती जा रही थी और श्रीधर जुगल के बारे में

सोच रहा था—जो जुगल सरहद से जीता-जागता निकल आया, दूसरों के मारे न मरा वही बदले की आग में आप ही खाक हो गया। कैसी दुनिया है? मौत ही कैसी है? क्या यह सिर्फ बहाने खोजती है। कोई मौका-बेमौका इसके लिए होता ही नहीं.....।

तभी नीरजा की एक बात कान में पड़ी, जिससे उसके सोचने का क्रम टूट गया। नीरजा कह रही थी—आप मेरी बात समझ रहे हैं न। हम भी अमर नहीं। अगर आपने मुझे जीते जी अपनी न समझा और मेरे मर जाने के बाद याद भी किया तो उसका मेरे लिए क्या प्रयोजन होगा?

श्रीधर ऐसे चौंका जैसे किसी के झंझोड़ने से नींद खुल गई हो। 'क्या सच ही जिन्दगी ऐसी है', यह एक बात उसके कानों में बार-बार गूँजने लगी, दिमाग में उठने घुमड़ने लगी। नीरजा उसके सामने अप्रच्छन्न यदार्थता की तरह खड़ी थी। उसे देखकर उसने भी सोचा—सचमुच ही हमारे जीवन का सम्बन्ध तो इस शरीर से ही है। इस जीवन की सिद्धियाँ या प्राप्तियाँ इसी शरीर की सिद्धि प्राप्ति हैं। फिर अगर इस शरीर के रहते ही पाने योग्य को न पाया जा सका तो मरने के बाद, शरीर के नाश हो जाने पर किसी भी 'अस्ति' 'नास्ति' की सार्थकता रह ही क्या जायगी?

श्रीधर नीरजा से घिरता गया। उसका जो व्यक्तित्व देश-व्यापी परिवर्त्तनों के प्रभावों को लेकर समय के साथ-साथ विकसित होता चलता था वह एक सुकुमार देह की इच्छाओं से बँधकर गति और विकास तक से विमुख हो गया। पर यह

न नीरजा जान सकी न श्रीधर स्वयं और न अन्य कोई। फिर भी श्रीधर में होने वाले परिवर्त्तन कुछ न कुछ करके नर्मदेश्वर और केला पर भी प्रकट हो चले थे। एक बार ऐसे ही शरीर-धर्म से नीरजा बीमार पड़ गई। बीमारी भी खास न थी। सिर्फ मामूली बुखार था। कभी-कभी कुछ तेज भी हो जाता। पर श्रीधर व्यग्र हो उठा। नीरजा का ज्वर उसे जीवन-चिन्ता का सा ताप पहुँचाने लगा। रात-रात भर उसकी खाट के पास बैठा रहता। नर्मदेश्वर और केला से कहता—आप लोग लापरवाही बरत रहे हैं। ऐसे ही तो बीमारी काबू से बाहर हो जाती है। मैं कहता हूँ कि डाक्टर को जरूर दिखाइए।

नीरजा उसकी इस व्यग्रता पर ओठों ही ओठों में मुसकुराती और प्रसन्न होती। नर्मदेश्वर हँसते हुए कहता—अरे भाई तुम तो नाहक घबड़ाते हो। मैं भी तो आखिर बाप हूँ। कोई खतरे की बात होती तो जरूर फिक्र करता। फिर तुम कहते हो तो कल ही डाक्टर-वैद्य को बुलाकर दिखा दूँगा।

पर श्रीधर मन ही मन इस कल पर बिगड़ उठता। सोचता—भला आज ही क्यों नहीं। कल तक तो जाने क्या-क्या हो सकता है।

केला ने श्रीधर के मन की बात ताड़ कर कहा—देख लीजिए, मैं कहती हूँ कि श्रीधर एक बहुत ही अच्छा पति साबित होगा। यह जरूर ही अपनी पत्नी को बहुत-बहुत प्यार करेगा। उसकी जरा-सी तकलीफ में दिन-रात एक कर दिया करेगा यह जो ब्याह की चर्चा करने पर टालमटोल करने लगता है, सो सिर्फ संकोचवश। कुछ भी हो. मेरा श्रीधर लाखें मा

कहता है और मैं मा बनकर भी क्या अपने बेटे के मन की बात न समझ सकूंगी ?

तब श्रीधर ने यह सुन कर भी कोई विरोध न किया था। केला ने समझ लिया कि अब दुनिया की अक्ल इसमें भी जाग गई। पर नर्मदेश्वर को यह सब कुछ देखने-जानने और केला के बराबर जोर देकर कहने पर भी श्रीधर के ऐसे किसी परिवर्त्तन पर विश्वास ही न होता। वह अलग से कहता—नहीं केला, तुमने श्रीधर को गलत समझा। अभी इसके बारे में कुछ भी निश्चित मत समझो। मैं तो सोचता हूँ कि बाहर की दुनिया की बुराइयाँ देखते-देखते यह घबरा-सा गया है। घर में इसे उनका कुछ अभाव मिला, जिससे यह दुनिया से पलट कर अपने पर आ गया। आज यह कुछ देर के लिए अपने शरीर और शरीर के मोह की चिन्ता करने लगा है। पर यह इसकी सच्ची चिन्ता नहीं। जिस दिन फिर और कोई प्रबल आघात पाकर शरीर से मन की ओर दौड़ेगा, कुछ भी अन्तर्मुखी होगा, तो फिर इसे बाहर की दुनिया की ओर ही आना होगा। अन्तर्मुखी होते ही यह मोह से मुक्त होकर कर्त्तव्य के प्रति फिर से चेत उठेगा। और जैसी कि इसकी भावनाएँ हैं इसका कर्त्तव्य-क्षेत्र किसी एक व्यक्ति या खुद की साधारण इच्छाएँ या सुख-दुःख कभी नहीं बन सकते।

केला चाहकर भी नर्मदेश्वर की इस बात का विरोध न कर पाती। जब कभी वह श्रीधर के सूखे, उदास चेहरे और सफेद स्थिर आँखों को देखती तो उसके प्रति करुणा से भर उठती। उसके मनकी ममता कहती—तो क्या यह अबोध इसी तरह

निजता से शून्य होकर राशिच्युत नक्षत्र की तरह हतकान्त रहेगा।

नीरजा की दृष्टि नर्मदेश्वर के समान इतनी गहराई तक श्रीधर को न परख सकी थी। एक दिन उसने श्रीधर का देवरूप देख लिया था। देवरूप तो वह सदा था। अपने ही मन के दोष से वह उसे सदा अहङ्कारी समझती रही। किन्तु जैसे ही उसका अपने मन का अहङ्कार दूर हुआ तो उसे जान पड़ा कि सचमुच ही श्रीधर अहङ्कार-शून्य है और तब से वह उसके निकट आने के ऐसे ही सवेग प्रयत्न करने लगी जैसे कि गह्वर में गिरकर मिलने को पहाड़ से टूटती-सी प्रपातधारा करती जान पड़ती है। उसका यह प्रयत्न उस दिन तो प्रखर ही होगया जबकि उसने जुगल को, श्रीधर को अपने काम में बाधा न देने की बात कहते हुए सुन लिया था। जुगल सब तरह से कह-सुनकर चला गया था, पर श्रीधर के लिए कर्त्तव्य-जीवन की किसी भी भावना से श्रेष्ठ था। उस दिन नीरजा ने श्रीधर के कर्त्तव्य की परीक्षा लेनी चाही। जानना चाहा कि उसमें और श्रीधर के कर्त्तव्य में श्रीधर के लिए कौन अधिक महत्व रखता है? उसे शीघ्र ही पता चल गया कि वह श्रीधर के कर्त्तव्य से अभी बहुत छोटी है। अपने छोटेपन को महसूस करके, या श्रीधर की कर्त्तव्यनिष्ठा देखकर भी उसमें इस बार पहले जैसी प्रतिक्रिया नहीं हुई जबकि वह कठोर पड़ जाया करती थी। श्रीधर जब नीरजा की बातों में उलझ जाने के कारण ही ठीक समय से अपने कर्त्तव्य के लिए यथा स्थान न पहुँच सका, तो नीरजा ने उसकी क्षुब्ध आकृति को देखकर कोमल पड़ते हुए अपना अपराध स्वीकार कर लिया

था। श्रीधर के लिए यह कोमलता नई थी। आजतक उसने नीरजा का केवल अभिमान-वश कठिन पड़ जाने वाला रूप ही देखा था। इस कोमलता से वह अप्रभावित न रह सका। फलतः जब वह नीरजा के सुन्दर मुख की ओर देखता तो उसकी आँखों में कर्त्तव्य से पृथक् सुन्दरता और आकर्षण का ऐसा लोक खिंच जाता जिसकी आसक्ति ही निराली थी। फिर ज्यों-ज्यों नीरजा कोमल पड़ती गई, श्रीधर उसके प्रभाव में आकर उसकी ओर आकृष्ट होता गया, त्यों-त्यों उसका कर्त्तव्य का आकर्षण भी मन्द पड़ता गया। जाने कब किसने नीरजा के आँसुओं की ओट से, कि मुस्कान की झलक से उसके कानों में धीरे से कह दिया कि जीवन आज तक जितना उसने समझा वह उससे कहीं व्यापक है। जीवन में कर्त्तव्य ही नहीं, अधिकार भी है; और अधिकार वही जो कि योग्य भी हो।

इस प्रकार श्रीधर जीवन के प्रति एक नया कुतूहल जगा बैठा। आजतक कर्त्तव्य ही कर्त्तव्य की धुन में इस तक उसकी दृष्टि ही न गई थी; पर अब उसने अधिकार की भी खोज प्रारम्भ करदी। नीरजा ने ही उसमें यह अधिकार और उसके पर्याप्त रूप से भोग का संस्कार डाला था; अतएव जब श्रीधर अपने जीवन के अधिकार और योग्य की ओर दृष्टि दौड़ाता तो उसे क्षणभर के लिए तो केवल शून्य या अन्धकार ही दिखाई देता पर तभी नीरजा की होठों की मुस्कान उस शून्य को भर देतीं या आँखों की चमक उस अन्धकार में उजाला फैला देती और तब श्रीधर अवश्य हीं सास्थ हो जाता अपने अधिकार के प्रति।

इस अधिकार संस्कार ने ही श्रीधर को नीरजा की अस्वस्थता में परिचर्या की प्रेरणा दी। मानो वह परिचर्या के द्वारा नीरजा की नहीं अपने अधिकार की ही रक्षा कर रहा हो। इसी से वह उसमें इतना अधिक व्यस्त होगया कि नीरजा की मुस्कान के अतिरिक्त कहीं कुछ सोच-समझ ही न पाता। केला की बातें और स्पष्ट विनोद उसके लिए दुरूह होगए। नर्मदेश्वर की अन्तर्भावना उसके लिए दुर्बोध होगई।

परिचर्या में लगे-लगे ही एक दिन उसने नीरजा की वेणी को धीरे से अपने हाथों में ले लिया। नीरजा आँखें बन्द किए पड़ी थी। उसने सोचा कि वह सो रही है। पर तभी नीरजा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों पर से धीरे से पलकें उठालीं और हंस-कर मानो श्रीधर को यह भी अनुमति दे दी कि वह उसकी वेणी से उसके जागते हुए भी क्रीड़ा कर सकता है।

स्त्रियों के हृदय को आज तक भी न समझ सकने वाला श्रीधर भी उसकी मुस्कान के गंभीर अर्थ को समझ गया। नीरजा की वेणी के साथ उसकी अँगुलियाँ और भी अधिक मनमानी करने लगीं। धीरे-धीरे उसने उस वेणी के सभी पाश खोल दिए और मुक्त केशों को जाने किस आनन्दमय कुतूहल से उसके वक्ष पर डाल दिया। नीरजा की साँसें जैसे जोरों से चलने लगीं। आँखों की मादकता और कपोलों की ललाई बढ़ गई। दृष्टि श्रीधर के मुख की ओर उठती न उठती अनायास ही झुक गई। जाने यह कैसी लज्जा थी जिसने श्रीधर को निर्लज्ज कर दिया। वह नीरजा का कोमल कोंपल-सा हाथ अपनी हथे-लियों में लेकर धीरे-धीरे अपने सूखे होठों तक ले आया।

❀ ❀ ❀

इसी बीच में स्वदेश में एक चमत्कार-पूर्ण घटना हो चुकी थी। नोआखालीकांड को बीते इतने दिन न हुए थे कि प्रति-क्रियावादी उसके बदले का विचार सर्वथा त्याग देते। कलकत्ते में फिर से उपद्रव हुआ और इस बार मुसलमानों के प्राण संकटापन्न होगए। किसी भी प्रकार से उपद्रव शांत न हो पा-रहा था। पुलिस और सेना की शक्ति उपद्रवों की तुलना में बहुत ही छोटी जान पड़ती थी। नेताओं ने अपील की पर किसी ने कान न दिया। जनता अब अपना नेतृत्व स्वयं करने पर तुल चुकी थी। उसके पागलपन और नेताओं की दूरदर्शिता में कोई तुक ही न थी। फलतः उसने नेताओं की एक बात न मानी। जिस तरह रोगी के डाक्टर की सलाह की उपेक्षा करते रहने पर रोग बढ़ता रहता है, उसी तरह ये उपद्रव भी बढ़ते रहे। अन्त में विश्व का सबसे बड़ा मनोबल इस उपद्रव की शांति में लगा। गांधीजी तत्काल कलकत्ता पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत और विरोध दोनों हुए। उनके ठहरने की जगह को पागल भीड़ घेर-घेर कर तरह-तरह के वाहियात नारे लगाती। 'गांधी वापस चले जाओ' पर उसका बराबर जोर होता। जब इससे भी काम न चला तो अपवाक्यों तक का प्रचार हुआ। मकान पर पत्थर बरसाए गये। खिड़की, दरवाजों को इनसे काफी क्षति पहुंची, पर उनके अन्दर बैठे हुए तपस्वी की मनः शान्ति भंग न हुई; उस महात्मा का निश्चय दृढ़ रहा। अन्त में कलकत्ते की भावुक जनता ने चकित होकर सुना कि गांधीजी ने आमरण-अनशन का निश्चय कर लिया है। जब तक कि हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपने-अपने बेवकूफी के रास्ते छोड़कर

अमन के मार्ग पर न आ जाएंगे तब तक बराबर अनशन रखने का व्रत गांधीजी ने लिया था।

गांधीजी के इस अनशन से उनके सहयोगी नेता या उनके नेतृत्व में काम करते आये सभी जब त्रस्त हो उठे। किसी को विश्वास न था कि जनता पर इस अनशन का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। कोई न चाहता था कि पागल लोगों की हठ के लिये गांधीजी अपने अमूल्य प्राण गँवादें। सभी ने उनको मनाने की कोशिश की। पर उस सत्य-व्रत का व्रत कभी अधूरा नहीं रहता था।

अन्त में सत्य की ही विजय हुई। गाँधी को गालियाँ देने वाली उन्मत्त जनता यह न जानती थी कि गाँधी का जनों से एक-एक जन के हृदय पर कितना गहरा अधिकार है। जब अपने ही नगर में राष्ट्र-पिता भूखों मरने का प्रण कर चुके हों तब कलकत्ते के निवासी कैसे खा-पीकर मस्त रह सकते थे और बापू की इच्छाओं के विरुद्ध उपद्रव बढ़ाते चलते उन्होंने थोड़ी देर के लिए बापू की आज्ञा का उल्लंघन इसी प्रकार कर दिया था जिस प्रकार प्रायः आवेश में हठी बच्चे मा-बाप की बातों पर कान नहीं देते। पर जैसे ही उन्हें मा-बाप के आत्मिक कष्ट का पता चलता है उनका आवेश छिन्न-छिन्न होने लगता है। ठीक-ठीक ऐसा ही कलकत्ते में हुआ। एक दिन केवल शस्त्र-शक्ति में विश्वास रखने वाले विश्व ने साश्चर्य सुना कि कलकत्ते के उपद्रव शांत हुए। हिन्दू-मुस्लिम दो समझदार और एक दूसरे को प्यार करने वाले भाइयों की तरह एक दूसरे के गले मिले और अपने झगड़ालू बच्चों को फिर से

मेल और शान्ति अपनाते देखकर बापू ने पूर्ण संतोष और प्रसन्नता के साथ अपना अनशन पूर्ण किया। उनके उपद्रवी बच्चों ने अपने-अपने हथियार अपने मन की ईर्ष्या-द्वेष के साथ-साथ बापू के चरणों में रख दिये, जिससे भविष्य में यदि उनका उपयोग हो भी तो धर्म-बुद्धि से सत्य की रक्षा के लिए, विश्व के कल्याण का विचार करते हुए।

किन्तु गांधीजी की इस चामत्कारिक सफलता का संघी और शरणार्थी क्षेत्र में अच्छा प्रभाव न पड़ा। कलकत्ते से बाहर जहाँ कहीं भी कट्टर हिन्दूवादी लोग थे वे तरह-तरह की कल्पना करने लगे। कनखल की छोटी-सी बस्ती में तो जैसे तूफ़ान-सा उमड़ आया। इसी तूफ़ान में अचानक एक दिन सुशील और श्रीधर की भेंट हो गई। श्रीधर के वैसा प्रसंग न उठाने पर भी सुशील से मन का गुब्बार निकाले बिना न रहा गया। उसने मानो श्रीधर के प्रेमालाप का योग्य उत्तर यही समझा हो। बोला—श्रीधर, अति सब बातों की बुरी होती है। अब आप लोग अति पर उतर आए हैं। किन्तु ज्यादा दिन तक हम लोग ये अतियाँ बर्दाश्त न कर सकेंगे।

श्रीधर ने कुछ-कुछ न समझते हुए कहा—पर आखिर बात क्या है भाई। तुम किन अतियों का जिक्र कर रहे हो।

सुशील—जैसे आप सचमुच ही नहीं समझते। आप कलकत्ते में होने वाली गांधी की सफलता पर प्रसन्न हैं। पर मैं कहता हूँ कि एक दिन यही प्रसन्नता तुम लोगों को रुलाएगी। गाँधी को हिन्दुओं की अच्छाई पर इतना ज्यादा दबाव नहीं डालना चाहिए कि हिन्दू उनके प्राणघाती बन जाएँ।

सुशील अपनी बात पूरी करके इस तरह चला गया, मानों उसकी बात का कोई उत्तर ही नहीं। श्रीधर ने उसकी इस बात को उन्मादी मस्तिष्क का एक फितूर भर समझ कर कोई ध्यान नहीं दिया। घर लौट कर उसने यही बात सब लोगों को सुनाई। नर्मदेश्वर भी चुप रहा। जैसे सुशील की इस या ऐसी किसी बात में उनके सोचने-समझने लायक कुछ न हो। पर केला ने दुःखपूर्वक कहा—यह सुशील तो ऐसा कभी न था, जाने फिर क्यों इसका दिमाग यों एक दम से बदल गया।

नर्मदेश्वर ने भी मौन भंग किया—समझ में तो मेरी भी कुछ नहीं आता। भारती बहन तक इससे दुःखित हैं।

केला—एक बार मुझसे भी ऐसी ही बात चल गई थी। तब उन्होंने रोते हुए कहा था कि बहन, मैं तो तुम्हारी नीरजा को अपनी बहू बनाने का स्वप्न देखा करती थी। जब वे दोनों भाई-बहनों की तरह आपस में लड़ा करते थे और एक दूसरे को देखे बिना, झगड़े बिना कभी चैन न पाते थे तो मेरा रोम-रोम खुशी से नाच उठता था। तब भी वह शादी के नाम पर बिदकता था, पर मेरा विश्वास था कि यह बिदकना तभी तक है, जब तक कि नीरजा का नाम नहीं खुलता।

इस चर्चा ने नीरजा के सामने अतीत के बहुत से पृष्ठ खोल डाले। सचमुच ही वह तब बड़ी नटखट थी और सुशील भी कितना भोला था। वह उसे खूब छकाती थी। इसी तरह सोचते-सोचते उसकी आँखों में उस समय के चित्र भी आने-जाने लगे। सुशील की याचनाभरी दृष्टि आज भी उससे वैसे ही अनुग्रह की याचना करती जान पड़ी; फिर उसे याद आया कि

उसे और सुशील को लेकर घर-घर कैसी बातें चल पड़ी थीं। हर किसी की जुबान पर उन दोनों के सम्बन्धों की दुष्टतापूर्ण चर्चा थी।

नीरजा ने एक गहरी साँस ली। आज तो वह जमाना ही बदल गया था। लोग हालाँ कि वे ही थे, पर अब परिस्थितियाँ उन्हें उस तरह से सोचने ही न देती थीं। आज श्रीधर के नाम से उसे कोई कुछ नहीं कहता। सुशील भी होता तो कोई न कहता। और फिर उसे बरबस याद आया, वही एक दिन जब से सुशील ने धीरे-धीरे बदलना शुरू किया। यह क्या था? सुशील सचमुच ही उसे प्यार करता था और उसी प्यार के नाम पर नीरजा की रक्षा के लिए समाज की घृणा और कुत्सितना की तलवार के सामने ढाल बनकर अड़ जाना चाहता था। पर तब जाने कैसी हो गई थी यह नीरजा कि उस याचना पर तिरस्कार बन कर बरस पड़ी। सुशील की सहायता की जैसे उसे परवाह ही नहीं थी। सुशील को उसने खाली झोली लौटा दिया। सुशील टूटे दिल से अपने खुशियों के चमन से निकल गया; मानों वह एक पत्ता था जो सूख कर डाली से जमीन पर आ गिरा था और अब खुश्क हवाओं के रहम पर जाने किन मरुओं की ओर उड़ा जा रहा था।

नीरजा की आँखों में भी इस समय ठीक वैसा ही दृश्य छा गया। उसने श्रीधर को देखा और तत्काल उसकी ओर से आँखें हटालीं, मानों उसे वहाँ सुशील को बैठा देखने की आशा थी जो पूरी न हुई। इसके बाद वह कुछ ऐसी चंचल हुई कि क्षणभर के लिए भी बैठी न रह सकी। बिना किसी

बहाने के ही वहाँ से उठकर चल दी। वह मन ही मन इस तरह गिरती जा रही थी, मानों जिस स्कन्ध का अवलम्ब लेकर वह लता-सी फैली थी, वही स्कन्ध उसे छोड़कर धराशायी हो गया है। फिर उसके कोमल तन्तु ही कैसे हवा का हाथ थामे आसमान में उठे रहते।

केला, नर्मदेश्वर और श्रीधर में से किसी ने उसके मन की वेदना को न समझा। सबने मान लिया कि उसे सुशील से ब्याह की बात अच्छी नहीं लगी। इसी घटना के कुछ ही घंटे बाद नीरजा ने एकान्त पाकर श्रीधर से कहा था—देखिए अब आप किसी उपद्रव को रोकने-थामने के फेर में न पड़ना। सुशील बाबू ने ठीक ही कहा है, फिर चाहे ग़लत ढंग से क्यों न कहा हो। यहाँ के उत्पाती लोगों को गांधीजी से उतना वास्ता नहीं, जितना कि आप से।

श्रीधर ने हँसकर कहा—क्या कहती हो नीर। मुझे ये लोग मारेंगे? सुशील मुझे मारने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता।

नीरजा—अब शायद आपकी पिछली चोटें नहीं कसकतीं।

श्रीधर—वे चाहे कसकें या न कसकें, पर तब भी सुशील ने ऐसा न चाहा था। वह इतना बुरा हो ही नहीं सकता।

नीरजा—मैं आपको कैसे समझाऊँ कि कब कोई कितना बुरा हो सकता है। जाने कभी-कभी मामूली बातों तक को समझने में आपकी बुद्धि क्यों काम नहीं करती। खैर मैं कहती हूँ कि आप मेरे लिए मेरी इस बात का ध्यान रखें। इन आपसी झगड़ों, मारकाट और खूनख़राबी से आदमी का इतना अधिक

नैतिक पतन हो चुका है कि अब उसके जोश और पागलपन पर किसी भी प्रकार का बंधन नहीं रहा। किसी भी निर्दोष की जान तक ले-लेना जैसे उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं।

श्रीधर—तुम तो घबरा गई सी जान पड़ती हो नीर। यहाँ ये सब बातें तो उठती ही नहीं। क्यों व्यर्थ दुष्कल्पना करती हो?

नीरजा—जहाँ आपकी बुद्धि कुछ सोच-समझ नहीं पाती, या आप विचार कर कुछ देख-जान ही नहीं पाते, वहाँ यह न समझ लीजिए कि कुछ है ही नहीं। आज आप नहीं मानेंगे कि आदमी का कितना अधःपतन हो चुका है। कल तक मुसलमानों की जान लेने वाले हाथ, जब प्राणों को अति तुच्छ समझ कर हिन्दू के जीवन से भी उसी तरह खिलवाड़ करने लगेंगे तब कहीं जाकर आपको पता चलेगा। हिन्दू-मुसलमानों के आपसी झगड़ों के दुष्परिणामों तक तो आपकी दृष्टि खूब गई, किन्तु दूसरी ओर नहीं। आपने ज्वालापुर में ही सुना कि किस तरह औरत-बच्चों पर ज्यादातियाँ की गई। किसी नेक हिन्दू से वैसे पतित आचरणों की उम्मीद नहीं की जा सकती। फिर भी वैसे ही सब कुछ हुआ। आज हम यह भी उम्मीद नहीं करते कि हिन्दू-हिन्दू के प्रति कभी ऐसा अनुदार, क्रूर और बेरहम हो सकता है? पर कल हमें सब सच-सच बताएगा। औरतों की इज्जत पर आज तक कोई हाथ इसीलिये नहीं डालता था कि वे औरतें हैं, पूज्य, पवित्र और रक्षा के योग्य। वहाँ हिन्दू-मुसलमान जैसा कोई फर्क न था। पर जब इतनी हवा ही नहीं रही तो आगे चलकर सब कुछ हो सकता है। हिन्दू-मुसलमान की बातें भी बेकार साबित होंगी।

श्रीधर—यह सब मानने से मैं इन्कार नहीं करता। पर तुम ये सब बातें इस तरह दुःखित होकर क्यों कह रही हो ?

नीरजा—क्योंकि मैंने समझ लिया है कि कब कोई भी आदमी कितना भी बुरा हो सकता है। बोलिए क्या आप मेरी बात मानकर इतना भी न करेंगे कि किसी झगड़े के बीच में काजी बनकर न दौड़ें।

श्रीधर ने जाने कैसे कह दिया—'अच्छा'। पर इस 'अच्छा' के बाद जैसे उसने अपने आप में एक छोटापन महसूस किया। जाने उसे क्या होता जारहा था कि अब नीरजा की अहैतुकी इच्छाओं तक के आगे निर्विरोध भाव से झुक जाता था। वह जब नीरजा के सामने होता तो नीरजा के ढंग पर विचार करने को विवश हो जाता। आज तक अपने आपको बंधनमुक्त और सीमाहीन रखते-रखते भी अचानक किसी कोमल के बंधन से बँध गया, किसी आकर्षण में सीमाएँ मानलीं। श्रीधर ने कल्पना करके अपने विचार-क्षेत्र को आज भी जैसे उतना ही व्यापक और अपेक्षाकृत निरपेक्ष समझाते हुए देश के एक छोर से दूसरे छोर तक दृष्टि दौड़ानी चाही; सोचा कि हिमालय और कुमारी अन्तरीप, बंग और अरब सागर से कर्मक्षेत्र में भी क्या उसकी कर्ममयी इच्छाएँ बँध सकती हैं। पर उसकी कल्पना देश की वह विशाल-मान-चित्र प्रस्तुत कर ही न सकी। उसकी आँखों में भारतमाता के स्थान पर एक दूसरी ही छवि थी और वह भी नीरजा !

श्रीधर के कानों में किसी ने चिल्लाकर कहा—तेरी सीमा नीरजा है।

श्रीधर ने सिर उठाकर विरोध करना चाहा, पर सामने ही खड़ी नीरजा को देखकर विरोध के लिये आवश्यक दृढ़ता का संचय कर ही न सका।

❀ ❀ ❀

जनवरी का तीसरा सप्ताह चल रहा था। काफी ठंड पड़ रही थी। सुबह-शाम के बीच सिमटा हुआ छोटा-सा दिन जैसे सिर्फ धूप सेंकने आता और फिर जल्दी से ही रात की ठंड से बचने के लिए भाग भी जाता। आसमान एक दम नीले काँच की तरह साफ रहता। कहीं-कहीं तिरते हुए ऊदे बादल नीलम के सागर में तैरते हुए हिम-खण्डोंसे जान पड़ते। उस ठंड में उनको देखकर सिर्फ बर्फ की शिलाओं की ही कल्पना होती। गंगा का जल भी इतना साफ था कि आसमान भी अपनी छाया उसमें देख ले। तल के कंकड़-पत्थर काफी गहराई में भी बिल्कुल पास ही डूबे जान पड़ते। गौरीशंकर और चंडी के नीचे के जंगलों में झड़बेरियाँ बेरों से खूब लदी थीं। उनके पास से निकलने पर खट्टे-मीठे बेरों को छके बिना रहा ही नहीं जाता। शिकारी शिकार के पीछे दौड़ते-दौड़ते भी लाल लाल पके बेरों को देखकर रुक जाते और झाड़ियों पर से तोड़-तोड़कर खाने लगते। प्यास लगने पर गंगा का शीतल जल पीते। उनका दिन-भर का यही क्रम रहता, फिर चाहे खट्टे बेरों को खाते-खाते दाँत भी क्यों न खट्टे हो जाते हों और ऊपर से गंगाजल अतृप्त रहकर चुल्लुओं से पीते-पीते खाँसी ही क्यों न हो जाती हो। गूजर अपनी गाय-भैंसों से झुंडों को लिए-लिए उन्हीं जङ्गल में घूमते-फिरते। गाय-भैंस तृणों की खोज करतीं और वे बेरों से

पेट भरते। कभी चलते-चलते ज्यादा दूर निकल आते और भूख जोरों से लगने लगती तो किसी भी काली, भूरी को रोककर साथ की बंटी में दूध दुहकर वैसे ही कच्चा चढ़ा जाते और फिर मस्ती से पहाड़ों की छाया में जङ्गलों-जङ्गलों वापस लौटने लगते। गाय-भैंसों की गले की घंटियों से वन की निस्तब्धता मुखरित रहती और कभी-कभी झुंड के झुंड मृग जङ्गल में एक ओर से दौड़कर दूसरी ओर को जाते हुए झाड़ियों की हरहराहट से जङ्गलों को पुलकित साकार देख और फिर गंगा की किसी धारा के पास रुककर डूबते सूरज को देख-देखकर पानी पीते। थोड़ी ही देर में फिर से वन की झाड़ियाँ उनकी कुलाँचों को देख-देखकर प्रसन्नता से नाचने लगती।

यह और इससे भी अद्भुत और अधिक यहाँ सदैव प्रकृति-विहार का आनन्द रहा है। यहाँ के लोग प्रायः अपनी बंधी दिनचर्या से ऊबकर जङ्गल में मङ्गल मनाने इन्हीं वनों में चले आते। जो कुछ धार्मिक बुद्धि के होते उन्हें चण्डी माता और भगवान् गौरीशङ्कर के दर्शनों की लालसा खींच लाती और जो वन-भोज को ही सब कुछ समझते वे बेरी की झाड़ियों के नीचे गंगा के किनारे बाटी बनाकर खाने के लिए चले आते। रात-दिन के उपद्रवों से ऊबकर एक दिन नर्मदेश्वर ने भी वन-भोज का निश्चय किया। श्रीधर के जीवन के लिये ये वन और पर्वत बड़े ही कुतूहल का विषय थे। जब से वह यहाँ आया था एक भी क्षण के लिए मुक्त होकर प्रकृति की गोद में विचरण न कर सका। उसकी अपनी व्यस्ततामें जैसे उसे दूर से ही साँझ के समय काले-नीले पड़ते पहाड़ों और जङ्गलों को देखकर तृप्ति हो

जाती थी; पर नीरजा तो बहुत बार आस-पास के सभी पहाड़ों जङ्गलों में नर्मदेश्वर के साथ घूम चुकी थी। जब कभी वह अपने वन-प्रसंगों को श्रीधर को सुनाती तो उसका मन भी कंटीले जङ्गलों में घूमने के लिये चंचल हो उठता। उसे मुसीबतें प्यारी थीं, और सामान्य, एकरस तथा बँधे हुए जीवन से घृणा! नीरजा की बातें उसके मन में ऐसा चाव और कुतूहल भर देतीं कि वह मान लेता कि शहरी जीवन की विरसता को दूर करने के लिये समय-समय पर जङ्गलों में भी भटक आना चाहिए जिसमें परिवर्त्तन और स्वेच्छयाग्रहीत कष्टों के बाद घर के काम और आराम फिर से अच्छे लगने लगें और आदमी प्रसन्न मन हरे शरीर तथा ताजे दिमाग़ से अपने पुराने कामों में नएपन के साथ जुट जाए।

जब नर्मदेश्वर ने वन-भोज का प्रस्ताव किया तो सभी ने चाव से समर्थन किया। सुबह-सुबह का वक्त था और जल्दी ही चल देना चाहिये था इसलिये केला बाटी का सामान जुटाने में लग गई। उसे यह सब करते देख श्रीधर ने कहा—यह सब क्या करने लगीं मा! क्या वन में जाकर भी घर की तरह खाना होगा ?

केला ने हँसकर कहा—नहीं, घर की तरह नहीं, वन की ही तरह। पर खाना जरूर होगा। वहाँ चलकर हम बाटियाँ बनाएँगे और गंगा में खूब नहा-नहा कर खाएँगे।

नीरजा ने भी योग दिया—"झड़बेरियों की बातें तो तुम भूल ही गईं मा! बेर भी बीन-बीन कर जो खाएँगे।" फिर श्रीधर से बोली—पर देखिये मैं आपसे कहे देती हूँ कि वहाँ

जाकर बेरों पर टूट मत पड़ना। बनारस में तो ये सब पदार्थ होते नहीं होंगे। कहीं अगली-पिछली सब कसर निकालने का इरादा हो! ज्यादा खाते ही दाँत ऐसे खट्टे हो जाएंगे कि फिर जनाब से रोटी का कौर तक चलाया न जाएगा।

श्रीधर—हुँः ऐसा क्या तूने मुझे जङ्गली ही समझ लिया है।

नीरजा—जंगली नहीं समझा तभी तो यह सब समझाना पड़ रहा है। इतने बेवकूफ तो शहरी ही होते हैं।

पास ही खड़ा नर्मदेश्वर भी ठठाकर हंस पड़ा। बोला—देखो श्रीधर, कैसा जवाब मिला! अच्छा तो अब तुम जल्दी करो, मैं बाजार से जरा थोड़ी-सी मिठाई भी लेता आऊँ।

श्रीधर—पर इस सबकी जरूरत क्या! मैं तो कहता हूँ कि जंगल में चलकर बेर खाने और घूमने के अलावा कोई प्रोग्राम ही नहीं रखा जाये।

नीरजा—और भूख लगे तो पत्थर खाए जाएँ।

श्रीधर—बेर जो हैं?

नीरजा—बेरों से पेट नहीं भरता सिर्फ दाँत खट्टे होते हैं।

श्रीधर—पर तू ही तो एक दिन बताती थी कि वहाँ गूजर भी रहते हैं। ताजा दूध जब चाहो तब मिल जाता है।

नीरजा—और आप कहेंगे कि उसे बिना गरम किए ही पी लिया जाए। ना बाबा यह सब मुझसे न होगा।

नर्मदेश्वर—ठीक कहती है नीरजा! अच्छा तो मैं अभी आया। तुम इतने सब तैयारी करलो।

केला सब सामान जुटा चुकी थी। सहूलियत के लिए सामान अलग-अलग तीन-चार झोलों में रख लिया गया। एक

कटोरदान में घी, एक थैले में आटा और एक में उड़द की दाल। मसाले की पुड़ियाँ भी दाल के थैले में ही डाल दीं। पानी के लिए सिर्फ एक बड़ा-सा लोटा और दाल के लिये पतीली लेली गई। श्रीधर इस संग्रह में बड़ी दिलचस्पी लेरहा था। जरूरत की कोई चीज रह न जाए इस पर उसका बराबर ध्यान था। जब उसने देखा कि केला का ध्यान और कोई चीज लेने की ओर है ही नहीं तो बोला—पर मा तुमने परात और तवा तो लिया ही नहीं।

नीरजा हँसती हुई बोली—अरे आप भी कैसे हैं। तब तो आपकी राय से चकला और बेलन भी लेना चाहिए, और चूल्हा भी जरूर।

केला—नहीं भैया, देखो मैं बताती हूँ। बाटी के लिए तवे की जरूरत नहीं होती। जंगल में सूखा गोबर तो काफी मिल जाता है, वही उपलों का काम देता है। उसी में बाँटियाँ तैयार कर ली जाती हैं। आटा गूँदने के लिए भी पत्थर काफी होते हैं। पत्थर भी न हों तो कपड़े पर गूँद लिया जा सकता है। और अगर रोटी भी बनायी हो तब भी तवा ले जाने की जरूरत नहीं। पत्थरों के चूल्हे पर चौड़े, चपटे और पतले पत्थर के तवे से काम ले लिया जाता है। ये सब जंगलों के सुभीते हैं, वहाँ जाकर तवे परात की चिन्ता करनी ही नहीं पड़ती।

इतने में नर्मदेश्वर भी मिठाई लेकर लौट आया। मिठाई भी एक थैले में रख दी गई। अब श्रीधर खुद अकेला अधिक से अधिक सामान उठाने में व्यस्त था। उसे थैले सम्हालने में

परेशान देखकर नर्मदेश्वर ने कहा—अरे, भाई यह सब क्या कर रहे हो ?

श्रीधर—आखिर यह सामान जाएगा कैसे ।

नीरजा—हूँ, तो आप इसी बहाने उड़द की दाल का थैला हथियाना चाहते हैं। मैं कहे देती हूँ पिताजी कि इन्हें चाहे घी मिठाई सौंप दीजिएगा, पर उड़द की दाल तो जरूर नहीं दीजिएगा। कच्ची हुई तो क्या। वहाँ तक पहुँचते-न-पहुँचते एक भी दाना जो बचे ।

सब हंसने लगे। नर्मदेश्वर ने कहा—तो भई तुम्हीं क्यों सब सामान लादने की फिराक में हो। थोड़ा-थोड़ा सभी लेंगे। साथ में नौकर भी है। उठाने को तो वही अकेला सब उठा सकता है। पर हमें इस तरह उसकी जगल की प्रसन्नता को खत्म नहीं कर देना चाहिए। इससे कहती हूँ कि सामान सभी कोई थोड़ा-थोड़ा सम्हाल लें।

नीरजा—लेकिन पिताजी इन्हें तो सामान लादने से बिल्कुल बरी ही रखा जाए तो अच्छा। ये वहाँ तक अपने शरीर को ही लेजा सकें तो बहुत। इनका यह शरीर शहर की सीधी साफ सड़कों का अभ्यस्त है। जंगलों में कुलाँचें नहीं भर सकेंगे।

नीरजा इधर कुछ दिनों से श्रीधर से इस तरह खुल कर बातें करने लगी थी। कभी यह सुशील से भी इसी तरह स्वच्छन्द वार्त्ता किया करती थी। श्रीधर की विद्या, बुद्धि, तर्क और सिद्धान्त-निष्ठा ने ही अब तक उसे नीरजा से इतना दूर रखा था। नीरजा चाहती थी ऐसा व्यक्ति जो कि उसके आगे झुक सके, जिस पर बात-बात में वह खुद हावी हो सके। पर

श्रीधर में कुछ ऐसी शुष्कता थी कि नीरजा उसके प्रति अभिमान की तरह कठोर पड़ती ही गई। किन्तु इधर के कुछ अप्रत्याशित परिवर्त्तनों ने श्रीधर की शुष्कता और नीरजा के दर्प दोनों का ही परिहार कर दिया था। कैला और नर्मदेश्वर उन दोनों को छोटे-छोटे बच्चों की तरह घुलते-मिलते देखकर प्रसन्न ही होते।

चलते-चलते नर्मदेश्वर ने कहा—आज की वन-यात्रा बड़ी अच्छी रहेगी। हम लोग अकेले ही नहीं जा रहे हैं। अभी-अभी बाजार से लौटते हुए मैंने देखा है कि सुशील भी अपने दल के साथ जा रहा है। शायद आज उन लोगों की जंगल में कोई रैली है। दो-एक बन्दूकें भी देखने में आईं उन लोगों के पास।

यह सब सुनकर नीरजा का दिल जाने क्यों धड़कने लगा। मन में नाना बुरी-बुरी आशंकाएँ आने लगीं। वन-भोज का सारा उत्साह ठंडा हो गया। अब वह चाहती थी कि किसी तरह आज का यह विचार ही त्याग दिया जाए। पर उसकी तरह सोचने वाला और कोई न था। किसी की भी दृष्टि उसके चेहरे के परिवर्त्तनों तक पर न गई। उसे धीरे-धीरे सबके पीछे-पीछे चलते देख कर श्रीधर ने बदला-सा चुकाते हुए कहा—यह देखो मा, अब चलने में कौन पिछड़ रहा है। जंगल तो दूर, घर के दरवाजे पर ही हार रही है।

सबको नीरजा से खिल-खिलाता उत्तर पाने की आशा थी। पर वह चुप और उदास ही रही।

❀ ❀ ❀

थोड़ी देर तक तो नीरजा उदास-सी रही, फिर शनैः

शनैः उसकी स्वाभाविक प्रसन्नता लौट आई। गंगा की पहली और दूसरी धाराएँ इन लोगों ने कच्चे पुलों से पार की। ये पुल बरसात के बाद गंगा के उतर जाने पर नावें बाँध कर बनाए जाते हैं। फिर से जब दूसरी बरसात के करीब आने पर गंगा बढ़ने लगती है तो इन पुलों को तोड़ भी दिया जाता है। वैसे ये पुल इतने मजबूत होते हैं कि भारी से भारी मोटर गाड़ियाँ और बैल गाड़ियाँ इन पर से आसानी से पार हो जाती हैं। पहली और दूसरी धाराओं के बीच काफी लम्बा-चौड़ा रेतीला टापू पड़ता है जिसमें जगह-जगह पर भाभड़ की झाड़ियाँ छाई हुई थीं। कहीं-कहीं तो ये झाड़ियाँ रास्ते पर ही इतनी सघन हो जाती थीं कि इन्हें चीर-चीर कर आगे बढ़ना पड़ता था। इनमें होकर बढ़ते हुए शरीर के नंगे हिस्सों को कटने से बचाने के लिए बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती। भाभड़ की लम्बी-पतली पत्तियाँ किनारों पर से छूरे की तरह तेज रहतीं जिनके निशान नंगे हाथों और मुँह, आँख नाक के पास बन ही जाते। श्रीधर इस बात को न जानता था। वह अपनी तेजी दिखाने के लिए ऐसी ही एक जगह जो झपट कर आगे बढ़ा तो मुँह पर कई जगह खरोंचें लग गईं। उसकी इस हालत को देखकर हमदर्दी दिखाने के बजाए नीरजा तो नीरजा नर्मदेश्वर और कला तक हँस पड़े। नीरजा ने चुटकी लेते हुए कहा—अब समझे जनाब शहर और जंगल का फर्क। यहाँ घास तक आदमी से प्यार करती है। पर इसके प्यार के निशान बड़े गहरे होते हैं।

उसकी इस प्यारी बात से श्रीधर अपना सारा कष्ट भूल

गया। भाभड़ की एक पत्ती उसी लापरवाही से तोड़ता हुआ मन ही मन बोला—हर प्यार के निशान गहरे होते हैं।

मानों भाभड़ को मन ही मन अपनी बात सुनाकर नीरजा तक पहुँचा देना चाहता था। भाभड़ के तृण को तोड़ने में उसने जो फिर से लापरवाही दिखाई तो दाहिने हाथ की तर्जनी गहरे तक कट गई। खून तेजी से बहने लगा। उसने उसे छिपाने की कोशिश भी की; पर प्यार और खून भी कभी छिपे। भले ही यह वैसा खून न था, फिर भी खून था। केला ने देखा तो घबड़ाई-सी बोली—अरे तूने भई क्या कर डाला श्रीधर। इस तरह से चलेगा तो बन के जोग ही हो जाएगा।

नर्मदेश्वर—क्यों क्या हुआ।

केला—इसकी अंगुली देखिए।

श्रीधर—नहीं-नहीं, कुछ भी तो नहीं, यों ही जरा अँगुली कट गई।

नीरजा ने इस बार भी बेरहमी से मजाक किया—भाड़ी को छेड़ा होगा। उसके प्यार पर आप इतरा गए होंगे। पर जनाब प्यार में भी सावधानी बरतने की जरूरत होती है।

श्रीधर मुसकुरा पड़ा। केला को मजाक अच्छा न लगा। पर वह चुप ही रही। खून रुक न रहा था। नर्मदेश्वर ने श्रीधर के हाथ से सामान का थैला लेते हुए कहा—अच्छा तो देखो, यह रूमाल है। पास ही दूसरी धारा बह रही है। दौड़कर चले जाओ, इसे गीला करके बांध लेना। दो मिनट में खून बहना बन्द हो जाएगा।

श्रीधर—अरे, आप तो जरा-सी बात पर घबरा गए। मेरा

सुशील ने चौंक कर पीछे की ओर देखा। इस चौंकने से उसे ऐसा झटका लगा कि बन्दूक तो नाव में ही रह गई पर खुद गंगा की तेज धारा में जा गिरा। क्षणभर के लिए वह एक-दम डूब ही गया जान पड़ा। मल्लाह और नाव में बैठे दूसरे सभी चकित थे। पर उसकी सहायता की कोशिश कोई नहीं कर रहा था। श्रीधर को तैरना खूब आता था। उसने चट से हाथ का सामान पटका और कुर्ता उतार कर धोती चढ़ाली। धारा में कूदने जा ही रहा था कि नर्मदेश्वर ने बाँह पकड़ ली। बोला—अरे यह क्या बेवकूफी करते हो। यहाँ धारा में कूदने लायक जल नहीं। पत्थरों पर गिर कर हाथ पैर तोड़ोगे। फिर यह उतावली किसलिए। सुशील तैरना खूब जानता है। वह देखो वह तैर रहा है और उसके सब साथी हँस रहे हैं।

श्रीधर मन-ही-मन सोच रहा था—ओः आज एक मामूली आवाज से कैसी दुर्घटना हो जाया चाहती थी।

सुशील तैर कर नाव से भी ऊपर किनारे पर लग गया था। नीरजा ने उसके सम्हाल कर किनारे पर खड़े हो चुकने के बाद कहा—यह तो गनीमत समझिए कि आप धीरे से चिल्लाए। कहीं पूरे जोर से पुकार उठते तो शायद नाव ही डूब जाती। और ये पेड़ पहाड़ भी खड़े रहते कि नहीं कौन जाने।

नर्मदेश्वर ने जैसे नीरजा की बात सुनी ही नहीं। तनिक गंभीरता से बोला—दुर्घटना का कोई निश्चित समय नहीं होता। कभी भी कुछ भी हो सकता है।

पर तेजी से निरन्तर आगे की ओर बढ़ती हुई धारा मानो कह रही थी—हर पल ही कुछ न कुछ होता रहता है।

श्रीधर ने भी कहा—पर इस बात से तो पता चलता है कि दुर्घटना के भी कुछ न कुछ पूर्व पर होता है। जो अकारण-घटित जान पड़ता है, उसका भी कोई न कोई कारण अवश्य ही होता है। देखिए न इस घटना का कारण मेरी एक आवाज ही हो गई।

नीरजा को यह सब अच्छा न लगा। उसने विरोध करते हुए कहा—पर आप ही अपने को इसका मूल कारण क्यों मान लेते हैं। क्या आपका यहाँ आना और सुशील बाबू से पहले का परिचय होना इस कारण के कारण नहीं कहे जा सकते।

श्रीधर—ठीक कहा तुमने। जीवन तो इस तरह कारणों की ही परम्परा है। हमें कारण से अधिक व्यापार और उसके परिणाम को देखना चाहिए।

इस परिणाम पर सब अपने-अपने तौर से सोचते हुए नाव के लौट कर आने की चुपचाप प्रतीक्षा करने लगे। सुशील ने फिर इस तट की ओर नाम को भी न देखा। चौंक कर घूमते हुए उसने जो केला और नर्मदेश्वर को ही नहीं श्रीधर और नीरजा को साथ-साथ आते देख लिया था, वह उसके लिए पर्याप्त था।

❀ ❀ ❀

जब नर्मदेश्वर आदि ने भी तीसरी धारा पार करली तो दस बज चुका था। ठंड और ठंडी हवा ऐसी थी कि काफी गरम कपड़े पहने रहने पर भी धूप ही सुहाती थी। धारा पार कर चुकने पर ये लोग फिर जंगल में नहीं घुसे। वहीं पास ही

जहाँ कि धूप खूब खुल कर पड़ रही थी और जमीन काफी साफ सुथरी थी, डेरा डाल दिया। सुशील के गंगा में गिर पड़ने के बाद से सभी कुछ न कुछ गम्भीर हो गए थे। अन्य जन तो धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता पर लौट आए थे किन्तु श्रीधर उसी तरह गभीर था। उस समय यदि उससे उसकी इस गम्भीरता का कारण पूछा भी जाता तो वह कुछ बता न पाता। जितना उसे रास्ते का चलना न थका सका था उससे कहीं अधिक उदासीन गंभीरता ने थका दिया। पास ही एक पेड़ गिरा पड़ा था, वह चुपचाप उसी पर जा बैठा।

केला ने उसे चुप देख कर कहा—क्यों बेटा, यहाँ जंगल में आते ही योग तो नहीं छा गया। भला इस तरह चुप रहोगे तो ये जंगल के घण्टे तो कट लिए।

श्रीधर ने बरबस मुसकुराने की चेष्टा करते हुए कहा—नहीं मा, आप सभी लोग चुप थे, इसी से मैं भी चुप हो गया।

नीरजा ने जवाब दिया—लेकिन हम लोग थके नहीं। आपके घुटनों पर हाथ टेक कर बैठ जाने से पता चलता है कि आप थक भी गए। खैर घबराइए नहीं। हमारे साथ दरी भी है अभी आपके सोने का पूरा-पूरा इन्तजाम किये देती हूँ। हाँ रामू······

नर्मदेश्वर और केला नीरजा की बात पर हँस रहे थे। श्रीधर घबराया-सा बोला—हैं, हैं इस सबकी जरूरत नहीं रामू, यह सब कुछ नहीं।

नर्मदेश्वर—अरे भाइ यह तो अब तुम्हारा भी भेद पा गई। पहले इसी तरह सुशील को परेशान करती थी। पर दरी तो

रामू को बिछाने दो। उसे तो हम इसीलिए लेते आए हैं जिससे उठने-बैठने का सुभीता रहे।

केला — अच्छा तो पहले हमें बाटी बनाने की तैयारी करानी चाहिए। बाटी तैयार करते-करते काफी देर हो जाएगी। फिर यह नीरजा बेरों के लिए आफत मचाने लगेगी। इसलिए अब देरी नहीं करनी चाहिए।

नीरजा—पर मा, बाटी बनाने में हमारी जरूरत ही क्या। पानी-वानी लाने को रामू है और साथ देने को पिताजी। हम लोग इतने थोड़ा जंगल देख आते। ये भी तो पहली-पहली बार आए हैं।

नर्मदेश्वर—हाँ ठीक तो है केला। बच्चों को जाने दो। हम लोग सब ठीक कर लेंगे।

केला—पर कंडे जल्दी से न बीने जा सकेंगे।

नीरजा—सो तो हम भी कर सकेंगे। कण्डे बीनने में तो घूमना भी हो जाएगा और काम भी।

केला—पर देखरी तू बड़ी ऊधमी है। कहीं कण्डे बीनती-बीनती बहुत दूर मत निकल जाना। और देखो बेटा श्रीधर, तुम इसके साथ रहना। ज्यादा दूर जाने ही मत देना। कहा न माने तो चोटी पकड़ कर मेरे पास लेते आना।

नीरजा ने मुसकुरा कर श्रीधर की ओर देखा। मानो कहा हो कि मेरी चोटी से तो तुम्हें पुराना प्यार है। उस रात को भी तो बैठे बैठे मेरी चोटी से ही खेलते रहे थे। श्रीधर जो उसकी इस मुस्कान से स्फूर्ति से भर उठा था हँसते हुए बोला—हाँ मा, इस शर्त्त पर तो मैं इसके साथ जाने को तैयार हूँ।

नीरजा—पर बाबू साहब चोटी पकड़ने से ही रास्ता थोड़े पता चल जाएगा। जब मैं ऐसी जगह ले जाकर छोड़ दूँगी कि आप पूरब-पच्छिम भी भूल जाएँ तब क्या करेंगे।

श्रीधर—तब तो तेरी खुशामद ही करनी होगी।

सबके सब मुक्त होकर हँस पड़े। बस्ती की छाया जो थोड़ी देर के लिए फिर उनके दिमागों पर पड़ गई थी, दूर हो गई। नीरजा श्रीधर का हाथ पकड़ कर खींचती हुई बोली—अच्छा तो अब पहले मेरे पीछे-पीछे चलिए।

कुछ ही अन्दर घुसते ही पके-पके बेरों से लदी बेरियाँ मिलने लगीं। श्रीधर की आँख बार-बार उनकी ओर चली जाती। मन दो चार लाल बेर तोड़ कर खाने को कर आता। नीरजा यह देख-देख कर मुसकुराती और आँखों ही आँखों में इशारे से बरजती हुई बढ़ चलती। पर श्रीधर के दांत तो अब बेरों को देखकर पानी छोड़ चुके थे। इस तरह बेरों के जंगल में आने का उसका पहला ही मौका था। वह मन-ही-मन सोचता कि इस तरह से अपने ही साथ से बेर तोड़-तोड़ कर खाने में जाने कितना आनन्द आएगा। बेरों की एक-एक झाड़ी उसे भीलनी शबरी की तरह मालूम देती और क्षणभर के लिए वह सीता-वियोगी वनवासी राम ही हो जाता।

उसके मोह को देखकर नीरजा ने कहा—जनाब यह पेड़ों और झाड़ियों को देखते हुए क्या चल रहे हैं? गाय-भैंस पेड़ों पर गोबर नहीं करतीं। कंडे जमीन पर ही मिलते हैं।

श्रीधर ने भावुकता के साथ कहा—नहीं नीरजा, आज तो मुझे इन झड़बेरियों को लाल-लाल बेरों से लदे देखकर भीलनी शबरी की याद आरही है।

नीरजा—तब तो राम भी आप खुद बन जाते होंगे। पर ध्यान रखें श्रीमान् जब राम शवरी के पास गए थे तो उनके साथ लक्ष्मण थे सीता नहीं। पर आपकी सीता आपके साथ है।

नीरजा अनायास ही इतना स्पष्ट कह गई थी। श्रीधर ने प्रेम-पुलक से भरकर उसकी ओर देखा, नीरजा ने आँखें झुकालीं। बंद पलकों में उमड़ी हुई बड़ी-बड़ी आँखें और भी सुन्दर जान पड़ने लगीं। श्रीधर ने कृतार्थ होकर कहा—नीर, तुमतो सचमुच ही सीता की तरह सुन्दर हो, पर मैं······।

श्रीधर आगे क्या कहना चाहता था नीरजा समझ गई। उसके वाक्य पूरा करने से पहले ही बोल उठी - अच्छा अब रहने दीजिए। देखिए हमने अब तक एक भी कण्डा नहीं बीना। यही हालत रही तो बस आज बाटियाँ बनालीं।

श्रीधर—अच्छा तो मुझे दो बेर खालेने दो, फिर एक बार भी जो भूलकर भी इन झाड़ियों की ओर ताकूँ।

नीरजा—पर मैं शवरी के हाथों अपने राम को बेर न खाने दूँगी।

इतना कहकर नीरजा ने खुद आगे बढ़कर कितने ही सारे पके-पके बेर तोड़ लिए। श्रीधर को देती हुई बोली—अच्छा तो लीजिए अब खाइए।

श्रीधर—ऊँ हुँः, तुम्हें शवरी की तरह खिलाना नहीं आता। जाने इन इतने सारे बेरों में कौन खट्टा हो और कौन मीठा। शवरी होती तो पहले अपने आप चखकर देख लेती और तब अपने श्रीराम को मीठे-मीठे बेर खिलाती।

नीरजा ने फिर से अपने आपको बेर तोड़ने में व्यस्त रखने का बहाना करते हुए कनखियों से देखकर कहा—आप मेरा जूठा खाएँगे।

श्रीधर यह तो शवरी ने श्रीराम से पूछा ही न था। उसे अपने प्रेम पर इतना अटल विश्वास था कि जानती थी कि श्रीराम उसके चखे बेरों को अमृत तुल्य समझकर खाएँगे।

बेर बीनती-बीनती नीरजा रुक गई। अँगुलियाँ उसकी बेरों से लदी एक डाली को झुकाए थीं। पर उसने गर्दन तिरछी करके ठोड़ी अपने कन्धे पर रखली थी और आँखों में जाने कैसा रस, कैसा सुख-भरे एकटक श्रीधर को देख रही थी। जब चेतना जागी तो ऐसी चंचल हो उठी कि कटीली झाड़ी में आँचल भी उलझ गया और एक छोटा-सा काँटा अँगुली में चुबकर छोटी-सी खून की बूँद को व्यर्थ ही बाहर खींच लाया।

श्रीधर ने कुछ बड़प्पन के साथ कहा—ओ, इतनी असावधानी न बरतो। इन बेरियों में इतने बेर-पत्ते नहीं होते जितने कि काँटे। अपनी धोती सम्हालो, नहीं तो वह भी चीर-चीर हुए बिना न रहेगी।

पर तब नीरजा सोच रही थी कि सनातन काल से प्रेम-प्रसंगों में इन काँटों का फूलों से भी अधिक महत्व रहा है। प्रिय को एक बार और देख लेने के, या क्षणभर और उसका सम्पर्क बनाए रखने का अवसर ये काँटे ही तो देते आए हैं। प्रत्येक युग की शकुन्तलाएँ इन काँटों की जाने कितनी ऋणी हैं। तभी उसने कह भी दिया—आप इन काँटों की सरसता नहीं जानते। आप जैसे पुरुषों की अपेक्षा इनका महत्व फूलों ने अधिक जाना है, जो इनकी सेज पर भी मुसकुराते हैं।

इसके बाद उन दोनों ने मिलकर खूब तत्परता से कण्डे एकत्र किये। कंडों से नीरजा ने अपना और श्रीधर ने धोती की लटकन का हिस्सा पूरा-पूरा भर लिया। जब वे दोनों इस तरह से लदे-लदे लौटे तो नर्मदेश्वर और रामू के लाए कण्डों को जमाकर दाल चढ़ादी जा चुकी थी।

कंडे जमीन पर रख देने के बाद श्रीधर ने कहा—मा, यह नीरजा तो बड़ी होशियार है। जंगलों के रास्ते ऐसे जानती है कि कोई यहाँ रहने वाली गूजरी भी क्या जानती होगी।

नीरजा—और मा ये भी कण्डे बीनने में इतने तेज हैं कि जान पड़ता है कि आजतक यही काम करते रहे।

नर्मदेश्वर—तब तो भाई श्रीधर लगता है कि इसने तुम्हें अकेला पाकर खूब छकाया होगा। क्यों न ?

श्रीधर—नहीं, तब तो इमे चोटी पकड़ाई का भी डर था।

नीरजा ने इन बातों पर कोई गौर न करके कहा—अच्छा मा अब तो हम बेर खा आएँ।

केला—जान पड़ता है, श्रीधर ने तुझे एक बेर भी छूने नहीं दिया।

नीरजा—सो तो इन्हीं से पूछो कि बेर देखकर ये कैसे बन्दर होगए थे।

केला से अनुमति लेकर फिर दोनों जङ्गल में घुस गए। श्रीधर तो बेरों की पहली ही झाड़ी को देखकर रुक जाना चाहता था, पर नीरजा उसे 'आगे इससे भी अच्छे मिलेंगे' या 'उँहुँः, ये खट्टे हैं' कह-कहकर बराबर आगे ले जाती। आगे चलकर जहाँ नीरजा रुकी वहाँ सचमुच ही बेर खूब फले थे। श्रीधर ने

पूछा—तुम यह कैसे जान लेती हो कि बेर कहाँ अच्छे मिलेंगे। यह बात भी नहीं कि यहाँ बराबर आती रहती हो।

नीरजा—इसके लिए अक़्ल चाहिए जनाब अक़्ल !

श्रीधर—अक्ल कि जङ्गलियों का मन्त्र !

नीरजा—नहीं, सिर्फ आदमियों की-सी अक्ल ! आपको पता होना चाहिये कि जङ्गलों में बेरों के लोभ से बहुत-से बस्ती के आलसी भी चले आते हैं, जो बाहर-बाहर की झाड़ियाँ हिलाकर लौट जाते हैं। इससे उधर बेर प्रायः अच्छी तरह पक ही नहीं पाते। पर अन्दर की बेरियों को खूब पकने का मौका मिलता है। इसी से कहीं भी भीतर घुसने पर अच्छे ही बेर मिलेंगे। समझे जनाब !

श्रीधर ने बेर खाते हुए कहा—आजमा न लिया कि सारी अक़्ल मेरे ही पास नहीं। थोड़ी-सी बची-खुची तुझे भी मिल गई है।

नीरजा उस समय बेर खा रही थी। उसे ऐसी हँसी आई कि बेर मुँह से बाहर आने लगा। उसे मुँह में ही रखने की कोशिश की तो गूदे के साथ-साथ गुठली भी गले से नीचे उतर गई। क्षणभर के लिये गुठली के गले में फँस जाने के कारण उसकी आँखों के डेलों में खून की लकीरें-सी पड़ गईं। श्रीधर ने घबराकर पूछा—अरे, यह क्या हुआ !

जब गुठली पेट में चली गई तो नीरजा ने हँसते हुए कहा—कुछ नहीं, गुठली पेट में चली गई। अब वहाँ एक बेर की झाड़ी लगेगी, जो मेरा सिर फोड़कर बाहर भी निकल आएगी। आप उसी पर से बेर तोड़-तोड़ कर खाया करियेगा।

श्रीधर—पर तब तो तुझे घर के बजाय जङ्गल में रखना होगा।

नीरजा—आप साथ रहें तो जंगल भी मुझे उपवन लगेगा।

श्रीधर पर नशा-सा छागया। आज नीरजा के सम्पर्क ने उसे कोलाहलपूर्ण विश्व का एकदम से विस्मरण करा दिया था। क्षण-भर के लिए उसके जागरूप दार्शनिक ने कहा—जिसे तू सुख समझता है श्रीधर वह मायामयी नारी की मुस्कान और कटाक्षों का जादू है। इस जादू से बच! विश्व की प्रत्येक गति इससे बँधकर मर जाती है। जीवन का विकास चाहता है तो नारी-पाश से मुक्त रह!

पर दूसरे ही क्षण श्रीधर जो न केवल मस्तिष्क वरन हृदय और शरीर भी रखता था मोह-ग्रस्त हो गया। उसने भी अनुभव किया कि वह सच ही इस नीरजा के साथ केवल बेर खा-खाकर भी वनों में रह सकता है। आज उसे विश्व और उसके सभी प्रसंग तुच्छ जान पड़ रहे थे। समस्त विराट् उसे नीरजा की मुस्कान में ही अन्तर्हित होता जान पड़ता था। वह खुद उस मुस्कान में डूबकर अपने आप तक को विलीन कर डालना चाहता था। उसी आवेश में उसने नीरजा को भुजमूलों से पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। नीरजा उसकी ओर इसी तरह बढ़ आई जैसे किनारे की तरफ लहर चली आती है। पर उसके वक्ष पर सिर रखकर उसी तरह आकारहीन न हो सकी जैसे कि हर लहर किनारे को छूकर हो जाती है। वह आवेग में ज्वार की तरह बढ़कर भाटे की तरह लौट गई। अपने आपको श्रीधर के हाथों से मुक्त करती हुई बोली—शबरी देख रही है श्रीराम!

इस एक छोटे से वाक्य से श्रीधर का जैसे गया होश लौट आया हो। उसने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा, दूर-दूर तक झाड़ियों, पेड़ों और पहाड़ों को देखा और उसे लगा कि इन सबके भी आँखें हैं, जिनसे उसकी इस उच्छृंखल चेष्टा को सभी ने देखा है। वह मन-ही-मन बहुत छोटा होगया। आसमान उसे अपने ऊपर झुकता जान पड़ा और पैर धरती में धँसते से।

नीरजा ने उसे स्तम्भित देखकर हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा—चलिए भी यह क्या सोचने लगे। जाने आप भी कैसे हैं जो जङ्गल में आकर भी शहर का सोचना न छोड़ सके।

श्रीधर ने उसके इशारे पर बढ़ते हुए कहा—सोचना तो जीवन की निशानी है। जहाँ-जहाँ यह जीवन जाएगा, सोचना भी इसके साथ रहेगा।

इतना कहकर वह चुप होगया। पर उसका मन कुछ और कहना चाहता था, जो कि जीभ जाहिर न कर सकी। फिर भी मन में तो वे बातें घुमड़ती रहीं। मन-मन को सुनाकर कहती—जब जङ्गल में शहर की वासना आ सकती है तो सोचना भी जरूर आएगा। यह सोचना ही तो आदमी को वासना की उच्छृङ्खलता से बचाएगा।

श्रीधर मन-ही-मन यह कल्पना कर ही रहा था कि धाँय की आवाज हुई और एक गोली उसके कान के पास से सन-सनाती हुई निकल गई। नीरजा की दृष्टि उस ओर न थी जिधर से गोली आई थी। पर श्रीधर संयोगवश उधर ही देख रहा था। गोली के छूटते ही उसकी निगाह जिस व्यक्ति पर

पड़ी उसे देखकर वह स्तम्भित रह गया। वह व्यक्ति गोली दागते ही भागा। श्रीधर की समझ में आया ही नहीं कि इसे मेरे प्राण क्योंकर अभीष्ट हो सकते हैं।

गोली इतने पास से छूटी थी कि नीरजा स्तम्भित होकर रह गई, और जैसे ही गोली श्रीधर के पास से होकर निकली तो वह निष्प्राण-सी होगई। कितनी ही देर तक उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। बड़ी-बड़ी सफेद आँखें निर्जीव जान पड़ने लगीं। सुन्दर स्वस्थ चेहरा इतना फीका पड़ गया मानो, तन में खून की एक बूँद भी न रही हो। श्रीधर उसे इतनी अधिक घबड़ाई देखकर तत्क्षण सावधान होगया। उसके हाथ को अपने दोनों हाथों में अच्छी तरह लेकर बोला—पर तुम इस तरह सफेद क्यों पड़ गईं नीर! जंगल है जाने किस बेवकूफ शिकारी की गोली का निशाना चूक गया जो हमारे पास से होकर गोली निकल गई।

नीरजा की आँखों में आँसू भर आए थे। उसने भीगी आवाज में कहा—ओः मैं नहीं जानती थी कि कोई इस तरह आपकी जान का भी भूखा हो सकता है।

श्रीधर—नहीं, नीर! तुम गलत समझ रही हो। यहाँ ऐसा कोई नहीं, जो यों जंगल में छिपकर मेरे प्राण लेना चाहे! संयोग था कि किसी शिकारी की गोली इधर को चली आई।

नीरजा—आपके चेहरे और आपकी बातों से लगता है कि आप अपने उस शिकारी को देखकर भी मुझसे छिपा रहे हैं। वह शिकारी ही था तो उसे आपका ही शिकार अभीष्ट था। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वह कौन हो सकता है। मेरे लिए आपके प्राण कौन ले सकता है।

इस अन्तिम वाक्य के साथ ही श्रीधर के सामने से रहस्य का पर्दा हट गया। नीरजा उसकी छाती से लगी रो रही थी। उसने महसूस किया कि जैसे कोई बहुत ही छोटा बच्चा अपनी मा के वक्ष में मुँह छिपाकर रोरहा हो। उसी भाव से उसके सिर पर हाथ फेरता और आश्वासन के ढंग पर पीठ थपथपाता हुआ बोला—इस तरह सन्देह मत करो नीर। हर हालत में मनुष्य को अपनी और दूसरे की अच्छाई में विश्वास रखना चाहिए। मैं नहीं जानता कि तुम्हारा किस व्यक्ति पर सन्देह है। फिर भी जिस किसी पर भी हो उसे क्षमा करदो। इसलिये क्षमा करदो कि शायद जब उसके मन में कोई घातक विचार आया हो तब वह अपने सच्चे रूप से पृथक् कुछ का कुछ होगया हो। वस्तुतः जो वह है, वह तो अवश्य ही न रहा होगा।

इतना कहकर वह चुप होगया और मन-ही-मन सुशील के बारे में सोचने लगा। आज उसकी समझ में कुछ-कुछ आरहा था कि नर्मदेश्वर के परिवार का हितैषी, प्रगतिशील विचारों का युवक क्यों इस तरह इस परिवार से उदासीन और इतना प्रतिक्रियावादी होगया। तभी उसके दिमाग में नेपोलियन की वह प्रख्यात पंक्ति भी गूँज गई, जिसका आशय था कि स्त्री-पुरुष की बहुत बड़ी कमजोरी है। आज इस कमजोरी का उसने खुद अपने में अनुभव किया, और सुशील में उसी की पराकाष्ठा देखी।

श्रीधर क्षणभर चुप रहकर फिर बोला—अच्छा तो चलो अब हम लौट चलें। मगर देखो, इस बात की चर्चा किसी से न

करना। नहीं तो मा और पंडितजी भी व्यर्थ ही घबरा जाएँगे। और तुम भी हँसने लगो। नहीं तो तुम्हारी रोती आँखें कुछ न छिपा सकेंगी।

नीरजा—पर आप उस व्यक्ति को क्यों इतना अधिक छिपाना चाहते हैं। आपका इसमें क्या हित है।

श्रीधर—पर मेरी तो कोई हानि भी नहीं। साथ ही उस व्यक्ति का हित तो अवश्य है।

नीरजा – आप अपने प्राणों के ग्राहक का भी हित चाहते हैं।

श्रीधर—अगर थोड़ी देर के लिए यह मान भी लूँ कि वह व्यक्ति मेरे प्राण ही लेना चाहता था तब भी कहूँगा कि जरूर ही जान-अनजान में उसका मुझसे कोई न कोई अपराध बन पड़ा होगा। उसके दोष पर ध्यान देने से पहले मुझे अपना अपराध समझना होगा।

नीरजा आवेश में भरकर बोली—आप देवता हैं कि पत्थर! हृदय रखने वाला मनुष्य तो कभी इतना आवेगशून्य नहीं होता।

श्रीधर—कुछ भी कहो नीर! आदमी हूँ। थोड़ी-सी बुद्धि है और वक्त पर उससे काम ले सकता हूँ। जब बुद्धि मूछित हो जाती है तभी कोई न कोई भूल भी हो जाती है। लगता है कि अवश्य ही कुछ काल के लिये मैं मूर्ख होगया था।

श्रीधर के इन शब्दों ने नीरजा के हृदय पर गोली से भी अधिक चोट की। पर वह प्रतिशोध के लिए एक शब्द भी न बोली। श्रीधर ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और उसे जैसे खींचता-सा आगे बढ़ने लगा।

पर यह घटना छिपी न रह सकी। नीरजा की उदासीनता और उस उदासीनता का कारण पूछने पर उमड़ आए आँसुओं ने केला और नर्मदेश्वर को चञ्चल कर दिया। तब हारकर श्रीधर को ही सफाई देनी पड़ी—अभी कुछ देर पहले उधर से किसी शिकारी की गोली मेरे पास से होकर निकल गई। तभी से यह भीत और दुःखित है। और जाने कैसी-कैसी शंका कर रही है।

नर्मदेश्वर ने कुछ रोष के साथ कहा—शिकारी की गोली! ऐसा बेवकूफ शिकारी कौन था जो इस तरह आदमियों का शिकार खेलता-फिरता है। नीरजा की शंका ही मुझे ठीक जान पड़ती है।

श्रीधर ने बिना कोई जवाब दिये मनहीमन कहा—आदमी बेचारा किसका शिकार करेगा। वह खुद ही अपनी कमजोरियों का शिकार रहेगा।

❀ ❀ ❀

उस रोज का वन-भोज फिर न जम सका। नर्मदेश्वर बीच-बीच में कह उठता—"मैं नहीं जानता था कि आदमी इतना अधम हो सकता है।" या पूछ बैठता—"श्रीधर, तुमने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। फिर क्या विचारों का विरोध ही आदमी को इस तरह हिंसक पशु बना दे सकता है?"

तब श्रीधर मनहीमन सोचता कि, यह केवल विचारों का ही विरोध नहीं उससे भी अधिक बहुत कुछ है। नीरजा को छोड़कर उस अधिक को कोई नहीं समझता।

फिर भी सुशील के प्रति नर्मदेश्वर का सन्देह पक्का होगया।

था। केला अवश्य ही अभी तक वैसा न सोचती थी। पर अब तो नर्मदेश्वर के सामने सुशील की कोई चर्चा भी उठ खड़ी होती तो वह कठिन पड़ने लगता। एक बार तो उसने यहाँ तक कह डाला कि मुझे इस बात का पश्चात्ताप है कि कभी मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला खुद किसी भले आदमी के प्राणों का ग्राहक हो सकता है। मुझे आज इसी बात की शर्म है कि ऐसे व्यक्ति से मैं उपकृत हुआ।

इसी प्रकार दिन बीतते गए। इन दिनों के साथ गोली-कांड की स्मृति भी मलिन पड़ती गई। नीरजा फिर से पहले की तरह चहकने लगी। नर्मदेश्वर अपने काम में व्यस्त होगया पर श्रीधर अधिकाधिक अस्त-व्यस्त होगया। कोई उसके मन की दशा को न समझ पाता। अन्दर-ही-अन्दर उसके विचारों में द्वन्द्व चलता रहता। जब कभी एकान्त पाता तो नीरजा के बारे में ही सोचता; रात भी बेचैनी के साथ उसी के खयाल में बिता देता, पर जब खुद नीरजा उसके सामने आती, उसे अपनी वेणी से क्रीड़ा करने के अवसर देती तब वह एकदम से भावनाहीन सा बना उसकी चेष्टाओं में रस ही नहीं लेता। नीरजा पूछती—यह आप क्या सोचते रहते हैं।

वह जवाब देता—कुछ भी तो नहीं।

नीरजा के मन में प्रश्न घुमड़ता—'तो फिर!' पर मन ही-मन में रह जाने के कारण श्रीधर को जवाब देने की नौबत ही न आती। श्रीधर की भी ऐसी विचित्र मनःस्थिति थी कि पास रह-कर भी आँखों के सामने होने पर तो वह नीरजा से दूर बना रह सकता था, पर दूर हटते ही, या आँखों से ओझल होते ही

नीरजा के अतिरिक्त कुछ और सोच ही न पाता। एक दिन इसी द्वन्द्व में फँसा वह आसमान की ओर हाथ उठाकर रोही पड़ा। मानो अन्तरिक्ष के किसी अदृष्ट देव से अपने भविष्यत् के निश्चित पथ-शोध के लिए प्रकाश की एक सूक्ष्म किरण ही चाहता हो।

एक दिन अपनी इसी दशा में ३० जनवरी को तारों के जागजाने के बाद हवा में फैलती-सी जहर और मौत की-सी लहर से उसने सुना—गांधीजी की हत्या करदी गई! सारे तार, टेलीफोन, रेडियो चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि गांधी का हत्यारा हिन्दू था। पर रात्रि को रेडियो पर रोते हुए पण्डित नेहरू ने जाने किस हिम्मत के साथ कहा कि नहीं गांधीजी का हत्यारा एक पागल था।

श्रीधर के मन से भी किसी ने पुकार कर कहा—सभी हत्यारे पागल होते हैं। उन पर दया करनी चाहिये।

पर क्षणभर में ही हत्या और हत्यारा अंधकार में पड़ गए केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं दुनियाभर के रोने के लिए रह गई गांधी की मृत्यु! श्रीधर भी सब कुछ भूलकर इसी मृत्यु पर हठात रो पड़ा। वही नहीं उसे हवा की हर लहर, पृथ्वी का प्रत्येक कण, सागर की बूँद-बूँद, आकाश के सभी नक्षत्र पेड़-पौधे-वनस्पतियाँ, जंगल-पहाड़, दिशा-विदिशाएँ रोती, चीखतीं, चिल्लातीं और सिर धुनती जान पड़ीं। उसे लगा कि यह सारी दुनिया एक बहुत बड़ी कब्र होगई है जिसमें धरती और आसमान के बीच सिर्फ लाशों-ही-लाशें हैं। जो जीवन का प्रकाश था वह तो बुझ गया। जो एक मात्र आत्मा थी वह तो जाने किस परमलोक को चली गई।

दुनिया भर के रोते हुए कंठ, हिचकियाँ और आँसू पूछते—"गांधी की हत्या किसलिए हुई ?" मौन उत्तर होता—"सत्य के लिए !" फिर बार-बार वही प्रश्न उठता—"गांधी की हत्या किस लिए हुई ?"

"न्याय के लिए ।"

"गांधी की हत्या किसलिए हुई ?"

"मनुष्यता के लिए ।"

"गांधी की हत्या किसलिए हुई ?"

"विश्व मैत्री के लिए ।"

श्रीधर ने सोचा—तो आज इस दुनिया का इतना पतन हो गया है कि सत्य, न्याय, मनुष्यता और विश्व-मैत्री के सन्देश-वाहक देवदूत की हत्या इसीलिए करदी गई कि उसे अन्याय पसन्द न था । झूठ से नफरत थी । मनुष्यता में उसका विश्वास था । विश्वभर के प्राणियों को समभाव से देखता था । साथ ही यह भी चाहता था कि जो जन देश और संस्कृति के नाते, जाति और धर्म के कारण उसके अपने कहलाते हैं, वे तो कम-से-कम उस पथ पर अग्रसर न हों जो सत्य और अहिंसा से दूर ले जाने वाला हो ।

इसी अंधकार और वैराग्य की अवस्था में श्रीधर ने फिर-फिर अपने मन से पूछा—अब मैं क्या करूँ ? मेरा कौन-सा मार्ग है ? क्या जीवन का लक्ष्य कभी भी सत्य और अहिंसा की अपेक्षा श्रेयस्कर कुछ और हो सकता है ? क्या आत्मसाधन कभी भी विश्व-साधन की तुलना में आ सकता है ? श्रीधर पैदा होकर एक न एक दिन मर जाएगा और फिर किसी के लिये

उसका कोई प्रयोजन न रहेगा। उसके लिए भी नहीं जिसे कि उसने प्यार किया हो। जिसका कि प्यार पाया हो। जो उसके कष्टों में रोया हो, सुखों में हँसा हो। पर गांधी इस नश्वर देह-पात के बाद भी आज हमारे बीच सर्वत्र विद्यमान है। जब तक दुनिया में सत्य की प्रतिष्ठा रहेगी, अहिंसा का महत्व होगा, गांधी भी सत्य और अहिंसा के पर्याय की तरह प्रतिष्ठित और महत्वप्राप्त रहेगा। व्यक्ति अपना प्रयोजन कभी खुद नहीं होता न जीवन में न जीवन के उपरान्त। जीवन में जो कुछ वह 'मैं' की आँखों से 'मेरे' की सीमा में देखता है वह सब भी उसके 'अहं' और 'मम' के लिये कितना निरपेक्ष होता है। फिर स्थूल-जीवन और उसकी बँधी इच्छाओं को ही सर्वोपरि मानकर अपना प्रयोजन आप बन जाने में कौन सा महत्व ? अथवा अपने ही जैसे किसी अन्य को बना लेने में ही कौनसी सिद्धि ?

तभी श्रीधर को जैसे उसकी ज्ञान-चेतना की प्रत्येक किरण-आभा ने चिल्ला-चिल्लाकर सुनाया—श्रीधर का प्रयोजन न श्रीधर है, श्रीधर का प्रयोजन न नीरजा है, श्रीधर का प्रयोजन वह विश्व है जो सृष्टि में भी है और प्रलय में भी रहेगा। जो आकार में भी है, निराकार में भी रहेगा। जो आधार पाकर भी स्पष्ट है और आधारहीन होने पर भी स्पष्ट ही रहेगा। जो तत्वतः सत्य है, अहिंसा जिसकी भावना है, विश्व-कल्याण जिसका प्रयोजन है।

गांधी के अवशेष में श्रीधर ने यही तत्व, यही भावना और यही प्रयोजन पाया। उसने अनुभव किया कि जिस गांधी को उसने आजतक केवल आँखों से देखा, कानों से सुना और बुद्धि

से समझा वह अब मात्र आत्मारूप होकर नेत्रकर्ण और बुद्धि सभी के विषयों से अतीत होगया है।

❀ ❀ ❀

महात्मागांधी की हत्या के साथ ही उनकी हत्या का षड़यन्त्र भी स्पष्ट होगया। देश का राजनीतिक वातावरण उस समय इतना अशान्त था कि सुरक्षा और शान्ति के लिए हम षड़यन्त्र से कुछ भी सहानुभूति या संबन्ध रखने वालों को गिरफ्तार कर लेना तात्कालिक आवश्यकता थी जिसकी कुछ भी उपेक्षा करना गले में फाँसी लगाकर आत्म-हत्या करने से कम न था। फलतः संघ और हिन्दू महासभा के नेताओं के संदेहास्पद कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियाँ होने लगीं। जैसे ही श्रीधर को संघियों की गिरफ्तारी के सरकारी निश्चय का पता चला उसे सुशील के संकट का भी भान होगया। गांधीजी की हत्या की रात को रोते-रोते उसने एक निश्चय कर लिया था और अब उस निश्चय को कार्यरूप देने का क्षण भी दूर न था। वह किसी भी तरह सुशील को बचा लेना चाहता था। उसने अपने जीवन को फिर से नये रूप और नए क्रम से प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया था उसका प्रारम्भ सुशील की हित-व्यवस्था से ही होता था। अतएव वह उक्त समाचार पाते ही दौड़ा-दौड़ा सुशील के घर गया। पर वहाँ जाकर उसे पता लगा कि उससे भी पूर्व पुलिस उसकी गिरफ्तारी के लिए वहाँ जा पहुँची थी। पर वह पुलिस की भी पकड़ में न आया। गंगा तट की ओर पड़ने वाली खिड़की से कूद कर भाग गया। श्रीधर को यह सब समाचार पहुँचते ही नौकर ने दे दिया था। इस संवाद ने जैसे उसे बहुत ही ठोकर

आघात पहुँचाया । उसके नवजीवन की भूमिका ही मानो बिगड़ा चाहती थी । सुशील के बारे में ही सोचता-सोचता वह भारती के कमरे में आया जहाँ वह खाट पर मूँधे मुँह पड़ी रो रही थी । वह उसके पास चुपके से जाकर खड़ा होगया । भारती रोती ही रही । उसे उसके आने का भान तक न हुआ ।

श्रीधर ने कुछ देर चुप रहकर कोमल स्वर में कहा—मा, रोती हो ।

भारती श्रीधर की आवाज सुनते ही उठकर बैठ गई । आँसू पोंछती हुई बोली—जिस मा ने सुशील जैसा बेटा जना हो उसके भाग्य में रोने से कम और हो ही क्या सकता है । श्रीधर, अगर मैं यह जानती कि यह बड़ा होकर देश का हितघात करने वालों की जमात में जा मिलेगा तो निश्चय ही जनमते ही मार डालती ।

श्रीधर ने कष्ट के साथ कहा—आः मा क्यों इतनी कठोर होरही हो । तुम्हारा बच्चा ऐसा कभी नहीं रहा और न है । दुःख इसी बात का है कि तुम मा होकर भी अपने बच्चे को न परख सकीं ।

भारती चुप ही रही । उसके स्तंभित नेत्र श्रीधर को देखते ही रह गए । आज वह श्रीधर उसके भग्न हृदय को ऐसा विश्वास दिलाना चाहता था जो कि उस अभागिन मा के हताश जीवन की सुखमयी आशा बन जाता । उसने कहा—मा, सुशील भाई का कोई अपराध नहीं । उसकी संघ से सहानुभूति थी किन्तु गांधी की हत्या के आयोजकों और किसी हत्यारे से नहीं ।

माँ, मैं आज ही यहाँ से बाहर चला जाऊँगा। जैसे भी होगा उसे खोजकर वापस भेजूँगा। सरकार से भी उसे भय नहीं होना चाहिए प्रत्येक निरपराध व्यक्ति सरकार का न्याय पाकर मुक्त हो जायगा ? सुशील का वारंट भी नहीं बना रह सकता और माँ तुमसे एक बात और कहूँगा सुशील ने नीरजा बहन को शुरू से चाहा है। तुम भी उसका सुखी जीवन चाहो तो ऐसाही प्रयत्न करना जिससे उसकी चाह सार्थक हो जाए।

भारती स्वयं सुशील की यह आसक्ति जानती थी। पर घटना-क्रम से सुशील और नीरजा इतनी दूर आ पड़े थे कि भारती नीरजा को पुत्र-वधू बनाने की अपनी इच्छा को होंटों पर लाही न सकी ; पर आज श्रीधर देवदूत की तरह जैसे उसे उसकी कामनाओं का वरदान ही देने आया था।

श्रीधर ने फिर कहा—अच्छा मा अब आज्ञा हो ! आशीर्वाद दो कि जहाँ कहीं भी रहूँ, आपका स्नेह-भाजन बना रहूँ।

भारती से तो कुछ बोलते बन ही न रहा था ! उसने दो आँसू टपका कर आज्ञा भी दे दी और अशीर्वाद भी ! श्रीधर झुककर प्रणाम करता हुआ चल दिया। बाहर निकल कर आपही उसके पैर गंगातट की ओर मुड़ पड़े। घाट पर बैठकर वह कितनी देर तक जल के उस निर्मल प्रवाह को देखता रहा। अभी तक उसके कनखल त्याग के विचार से नर्मदेश्वर के परिवार का कोई व्यक्ति अवगत न था। उसकी समझ में न आ रहा था कि कैसे उन सब तक इस आकस्मिक निश्चय को पहुँचाएगा। फिर नर्मदेश्वर और उसके परिवार से उसका मोह अत्यधिक बढ़ चुका था। इस मोह ने उसे यहाँ तक कमजोर कर डाला था कि इसे अपने ऊपर निर्भर अनाथ

बच्चों की सुध न रही। जो बड़ी-बड़ी योजनाएँ उसके दिमाग में कार्य रूप पाने के लिए छाई रहती थीं वे सब नीरजा के बढ़ते हुए मोह में मस्तिष्क में ही मृत होकर पड़ी रह जाना चाहती थीं। उसने वेदना पूर्वक अनुभव किया कि एक लड़की उसके जीवन का सर्वस्व बन जाना चाहती है। न चाहते हुए वह उसके अधिकार में इस हद तक चला गया कि उसकी कल्पना उसके स्वरूप प्रसाधन से आगे बढ़ ही न पाती। उस रूप की मृग-तृष्णा से वह निकलने के लिए भीतर ही भीतर विवश की तरह छटपटा रहा था कि उसे टूटते तारे ने राह दिखाई! गाँधी के महाप्रयाण ने जैसे उसके सामने जीवन और मृत्यु का समस्त रहस्य खोल दिया। फलतः वह ऐसे जीवन में अपने आपको बांध ही न सका जो मृत्यु को ही चरम सीमा मानकर सदा के लिए लुप्त हो जाता है। उसके मन में तो मिथ्या शरीर के दीपक के बुझ जाने पर भी सत्यात्मा के प्रकाश में सतत जीवित रहने की अमर अभिलाषा समा चुकी थी। स्त्री इस अभिलाषा में बाधक थी और वह थी केवल नीरजा। श्रीधर को इस कोमल किन्तु फिर भी सबसे दृढ़ बंधन को ही तोड़ने में सबसे अधिक शक्ति का परिचय देना था? गंगातट पर वह खड़ा-खड़ा सोचने लगा—

"नदी जब पर्वत से निकलती है, तब क्या वह अपने ध्येय सागर को जानती है? न उसका कूलों से परिचय होता है न किसी मार्ग से और न उस मार्ग के अवसान से। उसके जीवन में केवल गति का मन्त्र होता है और उसी का जाप करती हुई वह बढ़ चलती है। फिर कूप भी बनते हैं। मार्ग भी खुलता है और अन्त भी आता है। तो मैं ही अपने जीवन को क्यों किसी

योजना का रूप दूं। क्यों न मात्र प्रवाह रह जाऊँ जिसके साथ कूड़ा-कर्कट भी प्रसन्नता पूर्वक बहता रहे और इसी तरह बहते-बहते किसी सागर में मिलकर प्रवाहहीन हो जाऊँ जीवन की कोई स्थूल भूमि इसके सूक्ष्म पार्श्वों को मलिन न कर सके।"

पर यह कल्पना भी उसे अधिक समय तक व्यस्त न रख सकी। उसने क्रियाहीन मनुष्यता और उसके कल्याण को अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। अब वह सब प्रकार के व्यक्तिगत राग और दार्शनिक छलनाओं से मुक्त रह कर इसी एक ठोस आदर्श के लिए कर्म करता हुआ जीवित रहना चाहता था। बस उसने निश्चय कर लिया कि नर्मदेश्वर पर भी अब वह अपना संकल्प प्रकट कर देगा। इस निश्चय से भी फिर वह तत्काल घर की तरफ लौट पड़ा।

उसी दिन संध्या को जब श्रीधर ने नर्मदेश्वर के घर से विदा ली तो केला रो रही थी, नीरजा पत्थर की तरह निश्चेष्ट थी और नर्मदेश्वर गम्भीर। श्रीधर ने केला के चरण छुए। चरणों की ओर झुकते-झुकते ही दो गरम-गरम आँसू चू पड़े। केला ने उसे छाती से लगाकर जाने कैसे ही कितने अश्रु-मुक्ता लुटा दिये। उस समय वह आशीर्वाद के लिए जो कुछ कह सकती थी वह केवल आँसुओं की भाषा में ही।

श्रीधर चला गया। नर्मदेश्वर को प्रणाम कर और नीरजा को आँखों ही आँखों में जाने क्या कहकर चला गया। केला, नीरजा और श्रीधर घर के दरवाजे पर खड़े उसे तब तक देखते रहे जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। मोड़ पर जाकर उसके एकदम लुप्त हो जाते ही नर्मदेश्वर ने गहरी साँस

लेकर कहा—अच्छा बेटी नीरजा, लो अब हम पहले ही जैसे अकेले रह गए। आदमी को दूर अकेलेपन के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए! इसी तरह मौत और दूसरी घटनाएँ व्यक्ति के अपने अभिन्न साथियों और प्रियजनों को छीन लेती हैं। इसलिए व्यक्ति को अपने में इतना बल संचित कर लेना चाहिए जिससे आते-जाते प्रियजन उसकी शक्ति में कोई कमी और अधिकता न कर सकें। बेटी, इधर मैंने अपने आपको बहुत से सहायकों के बीच में पाकर मन ही मन बूढ़ा मान लिया था, पर अब एक-एक करके उन सबको जाते देख-कर सोचता हूँ कि शरीर का बुढ़ापा तो समय से आयेगा ही पर इस मन के बुढ़ापे को कभी न आने दूँ। अब हमारी दुनिया हमारे अपने पुरुषार्थ पर चलेगी! दूसरों की शक्ति सहायता पर चलने वाली क्रान्तियाँ दूसरों से प्राप्त होने वाली शक्ति और सहायता के अभाव में मिटकर ही रहती हैं। इस लिए अपनी क्रान्ति को अपनी शक्ति पर जीवित रखो! अपने को टटोलो बेटी, अवश्य ही दुर्बलताओं के ढेर में दबी अपनी शक्ति का केन्द्र आखिर सभी दुर्बलताओं पर विजय पा लोगी। श्रीधर को हम सब एक सुख स्वप्न की तरह याद रखेंगे। फिर जैसे जागते ही कोई सपना टूट जाता है, मान लेंगे कि यह भी एक सपना था जो टूट गया।

इस अन्तिम वाक्य के साथ नीरजा भी जैसे टूट गई। अपने पिता की छाती लगकर फूट-फूट कर रोने लगी। कैला के आँसुओं ने और भी वेग पा लिया।

नर्मदेश्वर अपनी बेटी की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—कैला, आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि इस जीवन को सुखी

रखने के लिए प्रत्येक सुख की चाह छोड़नी होगी। जो सुख मोह का सुख होगा वह अवश्य ही एक दिन हँसते-हँसते रोने में बदल जाएगा। इसलिए जीवन का सुख उस प्रयोजन के अतिरिक्त कुछ और होना ही नहीं चाहिए, जिसकी सिद्धि के लिए व्यक्ति अपनी समस्त इच्छाओं को शक्ति और दृढ़ता के के साथ कर्मघटित कर सके ऐसे कर्मघटित जीवन का मात्र सुख कर्म होगा, और इस कर्म का पूर्ण विराम मृत्यु ही हो सकेगी, जिसके बाद सुख-दुख की सभी अनुभूतियाँ केवल जीव मात्रों के विचार-वितण्डे का विषय रह जाती हैं।

केला नर्मदेश्वर के पास आकर उसके कन्धे का सहारा लेकर खड़ी हो गई थी। नर्मदेश्वर ने धीरे से नीरजा का मुँह ठोढ़ी पकड़ कर ऊपर को उठाया और उसकी तरल आँखें देखकर खुद रो पड़े। मानो उन आँसुओं ने यह कह दिया हो कि जीवन का समाधान केवल बुद्धि ही नहीं!

सारे संसार पर धीरे-धीरे अँधेरा झुक आया था; दीपक उसी अँधकार पर काजल बनाते हुए जलने लगे थे। नर्मदेश्वर ने घर के भीतर की ओर चलते हुए कहा —चलो मेरी बच्ची, प्रकाश करो। अन्धकार में बराबर प्रकाश करते रहने की चेष्टा ही जीवन है।

और यही चेष्टा इस विश्व-जीवन की कहानी है, जो जाने कितने नर्मदेश्वरों के जीवन की कहानी पूरी करके स्वयम् प्रलय तक में अधूरी रहेगी।